गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, राजस्थान से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
जनवरी-फरवरी 2023
Vol. 11, Issue 1-2

Impact Factor : 4.553

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

संपादक :
डॉ. रेखा सोनी

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

संगम SANGAM

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

A Peer Reviewed International Refereed Journal

वर्ष : 11 अंक : 1–2 जनवरी–फरवरी : 2023 आईएसएसएन : 2321–8037

संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष डॉ. विश्वकीर्ति

संरक्षक :
हरविन्द्र कमल, पटियाला

मार्गदर्शन :
डॉ. राजेन्द्र गोदारा
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

इन्जीनियर सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स एंड कम्युनिकेशन, सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्रेष्ठ चौधरी
सीनियर मैनेजर, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, साहिबजादा अजित सिंह नगर, मोहाली, पंजाब।

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीनादेवी शोध संस्थान, भिवानी (हरियाणा)

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
शिक्षा विभाग, टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर–335001 (राज.)

सम्पादकीय कार्यालय :
6–एच 30, जवाहर नगर, श्रीगंगानगर, राजस्थान–335001

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी (हरियाणा)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग नूंह (हरियाणा)

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर (राजस्थान)

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज, अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

श्री हेमराज न्यौपाने
नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बारां, राजस्थान।

प्रो. मधुबाला
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार।

प्रो. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग तोशाम (हरियाणा)

डॉ. राजेश शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय, सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुकेश चंद
राजकीय महाविद्यालय, बाडी, धौलपुर, राजस्थान।

डॉ. पवन ठाकुर
बरेली (उत्तर प्रदेश)

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर, अंकारा विश्वविद्यालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, टांटिया, वि.वि.

कानूनी सलाहकार : **डॉ. रामफल दलाल** एडवोकेट, भिवानी
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट, पटियाला।

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक **डॉ. नरेश सिहाग**, एडवोकेट ने **मनभावन प्रिन्टर्ज**, पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

A Peer Reviewed International Refereed Journal

(Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी–127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा।
सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	7–7
2.	**Regulation and System for Higher Education**	**Sahil Dhalia**	**8-12**
3.	आधुनिक जनसंचार के माध्यमों से किशोरों की आपराधिक प्रवृत्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन	मुकेश कुमार ढ़ाका, डॉ. रेखा सोनी	13–18
4.	डॉ. भीमराव अम्बेडकर का शैक्षिक दर्शन एवं सामाजिक परिवर्तन में इसकी प्रासंगिकता	डॉ. अनिल कुमार, योगराज	19–23
5.	शिक्षक शिक्षा में प्रौद्योगिकी का उपयोग और एकीकरण	नगेन्द्र प्रताप	24–29
6.	डॉ. जयभगवान शर्मा के काव्य में जीवन और जीवन-मूल्य	रेनू शर्मा, डॉ. दिग्विजय कुमार शर्मा	30–35
7.	'बादलों के घेरे' और 'सिक्का बदल गया' कहानी का प्रोक्ति विश्लेषण	मधु कुमारी	36–40
8.	**To Study the Problem Solving Ability & Emotional Maturity of Secondary School Students in Relation to their School Environment**	**Archana, Dr. Sangeeta Agarwal**	**41-45**
9.	**Revisiting Dalit Aesthetics : The Question of Representation**	**Dr. Sunil Kumar**	**46-52**
10.	**Love and Death in Sylvia Plath's Poetry: A Study of Her Confessional Mode**	**Dr. Mahesh Singh**	**53-58**
11.	भारत-भारती में वर्णित भारतीय संस्कृति का	मनोरम चित्रण डॉ. उन्मेष मिश्र	59–65
12.	वैदिक कालीन शिक्षा का वर्तमान शिक्षा प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन की आवश्यकता	अरूण पाण्डेय, डॉ. डी. एस. सिंह बघेल	66–71
13.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 एवं बहुभाषिकता	किशोरी लाल	72–76
14.	कृष्णा सोबती के साहित्य में अभिव्यक्त प्रेम	डॉ० सुनीता कुमारी	77–79
15.	सन 57' की क्रान्ति, हिंदी भाषा-नवजागरण और भारतेंदु	डॉ. रमेश यादव	80–85
16.	आदिवासी केन्द्रित उपन्यास : मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण	डॉ. जाकिर हुसैन गुलगुंदी	86–90
17.	**AN EVALUATION OF HEALTH AND PHYSICAL ACTIVITY STATUS OF THE TEACHERS OF PUNJAB BELONG TO DIFFERENT STREAMS**	**Dr. Harnam Singh**	**91-100**
18.	आधुनिक समस्याएँ और वेदान्त चिन्तन	डॉ. जोगेन्द्र कुमार	101–104

19.	**AN ANALYSIS OF THE IMPACT OF CHANGE IN TECHNOLOGY AND LABOUR SUPPLY BY USING CLASSICAL FULL EMPLOYMENT MODEL**	**REENA**	**105-108**
20.	माखनलाल चतुर्वेदी – गद्य शैली	सुनिता	109–111
21.	मुगलों का प्रारंभिक निवास स्थान और राजनीतिक स्थिति	**NOOR US SHABA**	**112-116**
22.	हिन्दी महिला साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में योगदान	रंजना गुप्ता	117–120
23.	जिला चम्बा के जनजातीय क्षेत्र पांगी में प्रचलित दैविक लोककथाओं का अध्ययन	राज कुमार	121–129
24.	राष्ट्र एकता में भाषाओं की भूमिका	**Dr. S. Swarnalatha, Dr Sajitha J**	**130-132**
25.	चिकित्सा पर्यटन की दिशा में अग्रसित होता माधव गौ–विज्ञान अनुसंधान संस्थान	अभिषेक श्रीवास्तव, डॉ० लोकेश कुमार त्रिपाठी	133–137
26.	मेवाड़ के महाराणा कुम्भा : महान् निर्माता	डॉ. महेश आमेटा	138–143
27.	**CONTRIBUTION OF INDIAN LANGUAGES IN MASS MEDIA DURING INDIA'S INDEPENDENCE In context of Gujarati, Bengali and Marathi**	**DEVANSHI MEHTA**	**144-148**
28.	संस्कृत साहित्य में निहित नारीधर्म एवं उसकी महता	डॉ. कैलाश चन्द्र बुनकर	149–153
29.	**A COMPARATIVE STUDY OF MARITAL ADJUSTMENT OF WORKING WOMEN OF GOVERNMENT AND PRIVATE SECTOR**	**Dr. Goldy Gupta**	**154-160**
30.	नई शिक्षा नीति 2020 समृद्ध विषयवस्तु, अन्वेषक दृष्टिकोण	डॉ. पंकजा सोनवलकर	161–164
31.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 परंपरागत एवं नवाचार शिक्षण पद्धतियां	डॉ. एकता इंगले	165–167
32.	सभ्यता एवं संस्कृति के वाहक : नेपाल के प्रमुख धार्मिक स्थल	डॉ. राखी बा0	168–173
33.	مجاہد آزادی : صادق علی	ڈاکٹر محمد شاہد زیدی	174–178
34.	राजकीय व अराजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व व नैतिकता का तुलनात्मक अध्ययन	कुसुम, डॉ. रमन सिडाना	179–184
35.	समकालीन हिंदी कथाकारों का साहित्यिक योगदान	बी. नरसम्मा	185–188
36.	धर्म निरपेक्षता	संश्लिष्ट लेखक: सुप्रीति राय	189–192

37.	भारतीय आध्यात्मिक राष्ट्रवादी दृष्टिकोण (राजाराम मोहन राय, दयानन्द, टैगोर एवं ऐनीबीसेन्ट)	म्होर सिंह मीणा, पूरण मल मीणा	193–196
38.	दोहरा अभिशाप एक दलित स्त्री की व्यथा	डॉ. डब्ल्यु. मायादेवी	197–200
39.	आधुनिकता बोध और इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यास	चौदरी गुणाकर	201–204
40.	समकालीन हिंदी उपन्यासों में चित्रित सामाजिक यथार्थ	चंद्रगिरी राजू	205–208
41.	मानस की लोकप्रियता	डॉ. रेखा चौधरी, मनोज कुमार तौमर	209–214
42.	हिंदी दलित आत्मकथा : सामाजिक आयाम	क्षीरसागर संदेश, डॉ. काकानि श्रीकृष्ण	215–218
43.	बाल मुकुंद गुप्त की पत्रकारिता : राष्ट्रीयता एवं संस्कृति	डॉ. राजल गुप्ता	219–222
44.	भगतसिंह : एक क्रान्तिकारी विचारधारा	कु. उषा	223–227
45.	मिथिलेश्वर का कथा साहित्य : सामाजिक अनुशीलन	ए. प्रवीण कुमार गौड़	228–231
46.	समकालीन हिंदी उपन्यासों में मानवीय मूल्य	बालाजी	232–235
47.	अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं शिक्षण अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन	कलावती, डॉ. रमन सिड़ाना	236–243
48.	**Condition of Ayurvedic System in Bengal in 18th-19th Century : A Study**	**Dr. Avijit Mandal**	244–248
49.	दलित कविता में पुराने मिथकों की आलोचना	बिरादार रंजना	249–252
50.	**A COMPARATIVE STUDY OF MARITAL ADJUSTMENT OF SECONDARY SCHOOL TEACHERS**	**Dr. Manjeet Kumari, Dr. Rekha Rani**	253-257
51.	राष्ट्रीय नीति शिक्षा नीति 2020 : परिचय	सपना	258–263
52.	विद्यार्थी के लिए सीखनें का अच्छा वातावरण	अनिता चौहान, डॉ. पूनम मिश्रा	264–265

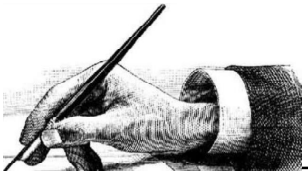

सम्पादक
डॉ. रेखा सोनी की कलम से..

गीना देवी शोध संस्थान द्वारा नियमित रूप से प्रकाशित संगम पत्रिका का जनवरी–फरवरी 2023 का संयुक्तांक आप सभी सुधी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। गीना देवी शोध संस्थान द्वारा हिन्दी दिवस के अवसर पर हिन्दी भाषा के प्रचार–प्रसार के लिए काम करने वाले देश–विदेश के 51 विद्वानों को सम्मानित किया गया। जिसकी हिन्दी जगत में भूरि–भूरि प्रशंसा हुई। संस्थान ऐसे आयोजन समय–समय पर आयोजित करता रहता है। संस्थान की आगामी योजना शोध प्रविधि पर बहुविषयक एवं बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी ऑनलाईन/ऑफलाईन आयोजित करने की है। जिसके लिए संस्थान ने कॉलेजों/ विश्वविधालयों से पत्राचार किया हुआ है। जैसे ही किसी कॉलेज/विश्वविधालय के साथ संगोष्ठी आयोजित करने की सहमति बनती है शोधार्थियों/प्राध्यापकों को उपलब्ध करवा दी जाएगी। हमें आशा है कि इस संगोष्ठी से आप सभी लाभान्वित होंगे।

प्रस्तुत अंक में आधुनिक, जनसंचार, डॉ. भीमराव अम्बेडकर का शैक्षणिक दर्शन, वैदिककालीन एवं वर्तमान शिक्षा प्रणाली के साथ–साथ हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, बंगाली आदि भाषाओं के शोध आलेख समाहित हैं। लेखकों ने अपने विचारों से शोध के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है। जिसके लिए संस्थान चुने हुए श्रेष्ठ शोध आलेखों के लेखकों को शोधश्री सम्मान से सम्मानित करेगी। प्रौधोगिकी का वर्तमान समय में बहुत अधिक महत्व है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रौधोगिकी के कारण एक नई क्रांति का आगाज हुआ है जिसके कारण आज हम घर बैठे दूरदराज के महाविध ाालयों/विश्वविधालयों के विभिन्न पाठ्यक्रमों में दाखिला लेकर अपनी शैक्षणिक योग्यता को बढ़ा सकते हैं। हमारे देश के महाविधालयों/विश्वविधालयों विभिन्न देशों के विश्वविधालयों के साथ विभिन्न पाठ्यक्रम ऑनलाईन संचालित करने के लिए हाथ मिलाया है जिससे हमारे देश के विध ाार्थियों को विदेशी विश्वविधालयों में पढ़ने का अवसर मिलेगा और उनके पास विदेशी विश्वविध ाालयों की स्नातक, स्नातकोत्तर उपाधियां ग्रहण करने में सुविधा होगी। भारत सरकार द्वारा नई शिक्षा नीति को भी लागू किया जा रहा है जिसके माध्यम से विधार्थी अपने रूचि अनुसार विषय चयनित कर अपनी शिक्षा पूर्ण कर उपाधि ग्रहण कर सकते हैं। इससे विधार्थी की प्रतिभा में निखार आयेगा और वह स्वरोजगार पाने में सक्षम होगा।

मुझे आशा और विश्वास है कि पत्रिका का जनवरी–फरवरी 2023 का यह अंक आप सभी सुधाी पाठकों के लिए बहुउपयोगी साबित होगा। मानवीय भूल के कारण अगर हमसे इस अंक में कोई अशुद्धि रह गई हो तो आप हमें अवगत करवाकर अनुगृहीत करें।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 8-12

Regulation and System for Higher Education

Sahil Dhalia
Research Scholar,

The new education policy was released by the Ministry of Human Resource Development (MHRD) under the guidance of Hon'ble Prime Minister Shri Narender Modi. The National Education Police 2020 was released on 29th July, 2020, after it was approved by the union cabinet. The new national education policy (NEP 2020) replaces the 37 year old National Education Policy (NEP) that was formulated in 1986. The NEP 2020 aims to transform the education system in India and make it at par with international standards. It also emphasizes on providing quality education to all, regardless of their socio economics background. This is a significant step forward for India's education system. The new national education policy aims to make India a global leader in education by improving access, quality and equity of education at all levels, from early childhood education to higher education and vocational training. To achieve these goals, the NEP recommends several changes to education system, including the introduction at a new national curriculum framework.

QUALITY UNIVERSITIES AND COLLEGES: A NEW AND FORWARD-LOOKING :-

VISION FOR INDIA'S HIGHER EDUCATION SYSTEM :

- Quality higher education must aim to develop good, thoughtful, well-rounded, and creative individuals.
- It must enable an individual to study one or more specialized areas of interest at a deep level, and also develop character, ethical and Constitutional values, intellectual curiosity, scientific temper, creativity, spirit of service, and 21st century capabilities across a range of disciplines including sciences, social sciences, arts, humanities, languages, as well as professional, technical, and vocational subjects.
- A quality higher education must enable personal accomplishment and enlightenment, constructive public engagement, and productive contribution to the society.
- It must prepare students for more meaningful and satisfying lives and work roles and enable economic independence.

- Some of the major problems currently faced by the higher education system in India include
- a severely fragmented higher educational ecosystem;
- less emphasis on the development of cognitive skills and learning outcomes;
- A rigid separation of disciplines, with early specialisation and streaming of students into narrow areas of study;
- limited access particularly in socio-economically disadvantaged areas, with few HEIs that teach in local languages
- limited teacher and institutional autonomy;
- inadequate mechanisms for merit-based career management and progression of faculty and institutional leaders;
- lesser emphasis on research at most universities and colleges, and lack of competitive peer-reviewed research funding across disciplines;
- suboptimal governance and leadership of HEIs;
- an ineffective regulatory system; and
- large affiliating universities resulting in low standards of undergraduate education.
- This policy envisions the following key changes to the current system :
- moving towards multidisciplinary universities and colleges, with more HEIs across India that offer medium of instruction in local/Indian languages;
- moving towards a more multidisciplinary undergraduate education;
- moving towards faculty and institutional autonomy;
- revamping curriculum, pedagogy, assessment, and student support
- reaffirming the integrity of faculty and institutional leadership positions
- establishment of a National Research Foundation
- governance of HEIs by independent boards having academic and administrative autonomy;
- "light but tight" regulation by a single regulator for higher education;
- increased access, equity, and inclusion

INSTITUTIONAL RESTRUCTURING AND CONSOLIDATION :-

- By 2040, all higher education institutions (HEIs) shall aim to become multidisciplinary institutions, each of which will aim to have 3,000 or more students.
- There shall, by 2030, be at least one large multidisciplinary HEI in or near every district.
- The aim will be to increase the Gross Enrolment Ratio in higher education including vocational education from 26.3% (2018) to 50% by 2035.
- Growth will be in both public and private institutions, with a strong emphasis on developing a

large number of outstanding public institutions.

- A university will mean a multidisciplinary institution of higher learning that offers undergraduate and graduate programmes, with high quality teaching, research, and community engagement.
- The definition of university will thus allow a spectrum of institutions that range from those that place equal emphasis on teaching and research i.e., Research-intensive Universities. Those that place greater emphasis on teaching but still conduct significant research i.e. Teaching-intensive Universities.
- Autonomous degree-granting College (AC) will refer to a large multidisciplinary that grants undergraduate degrees and is primarily focused on undergraduate teaching though it would not be restricted to that.
- A stage-wise mechanism for granting graded autonomy to colleges, through a transparent system of graded accreditation, will be established. HEIs will have the autonomy and freedom to move gradually from one category to another, based on their plans, actions, and effectiveness.
- These three broad types of institutions are not in any natural way a rigid, exclusionary categorization, but are along a continuum.
- HEIs will support other HEIs in their development, community engagement and service, contribution to various fields of practice, faculty development for the higher education system, and support to school education.
- Institutions will have the option to run Open Distance Learning (ODL) and online programmes, provided they are accredited to do so.
- Single-stream HEIs will be phased out over time, and all will move towards becoming vibrant multidisciplinary institutions or parts of vibrant multidisciplinary HEI clusters.

TOWARDS A MORE HOLISTIC AND MULTIDISCIPLINARY EDUCATION :-

- A holistic and multidisciplinary education would aim to develop all capacities of human beings -intellectual, aesthetic, social, physical, emotional, and moral in an integrated manner.
- Such a holistic education shall be, in the long term, the approach of all undergraduate programmes, including those in professional, technical, and vocational disciplines.
- Even engineering institutions, such as IITs, will move towards more holistic and multidisciplinary education with more arts and humanities. Students of arts and humanities will aim to learn more science and all will make an effort to incorporate more vocational subjects and soft skills.
- Imaginative and flexible curricular structures will enable creative combinations of disciplines

for study, and would offer multiple entry and exit points.

• Departments in Languages, Literature, Music, Philosophy, Indology, Art, Dance, Theatre, Education, Mathematics, Statistics, Pure and Applied Sciences, Sociology, Economics, Sports, Translation and Interpretation, etc. will be established and strengthened at all HEIs.

• Curricula of all HEIs shall include credit-based courses and projects in the areas of community engagement and service, environmental education, and value-based education.

• The undergraduate degree will be of either 3 or 4-year duration, with multiple exit options within this period, with appropriate certifications, e.g., a certificate after completing 1 year in a discipline or field including vocational and professional areas, or a diploma after 2 years of study, or a Bachelor's degree after a 3-year programme. The 4-year multidisciplinary Bachelor's programme, however, shall be the preferred option.

• An Academic Bank of Credit (ABC) shall be established which would digitally store the academic credits earned from various recognized HEIs so that the degrees from an HEI can be awarded taking into account credits earned.

• The 4-year programme may also lead to a degree 'with Research' if the student completes a rigorous research project in their major area(s) of study as specified by the HEI.

• Model public universities for holistic and multidisciplinary education, at par with IITs, IIMs, etc., called MERUs (Multidisciplinary Education and Research Universities) will be set up and will aim to attain the highest global standards in quality education.

• HEIs will focus on research and innovation by setting up start-up incubation centres, technology development centres in frontier areas of research, greater industry academic linkages, and interdisciplinary research including humanities and social sciences research.

OPTIMAL LEARNING ENVIRONMENTS AND SUPPORT FOR STUDENTS :-

• Institutions and faculty will have the autonomy to innovate on matters of curriculum, pedagogy, and assessment within a broad framework of higher education qualifications.

• All assessment systems shall also be decided by the HEI, including those that lead to final certification. The Choice Based Credit System (CBCS) will be revised for instilling innovation and flexibility.

• HEIs shall move to a criterion-based grading system that assesses student achievement based on the learning goals for each programme.

• HEIs shall also move away from high-stakes examinations towards more continuous and comprehensive evaluation.

• Each institution will integrate its academic plans ranging from curricular improvement to

quality of classroom transaction - into its larger Institutional Development Plan (IDP).

- High-quality support centres and professional academic and career counselling will be made available to all students.
- Norms, standards, and guidelines for systemic development, regulation, and accreditation of ODL will be prepared, and a framework for quality of ODL that will be recommendatory for all HEIs will be developed.
- All programmes, courses, curricula, and pedagogy across subjects, including those in-class, online, and in ODL modes as well as student support will aim to achieve global standards of quality.

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 13-18

आधुनिक जनसंचार के माध्यमों से किशोरों की आपराधिक प्रवृत्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

मुकेश कुमार ढ़ाका, पी.एच.डी. शोद्यार्थी
डॉ. रेखा सोनी, उप प्राचार्या
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

सारांश :-

प्रस्तुत आधुनिक जनसंचार के माध्यमों से किशोरों की आपराधिक प्रवृत्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया हैं। अध्ययन में प्राप्त आंकडों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गए है। यह अध्ययन राजस्थान के श्रीगंगानगर व हनुमानगढ़ जिले के सी. बी. एस. ई. बोर्ड व राजस्थान बोर्ड विद्यालयों में अध्ययनरत् कुल 600 छात्र– छात्राओं पर किया गया है। इस हेतु जनसंचार माध्यम सूची (स्वनिर्मित) किशोरों द्वारा जनसंचार माध्यमों में पढ़े व देखे जाने वाले कार्यक्रमों व आपराधिक कार्यक्रमों की जानकारी हेतु तथा आपराधिक प्रवृत्ति अभिमतावली (स्वनिर्मित) का उपयोग किया गया है। निष्कर्ष रूप में पाया गया कि सी. बी. एस. ई. बोर्ड व राजस्थान बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययन करने वाले किशोरों आपराधिक प्रवृत्ति समान है।

प्रस्तावना :-

आज हम विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के युग में जीवन व्यतीत कर रहे हैं और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। मनुष्य समाज के विकास हेतु सदैव क्रियाशील रहता है। विकास के इस अंतहीन पथ में उसने अनेक भौतिक संसाधनों को अपनाया है, जिसमें जनसंचार माध्यम प्रमुख हैं। जनसंचार माध्यमों को मुख्यतया दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– प्रिन्टमीडिया एवं इलेक्ट्रानिक मीडिया। प्रिन्टमीडिया के अन्तर्गत समाचार–पत्र, पत्रिकाएँ तथा इलेक्ट्रानिक मीडिया के अन्तर्गत रेडियो, टेलीविजन, मोबाइल, कम्प्यूटर व इन्टरनेट आते हैं।

एक तरफ जहाँ जनसंचार माध्यम सूचना आदान–प्रदान के महत्वपूर्ण स्रोत की भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ मनोरंजन के नाम पर आपराधिक गतिविधियों को अंजाम देने में प्रयुक्त विधियों को दिखाने मे भी कोई गुरेज नहीं कर रहे हैं। समाचार–पत्रों में अपराध प्रकाशित किये जाते हैं और अपराध की विधियों का भी वृहद रुप में वर्णन किया जाता है। इसके अलावा अपराध को आकर्षक व लाभदायक दिखाने, अपराधी को प्रतिष्ठा देने तथा अपराधी के प्रति सहानुभूति रखने में भी समाचार–पत्र प्रमुख भूमिका निभाते हैं। टेलीविजन आधुनिक मनोरंजन का सबसे सस्ता और सर्वसुलभ साधन है। टेलीविजन में दृश्यों के अति सुन्दरीकरण,

असंतुलित यौन भावनाओं के प्रर्दशन, प्रेम की नई–नई विधियों, उतेजक दृश्यों, परम्पराओं और रुढ़ियों की उपेक्षा से युक्त कार्यक्रम भरपूर मात्रा में दिखलाये जा रहे हैं। स्मार्टफोन के प्रचलन के पश्चात् इन्टरनेट ने किशोरों को तेजी से अपनी तरफ आकर्षित किया है। इन्टरनेट पर अश्लील साहित्य, अश्लील दृश्य व उतेजक दृश्य सुगमता से उपलब्ध हैं। जो सूचनायें पता करने में पहले वर्षों लग जाते थे, अब वो सूचनायें इन्टरनेट पर केवल एक पल में उपलब्ध हैं। जैसे – बम बनाने की विधि, साइबर अपराध के तरीके, फिशिंग आदि।

टेलीविजन में दिखाई जाने वाली जासूसी घटनाओं व समाचारों में अपराध व हिंसा को आकर्षक तरीके से प्रस्तुत किया जाता है, फिल्मों व धारावाहिकों में नायक व नायिकाओं को समाज में प्रचलित अनैतिक घटनाओं, सामाजिक बुराइयों व रुढ़ियों को समाप्त करते दिखलाया जाता है। जो बच्चे टेलीविजन में दिखाये जाने वाले कार्यक्रमों को वास्तविक नहीं समझते हैं, उनको टेलीविजन में दिखाये जाने वाले कार्यक्रम प्रभावित नहीं करते हैं। इसके विपरीत जो बच्चे टेलीविजन में दिखाये जाने वाले कार्यक्रमों को वास्तविक समझते हैं, उनके अन्दर टेलीविजन भय की प्रवृति को बढ़ाने में सहायक होता है ।

आज समाचार–पत्रों में अपराध व हिंसा से जुड़ी घटनाओं को प्रमुख समाचारों में स्थान देकर मुख्य पृष्ठ पर प्रकाशित किया जाता है। जनसंचार माध्यमों में प्रदर्शित हिंसा, देखने वाले को आक्रामक व्यवहार करने के तरीकों से परिचित कराती है, साथ ही यह भी बताने में सहायक होती है कि कैसे आक्रामक व्यवहार को हम व्यवहारिक जीवन में लायें। यद्यपि टेलीविजन में दिखाये जाने वाले अपराध व हिंसा से जुड़े कार्यक्रमों से सारे बच्चे प्रभावित नहीं होते हैं तथा न ही सारे बच्चे एक ही जनसंचार माध्यम से प्रभावित हो सकते हैं, फिर भी इस बात के पक्के साक्ष्य हैं कि टेलीविजन में दिखाये जाने वाले अपराध व हिंसा से जुड़े कार्यक्रम किशोरों हेतु नुकसानदायक हैं।

किशोरावस्था, जिसमें शैक्षिक तथ्यों व व्यवहारिक अनुभवों से परिचित कराते हुए किशोर के अन्दर नैतिक मूल्यों व चारित्रिक सद्गुणों की स्थापना करनी चाहिए। उस अवस्था में किशोर सही दिशा निर्देशन, देखरेख व नियंत्रण न होने की वजह से गलत राह चुन लेते हैं और अपनी पूरी जिन्दगी बर्बाद कर लेते हैं। इस तरह उनकी स्वयं की जिन्दगी तो लक्ष्यहीन होकर मृतप्राय हो ही जाती है, इसके साथ–साथ राष्ट्र की भी अपूर्णनीय क्षति होती है। किशोर राष्ट्र के भविष्य होते हैं। अगर समय रहते हम सचेत नहीं हुए तो किशोर ऊर्जा का निरर्थक उपयोग तो होगा ही राष्ट्र की प्रगति भी अवरोधित होगी।

प्रस्तुत शोध का महत्व :-

अपराध एक ऐसी प्रकिया है, जो लगभग तभी से अस्तित्व में है, जबसे मानव सभ्यता अस्तित्व में आयी है। वस्तुतः जैसे–जैसे मानव सभ्य होता गया, वैसे–वैसे अपराधों का ग्राफ भी ऊपर चढ़ता गया। अपराध के आज इतने रुप सामने आ चुके हैं कि सोचकर भी हैरत होती है। अपराध किसी एक सभ्यता या समाज की ही समस्या नहीं है, अपितु विश्व के लगभग हर क्षेत्र और हर सभ्यता को अपराधों ने अपनी चपेट में ले रखा है। विकासशील राष्ट्र हो या विकसित देश, सभी देश आज अपराधों की विभिन्न प्रकृति के कारण परेशान हैं। जीवन का कोई भी रंग और कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जो अपराधों के साये से मुक्त हो। अपराधों की गम्भीरता का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि हर देश की अर्थव्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा उस देश की कानून व्यवस्था की स्थिति को नियंत्रण में रखने में लग जाता है।

यह सच है कि आधुनिक जनसंचार के माध्यमों ने आज हमारे जीवन में क्रांतिकारी स्थिति पैदा कर दी है। जनसंचार माध्यमों ने हमारे जीवन को बेहद तेज गति प्रदान की है, हर चीज बहुत तेजी से भाग रही है। तीन दशक पहले तक दूरभाष जैसी वस्तु इतनी असामान्य थी कि किसी के घर में दूरभाष होना प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता था लेकिन अब हमारा देश संचार क्रांति के दौर से गुजर रहा है और दूरभाष की सुविधा गांव–गांव तक पहुँच गयी है। टेलीविजन घर–घर में उपलब्ध है। दूरभाष व टेलीविजन के बाद अब मोबाइल फोन भी आम आदमी के हाथों तक पहुँच गये हैं। स्मार्टफोन ने इन्टरनेट व टेलीविजन चैनलों को सुलभ बना दिया है। इन सुविधाओं के कारण हमारा जीवन अब काफी सरल व सुविधाजनक हो गया है लेकिन तस्वीर का दूसरा पहलू बेहद चिंताजनक है। इन जनसंचार माध्यमों के अनुप्रयोग ने किशोरों की स्वाभाविक मानसिक विकास प्रक्रिया को बाधित करने का भी काम किया है। विभिन्न जनसंचार माध्यमों से प्राप्त नकारात्मक सूचनाओं से किशोर मन में इनके प्रति स्वाभाविक जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है, जिसकी परिणति भयावह होती है।

इस समय समाचार–पत्र में अपराध व हिंसा से जुड़ी घटनाओं को प्रमुख समाचारों में स्थान देकर मुख्य पृष्ठ पर प्रकाशित किया जाता है। टेलीविजन में दिखाई जाने वाली जासूसी घटनाओं व समाचारों में अपराध व हिंसा को आकर्षक तरीके से प्रस्तुत किया जाता है, फिल्मों व धारावाहिकों में नायक व नायिकाओं को समाज में प्रचलित अनैतिक घटनाओं, सामाजिक बुराइयों व रुढ़ियों को समाप्त करते दिखलाया जाता है। जो बच्चे टेलीविजन में दिखाये जाने वाले कार्यक्रमों को वास्तविक नहीं समझते हैं, उनको टेलीविजन में दिखाये जाने वाले कार्यक्रम प्रभावित नहीं करते हैं। इसके विपरीत जो बच्चे टेलीविजन में दिखाये जाने वाले कार्यक्रमों को वास्तविक समझते हैं, उनके अन्दर टेलीविजन भय की प्रवृत्ति को बढ़ाने में सहायक होता है। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि हम किशोरों में आपराधिक प्रवृत्ति विकसित करने में जनसंचार माध्यमों की भूमिका का अध्ययन करें।

समस्या कथन :–

''आधुनिक जनसंचार के माध्यमों से किशोरों की आपराधिक प्रवृत्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन''

शोध शीर्षक में प्रयुक्त शब्दों का परिभाषीकरण

आधुनिक जनसंचार के माध्यम :–

इस अध्ययन में आधुनिक जनसंचार के माध्यमों से तात्पर्य मुख्य रुप से समाचार–पत्रों, टेलीविजन व इन्टरनेट से है, जिनका प्रयोग किशोर परस्पर विचारों के आदान–प्रदान, मनोरंजन व विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त करने में करते हैं।

किशोर :–

किशोरावस्था मानव विकास के चरण में तीसरी अवस्था है यह बाल्यावस्था और प्रौढ़ावस्था के बीच परिवर्तन की अवस्था है। व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से इसे जटिल अवस्था कहा जाता है। किशोरावस्था अंग्रेजी भाषा के Adolescence शब्द से बना है जिसका उद्‌भव लैटिन भाषा के शब्द Adolesre से हुआ है जिसका अर्थ "परिपक्वता की ओर बढ़ना" है। इससे स्पष्ट है कि किशोरावस्था वह अवस्था है जिसमें बाल्यावस्था के बाद व्यक्ति पदार्पण करता है।

सामान्यतया यह अवस्था तेरह वर्ष से उन्नीस वर्ष तक मानी जाती है। इसलिए इस अवस्था को Teen Age भी कहा जाता है। सामान्यतः बालकों की किशोरावस्था लगभग 13 वर्ष की आयु में और बालिकाओं की

लगभग 12 वर्ष की आयु में आरम्भ होती है। भारत में यह आयु पश्चिम के ठण्डे देशों की अपेक्षा एक वर्ष पहले आरम्भ हो जाती है। इस अध्ययन में किशोर से अभिप्राय उन छात्र एवं छात्राओं से है जो 13 वर्ष से 19 वर्ष की आयु के मध्य हैं। शोध कार्य में 10वीं, 11वीं एवं 12वीं कक्षा के विद्यार्थियों को माना गया है।

अपराधिक प्रवृति :–

जिस समाज में व्यक्ति जीवन व्यतीत करता है, उसके कुछ निश्चित मूल्य व मानदण्ड होते हैं। इसके अलावा प्रत्येक समाज में पूर्वनिश्चित रिति–रिवाजों, मान्यताओं, रुढ़ियों व परम्राओं का प्रचलन होता है। समाज में रहने वाला प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति इनको स्वीकार करता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समाज में प्रचलित मूल्यों, मानदण्डों, रिति–रिवाजों, मान्यताओं, रुढ़ियों व परम्राओं की बाध्यता को स्वीकार न कर इनको विचलित करने की प्रवृति को आपराधिक प्रवृति कहा जा सकता है। कानूनी दृष्टिकोण से कानून द्वारा वर्जित कार्यों को करने की प्रवृति को आपराधिक प्रवृति कहा जा सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य :–

1. सी. बी. एस. ई. बोर्ड व राजस्थान बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययन करने वाले किशोरों की आपराधिक प्रवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. किशोर छात्र व छात्राओं की आपराधिक प्रवृत्ति तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकपनाएँ :–

1. सी. बी. एस. ई. बोर्ड व राजस्थान बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययन करने वाले किशोरों की आपराधिक प्रवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. किशोर छात्र व छात्राओं की आपराधिक प्रवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

न्यादर्श :–

प्रस्तुत शोध में न्यादर्श के रूप में श्री गंगानगर व हनुमानगढ़ जिले के सी. बी. एस. ई. बोर्ड व राजस्थान बोर्ड विद्यालयों में अध्ययनरत् कुल 600 किशोरों का चयन किया गया है।

शोध में प्रयुक्त उपकरण :–

1. जनसंचार माध्यम सूची (स्वनिर्मित) :

किशोरों द्वारा जनसंचार माध्यमों में पढ़े व देखे जाने वाले कार्यक्रमों व आपराधिक कार्यक्रमों की जानकारी हेतु स्वनिर्मित जनसंचार माध्यम सूचीका प्रयोग किया गया।

2 आपराधिक प्रवृत्ति अभिमतावली (स्वनिर्मित) :

किशोरों में आपराधिक प्रवृत्ति के मापन हेतु स्वनिर्मित आपराधिक प्रवृत्ति अभिमतावली का प्रयोग किया गया।

प्रदत्तों का विश्लेषण व विवेचन :–

1. सी. बी. एस. ई. बोर्ड व राजस्थान बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययन करने वाले किशोरों की आपराधिक प्रवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी संख्या – 1

संस्थान	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी मान	सार्थकता का स्तर
सी. बी. एस. ई. बोर्ड विद्यालय	300	23.41	6.211		
राजस्थान बोर्ड विद्यालय	300	23.63	5.915	0.444	स्वीकृत

व्याख्या :–

उपर्युक्त सारणी संख्या 1 में सी. बी. एस. ई. बोर्ड व राजस्थान बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययन करने वाले किशोरों की आपराधिक प्रवृत्ति से सम्बन्धित दत्तों को विश्लेषित किया गया है। सी. बी. एस. ई. बोर्ड व राजस्थान बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययन करने वाले किशोरों की आपराधिक प्रवृत्ति का मध्यमान क्रमशः 23.41 व 23.63 प्राप्त हुए है। इनका मानक विचलन क्रमशः 6.211 व 5.915 प्राप्त हुए तथा इसके आधार पर टी–मान 0.444 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के स्तर 0.01 जिसका सारणी मान 2.59 से कम है तथा सार्थकता के स्तर 0.05 जिसका सारणी मान 1.96 से कम है। अतः इस आधार पर शोधकर्त्ता द्वारा निर्मित शून्य परिकल्पना को सार्थकता के दोनों स्तरों पर स्वीकृत किया जाता है तथा परिणाम स्वरूप कहा जा सकता है कि सी. बी. एस. ई. बोर्ड व राजस्थान बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययन करने वाले किशोरों की आपराधिक प्रवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं है। अर्थात् सी. बी. एस. ई. बोर्ड व राजस्थान बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययन करने वाले किशोरों की आपराधिक प्रवृत्ति समान है।

2. किशोर छात्र व छात्राओं की आपराधिक प्रवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी संख्या – 2

संस्थान	संख्या	मध्यमान विचलन	प्रमाप	टी मान का स्तर	सार्थकता
किशोर छात्र	300	24.20	5.839		
किशोर छात्राएं	300	22.85	6.211	1.804	स्वीकृत

परिकल्पना संख्या 2 के अनुसार उपर्युक्त सारणी संख्या 6 में किशोर छात्र व छात्राओं की आपराधिक प्रवृत्ति से सम्बन्धित दत्तों को विश्लेषित किया गया है। किशोर छात्र व छात्राओं की आपराधिक प्रवृत्ति का मध्यमान क्रमशः 24.20 व 22.85 प्राप्त हुए है। इनका मानक विचलन क्रमशः 5.839 व 6.211 प्राप्त हुए तथा इसके आधार पर टी–मान 1.804 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के स्तर 0.01 जिसका सारणी मान 2.59 से अधिक है तथा सार्थकता के स्तर 0.05 जिसका सारणी मान 1.96 से अधिक है। अतः इस आधार पर शोधकर्त्ता द्वारा निर्मित शून्य परिकल्पना को सार्थकता के दोनों स्तरों पर अस्वीकृत किया जाता है तथा परिणाम स्वरूप कहा जा सकता है कि किशोर छात्र व छात्राओं की आपराधिक प्रवृत्ति की आपराधिक प्रवृत्ति में सार्थक अन्तर है।

निष्कर्ष :–

1. सी. बी. एस. ई. बोर्ड व राजस्थान बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययन करने वाले किशोरों की आपराधिक प्रवृत्ति समान है।
2. किशोर छात्र व छात्राओं की आपराधिक प्रवृत्ति की आपराधिक प्रवृत्ति असमान है।

उपयोगिता :–

1. किशोर विद्यार्थियों को मोबाईल/सोशल नेटवर्क का प्रयोग सीमित समय के लिए करना चाहिए क्योंकि ये किशोर विद्यार्थियों को शारीरिक एवं मानसिक हानि पहुँचाते हैं।
2. किशोर विद्यार्थियों को अपने दैनिक जीवन की समस्याओं के निवारण के लिए मल्टीमीडिया के विभिन्न एप्स का प्रयोग किया जाना चाहिए जैसे – ऑनलाईन ट्रांजक्शन, ऑनलाईन बैकिंग एवं ऑनलाईन ट्रैवलिंग आदि।

भावी शोध हेतु सुझाव :–

1. प्रस्तुत अध्ययन में समाचार–पत्रों में प्रकाशित खबरों की प्रकृति व समाचार–पत्रों में प्रकाशित आपराधिक खबरों की प्रकृति को आधार बनाया गया है, आगामी अध्ययनों में समाचार–पत्र पढ़ने की अवधि को भी अध्ययन में शामिल किया जा सकता है।

2. प्रस्तुत अध्ययन में इंटरनेट पर उपलब्ध साइट्स की प्रकृति व इंटरनेट से प्राप्त आपराधिक साइट्स की प्रकृति को आधार बनाया गया है, आगामी अध्ययनों में इंटरनेट प्रयोग की अवधि को भी अध्ययन में शामिल किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची :–

1. उपाध्याय, डा. अनिल कुमार : उपग्रह एवं केबल टी.वी. का समाज पर 'संचार माध्यम' भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली 1994
2. कपिल, एच. के. (2006), सांख्यिकी के मूल तत्व, आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर।
3. डॉ. शर्मा, वी. एस. ''शिक्षा मनोविज्ञान'' साहित्य प्रकाशन आगरा (2004)
4. डॉ. अरोड़ा रीता, सुदेश मारवाह (2005) ''शिक्षा मनो विज्ञान एवं सांख्यिकी'' शिक्षा प्रकाशन जयपुर, पृष्ठ संख्या (407–430)
5. भार्गव, ऊषा (1993) किशोर मनोविज्ञान. जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पृष्ठ संख्या–109
6. राव, एम चलपति : रोल आफ मीडिया इन डेवलपिंग कंट्रीज कयुनिकेटर, इण्डियन इस्टीट्यूट आफ मास कम्युनिकेशन, नई दिल्ली।
7. सिंह ओ. पी. : ''संचार माध्यमों का प्रभाव'' क्लासीकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 19
8. सुखिया, एस.पी. (1990) शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व. आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।
9. सिंह, श्यामधर (2008) अपराधशास्त्र के सिद्धान्त. वाराणसी : सपना अशोक प्रकाशन।
10. श्रीवास्तव, डी.एन. और वर्मा, प्रीति (2007) शिक्षा अनुसंधान में सांख्यिकी विधियाँ आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 19-23

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का शैक्षिक दर्शन एवं सामाजिक परिवर्तन में इसकी प्रासंगिकता

डॉ. अनिल कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर
योगराज, पी.एच.डी. शोद्यार्थी
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

सारांश :-

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का बहुश्रुत नाम बाबा साहेब अम्बेडकर भी है। डॉ. अम्बेडकर एक प्रवीण शिक्षाविद्, राजनीतिज्ञ तथा सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत थे। इन्हें आधुनिक भारत में दलितों का मसीहा कहा जाता है। बाबा साहेब एक विशिष्ट व्यक्तित्व के धनी थे। डॉ अम्बेडकर को सामाजिक व्यवस्था से पृथक नहीं किया जा सकता। डॉ अम्बेडकर ने समाज में फैले अन्याय एवं दमन, जाति एवं छूआछूत, शोषण तथा अधर्म से डटकर मुकाबला किया, क्योंकि बाबा साहेब भी एक अछूत समुदाय से थे। उनको अपने जीवन में बाल्यावस्था से ही शिक्षा ग्रहण करने के लिए बहुत ही कठिनाईयां, अत्याचारों एवं भेद–भाव का सामना करना पड़ा था। डॉ अम्बेडकर ने जब इस तरह अछूत जातियों के साथ होते अत्याचार को द्वेश तो उनके मन में बचपन से ही ये भावना जाग्रत हो गई थी कि वह उच्च शिक्षा प्राप्त करके अपने समाज के लोगों को इस छूआछूत के जीवन से मुक्ति दिलायेंगे और उनको समाज में एक उच्च व आदरपूर्ण जीवन जीने का हक दिलायेंगे। उन्होंने अपने विद्वत्ता के प्रकाश में न केवल भारत देश को अपितु पूरे संसार को आलोकित किया। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र पर गहनता से विचार किया तथा कीचड़ में कमल खिलते हैं कि कहावत को चरितार्थ किया। शिक्षा में उनके द्वारा लिखे शोध प्रबन्धें, शोध–पत्रों पुस्तकों तथा लेखों को दुनियाभर के विद्वान उत्साहपूर्वक पढ़ते थे। डॉ. अम्बेडकर के शैक्षिक चिन्तन के कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दु मानव जीवन में शिक्षा की महत्ता का आभास कराते हैं। शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो के इस त्रि–सूत्रीय संदेश में उन्होंने शिक्षा को पहला स्थान दिया है। 'पढ़ो और पढ़ाओ' की सीखों उन्होंने सबको दी। शिक्षा की चाबी से विकास का ताला खुल सकता है। समाज को जड़ता तथा परम्परागत रूढ़ियों से मुक्ति दिलाने एवं आधुनिक समाज के विकास के लिए शिक्षा अनिवार्य है।

संकेत शब्द – डॉ. भीमराव अम्बेडकर, शैक्षिक दर्शन, सामाजिक परिवर्तन, शिक्षित बनो।

प्रस्तावना :-

शिक्षा न केवल प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है बल्कि सामाजिक परिवर्तन का एक हथियार भी है।'' डॉ. भीमराव अम्बेडकर या किसी भी महान व्यक्ति के शैक्षिक दर्शन को जानने से पूर्व उनके जीवन परिचय

और विशेष रूप से जीवन दर्शन से जुड़ी बातों को जानना आवश्यक होता है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रतिपादित त्रि–सूत्रीय वत्तफव्य दलित समाज के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज के लिए मील का पत्थर के समान है। किसी भी समाज को विकास के लिए इस त्रि–सूत्रीय उपदेश ''शिक्षक बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो'' की आवश्यकता होती है। क्योंकि शिक्षा ही व्यक्ति के विवेक को जगाती है। उसमें अच्छे और बुरे के प्रति समग्र विकसित करती है। शिक्षित व्यक्ति ही अखण्ड संगठन का निर्माण कर सकते है तथा संगठित समाज ही विकास के लिए संघर्ष कर सकता है। अतः किसी समाज या देश के विकास के लिए उन्होने उक्त वर्णित त्रि–सूत्रीय विचार को महत्वपूर्ण माना है। जिसमें उन्होने शिक्षा को प्राथमिकता दी है। उन्होंने अनुभव किया कि शिक्षा के बिना मनुष्य पशु तुल्य है। शिक्षित नागरिक ही समाज एवं देश का विकास कर सकते है क्योंकि वे समाज की दकियानूसी परम्पराओं को तोड़ने तथा उसे नयी दिशा देने की क्षमता रखते हैं।

शोध अध्ययन का उद्देश्य :–

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य बाबा साहब भीमराव अंबेडकर के दर्शन का अध्ययन करना है साथ ही साथ इस का भी अवलोकन करना है कि उनका शैक्षिक विचार सामाजिक परिवर्तन में कहां तक प्रासंगिक है आज की विषम परिस्थितियों में यह भी जानना आवश्यक है कि उनके विचार कहां तक प्रभावी रहे हैं। अस्तु इन सभी बिदुन्ओं को दृष्टिगत रखते हुए शोध अध्ययन के उद्देश्य माने गए हैं :–

1. चिन्तक के रूप में बाबा साहब के विचारों को निर्धारित करना।
2. बाबा साहब के शैक्षिक दर्शन के तात्विक पक्षों की व्याख्या करना।
3. बाबा साहब के पिछड़े वर्ग के सम्बन्ध में शैक्षिक विचारों का अध्ययन करना।
4. डॉ. भीमराव अम्बेडकर द्वारा दलितों के शैक्षिक उत्थान के लिए शिक्षा के योगदान का अध्ययन करना।
5. बाबा साहब के सामाजिक दर्शन की व्याख्या करना।
6. राष्ट्र के शैक्षिक उत्थान में बाबा साहब के विचारों का निर्धारण करना।
7. सामाजिक परिवर्तन में बाबा साहब के शैक्षिक दर्शन की प्रासंगिकता का स्पष्ट करना।

शैक्षिक दर्शन :–

विवेक से जीना। हमेशा जागरूक रहना। ऐसी स्थिति में ही मनुष्य चिंतन में प्रवेश कर सकता है। वह चेतना में जीता है, इसीलिए दर्शन (चिंतन) को हम केवल विवेक मानते है। दर्शन जब शिक्षा से सम्बन्धित हो तो उसे शैक्षिक दर्शन कहते है। डॉ. अम्बेडकर के शैक्षिक दर्शन ने देश में हर क्षेत्र को प्रभावित किया है। बाबा साहेब अछूत परिवार से होने के कारण उनको अपने बाल्यावस्था से ही बहुत कठिनाईयों का सामना करना पड़ा था। बाबा साहेब के लिए कहा जा सकता है कि जो तपता है, जो संघर्ष करता है वही, खरा सोना होता है। जिस प्रकार आग में तप कर सोना खरा होता है उसी प्रकार व्यक्ति संघर्ष करके ही विकास करता है और सच्चाई उनके जीवन में दिखाई देती है। बाबा साहेब ने शिक्षा व समाज में गहरा सम्बन्ध बताया। उनके अनुसार सुशिक्षित नागरिक सुसभ्य समाज का निर्माण करते हैं। उनका मानना था कि शिक्षा को जीवन से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि शिक्षा से मनुष्यता व शांति दोनों मिलती है। शिक्षा के अभाव में मनुष्य पशु समान है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार व्यत्तिफ के बहुमुखी विकास के लिए शिक्षा बहुत जरूरी होती है।

उनके अनुसार शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य :-

1. नैतिक धर्म एवम् चारित्रिक विकास।
2. शारीरिक विकास व एकता शक्ति का विकास।
3. मानसिक तथा बौद्धिक विकास।
4. संकीर्णता से मुक्ति।
5. राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय एकता।

बाबा साहेब के अनुसार जन–समुदाय के लिए एक समान शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। शिक्षा के लिए जात–पात का भेद नहीं होनी चाहिए। उन्होंने अपने जीवन में शिक्षा प्राप्त करने के लिए इन सब धर्मिक परम्पराओं का सामना किया था जिससे दलित समाज के लोगों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। इसलिए बाबा साहेब चाहते थे कि जन–समुदाय की एक समान शिक्षा व्यवस्था हो जिसमें समाज में कोई भेद–भाव की स्थित ना रहे। सभी को शिक्षा पाने का अधिकार मिले। उनके अनुसार समाज के हर वर्ग की स्थिति में सुधर होगा। बाबा साहेब दलित समाज के प्रमुख नेता थे। डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय समाज में नारी के प्रति असंगतियों तथा असमानताओं का सविस्तार विवरण किया था। उन्होंने नारी जाति की समाज में स्थिति पर भी गहनता से चिन्तन किया था। उनके अनुसार महिलाओं का शिक्षित होना बहुत जरूरी है क्योंकि जब तक एक महिला शिक्षित नहीं होगी तो उसका पूरा परिवार शिक्षित कैसे होगा? डॉ. अम्बेडकर ने समाज में नारी की स्थिति को सुधरने उनको शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार व नारी को पुनः प्रतिष्ठित करने हेतु हिन्दू कोड बिल प्रस्तुत किया था। बाबा साहेब ने नारी को शिक्षित करके उसकी स्वतंत्राता पर बल दिया था। उन्होंने महिला शिक्षा को सुदृढ़ करने के लिए संविधान में भी प्रावधन किया। बाबा साहेब के अनुसार कोई भी व्यक्ति जन्म से ही बुद्धिमान व पराक्रमी नहीं होता। शिक्षा के द्वारा अपने व्यक्तित्व का विकास करके तथा ज्ञान के बंद द्वार खोल कर एक सामान्य तथा नीची जाति का व्यक्ति भी पराक्रमी व बुद्धिमान बन सकता है। उन्होंने अपने शैक्षिक दर्शन में केवल अक्षर ज्ञान को ही महत्व नहीं देते थे अपितु शिक्षा के द्वारा चरित्र पर बल देते थे। चरित्र के अभाव में शिक्षा महत्वहीन है। शिक्षा व संस्कारों के प्रचार–प्रसार हेतु उन्होंने मार्च 1924 में बहिष्कृत हिताकरिणी की स्थापना की तथा उसके निम्नलिखित उद्देश्य निर्धरित किये।

1. अस्पृश्यों की आर्थिक स्थिति सुधरने के लिए औद्योगिक और कृषि विषय की स्कूलों की स्थापना करना।
2. छात्रावास स्थापित करना।
3. अस्पृश्य समाज में उच्च संस्कृति को बढ़ाने के लिए विभिन्न स्थानों पर वाचनालय शिक्षा की कक्षाएं और स्वाध्याय की स्थापना करना।
4. गरीब छात्रों की आर्थिक सहायता करना।

संवैधानिक प्रावधानों के आलोक में डॉ. भीमराव अम्बेडकर के शैक्षिक दर्शन का स्वरूप :-

प्रस्तुत शोध के अनुसार डॉ. भीमराव अम्बेडकर की संविधान निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका के कारण ही उन्हें संविधान का जनक भी कहा जाता है। उन्होंने दलित उत्थान उनके लिए शिक्षा प्राप्ति व समाज में स्थान प्राप्ति के लिए आन्दोलन ही नहीं चलाए बल्कि भारतीय संविधान में दलित तथा पिछड़ें वर्गो के हितों की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1. भारतीय संविधान में शिक्षा के लिए संवैधानिक प्रावधान :–

26 जनवरी 1950 को जब देश में अपना संविधान लागू किया गया। उस समय भारतीय संविधान में शिक्षा के सबन्ध में ऐसी अनेक धाराओं, उपधाराओं तथा उपबन्धों का विवरण किया है।

2. शिक्षा पाने का मूल अधिकार :–

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में प्राण एंव दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण करने के साथ–साथ नागरिकों को अनिवार्य शिक्षा पाने का मूल अधिकार का प्रावधान भी लागू किया।

3. धार्मिक शिक्षा :–

संविधान के अनुच्छेद 28–'1' के अनुसार राज्य निधि से पूर्णतः पोषित किसी भी शिक्षा संस्था में कोई भी धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। खण्ड '1' की कोई बात ऐसी शिक्षा संस्था में लागू नहीं होगी जिसका प्रशासन राज्य करता है।

4. सामाजिक/शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गो के लिए प्रावधान :–

अनुच्छेद 15(4), अनु. 15(1) तथा (2) के सामान्य नियम का दूसरा अपवाद अनुच्छेद 15(4) के अनुसार ''राज्य किसी सामाजिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ें हुए वर्गो या अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन जातियों की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है।''

5. नागरिकों का शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश का अधिकार :–

अनुच्छेद 29(2) के अनुसार राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य निधि से सहायता प्राप्त करने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश जाति, भाषा अथवा इसमें से किसी आधार पर दण्डित नहीं किया जा सकता है इस प्रकार किसी विशेष राज्यक्षेत्र में निवास के आधार पर प्रवेश के आरक्षण से 28(2) का अतिक्रमण नहीं होता।

अनुच्छेद 29(2) राज्य द्वारा पोषित या राज्य से सहायता प्राप्त करने वाली किसी शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश का समान अधिकार सभी नागरिकों को देता है। इस अनुच्छेद द्वारा शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश पाने का अधिकार व्यक्ति को एक नागरिक के रूप में प्राप्त है न कि समुदाय के सदस्य के रूप में।

6. डॉ. भीमराव अम्बेडकर की दलित शिक्षा संबंधी सोच :–

प्रस्तुत शोध के अनुसार अम्बेडकर जी की दलित शिक्षा की सोच में उनका दर्शन था कि जिस तरह हवा और पानी पर सभी का समान अधिकार होता है। उसी प्रकार शिक्षा पर भी सभी का समान अधिकार होना चाहिए। डॉ. अम्बेडकर के शिक्षा सम्बन्धी विचारों में वे सभी मूलभूत सिद्धान्त विद्वमान है जो कि दलितों के उत्थान करने के लिए शैक्षिक दृष्टि से आवश्यक है।

दलितों के शैक्षिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण उनमें शिक्षा का अभाव था, जिसे डॉ. अम्बेडकर ने महत्वपूर्ण समझकर लागू करने की सलाह दी और उसी का कारण है कि आज दलितों की स्थिति में सुधार हुआ और वे भारतीय समाज में समायोजित होने के लिए सक्षम है। दलित समाज की स्थिति में सुधार उनका शैक्षिक उत्थान करने का श्रेय डॉ. भीमराव अम्बेडकर को ही दिया जा सकता है।

अध्ययन की उपयोगिता :–

1. प्रस्तुत शोध में बाबा साहेब के शिक्षा सम्बन्धी विचार को एक व्यापक संकल्पना के रूप में अभिव्यक्त किया

गया है। उनका शैक्षिक चिन्तन व्यापक है। उन्होंने करीब–करीब शिक्षा के हर पहलू पर अपना चिन्तन प्रकट किया। अतः उनके शैक्षिक चिन्तन को एक समाज सुधारक व शिक्षाविद् के रूप में देखा जा सकता है। उनके शैक्षिक चिन्तन के प्रसार से वर्तमान समाज में भेद–भाव रहित शिक्षा की प्रतिष्ठापना की जा सकती है।

2. डॉ. अम्बेडकर के शैक्षिक चिन्तन में बताये सिद्धान्तों के रास्ते पर चलकर एक आदर्श समाज का निर्माण किया जा सकता है।
3. वर्तमान शिक्षा प्रणाली उनके विचारों पर आधारित प्रतीत होती है किन्तु जहां भी वह उनके विचारों से पृथक हुई वहीं उसकी प्रगति भी अवरूद्ध होती प्रतीत हुई है।

निष्कर्ष :–

डॉ. अम्बेडकर शिक्षा की महत्ता से भली–भांति परिचित थे। विदेशों में अध्ययन व भ्रमण के दौरान उन्होंने यह पाया कि जिस राष्ट्र के नागरिक जितने अधिक शिक्षित हैं वे राष्ट्र उतना ही विकसित है। अतः शिक्षा को ही विकास का मूलमंत्र मानकर उन्होंने संविधान के उपबन्धें में शिक्षा का प्रावधन किया। संवैधानिक प्रावधानों के अलोक में डॉ. अम्बेडकर का शैक्षिक दर्शन के तहत उनके विचारों की देश के लिए सार्थकता को समझकर शिक्षा के क्षेत्र में अम्बेडकर जी के शैक्षिक दर्शन का प्रभाव विभिन्न क्षेत्रों में देख सकते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. अम्बेडकर, डॉ. बी.आर., 'एनहिलेशन आपफ कास्ट'', भीम पत्रिाका प्रकाशन, जयपुर, जांलधर।
2. सिंह, रामगोपाल (1994), डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक चिन्तन, जैन ब्रदर्स चौड़ा रास्ता, जयपुर।
3. जाटव, डॉ. डी.आर., डॉ. अम्बेडकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व' समता साहित्य सदन, जयपुर।
4. जाटव, डॉ. डी.आर. (1996), डॉ. अम्बेडकर संविधन के मुख्य निर्माता, समता साहित्य सदन, जयपुर।
5. सिंह, मोहन, डा भीमराव अम्बेडकर, व्यक्तित्व के कुछ पहलू, लोक भारती प्रकाशन 15–ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद।
6. मधुलिमय, (1989), डॉ. अम्बेडकर एक चिन्तन, सरदार बल्लभभाई पटेल, एज्यूकेशन सोसाइटी, नई दिल्ली।
7. रणसूभे, डॉ. नारायण सूर्प (1992), डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. संखवार, डा रामस्वरूप, अम्बेडकर का जीवन चरित्र।
9. डॉ. अंगनेलाल, बोधिसत्य बाबा साहब डा अम्बेडकर जीवन और दर्शन।
10. बाबा साहब, डा अम्बेडकर सम्पूर्ण वाघ्मय, खण्ड–3
11. ठेगड़ी, दत्तोपंत (2005), डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक चिन्तन, जैन ब्रदर्स चौड़ा रास्ता, जयपुर।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 24-29

शिक्षक शिक्षा में प्रौद्योगिकी का उपयोग और एकीकरण

नगेन्द्र प्रताप
शोधार्थी

सार :-

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ICT एक व्यापक क्षेत्र है, जिसमें सूचना के संचार के लिये हर तरह की प्रौद्योगिकी समाहित है। यह वो प्रौद्योगिकी है जो कि सूचना के संचालन (रचना, भंडारण और उपयोग) की योग्यता रखता है तथा संचार के विभिन्न माध्यमों (रेडियो, टेलिविजन, सेलफोन, कम्प्यूटर, हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर, विभिन्न सेवाओं और अनुप्रयोगों) से सूचना के प्रसारण की सुविधा प्रदान करता है। कृषि, स्वास्थ्य, शासन प्रबन्ध और शिक्षा जैसे क्षेत्रों में आई.सी.टी. के विकास का प्रभाव है। यह लेख उच्च शिक्षा में आई.सी.टी. की भूमि को केंद्रित कर रहा है। शैक्षिक अवसरों को विस्तृत करने, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय विकास एवं शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिये आई.सी.टी. एक प्रभावशाली साधन है। सरकार आई.सी.टी. पर बहुत खर्च कर रही है। उच्च शिक्षा में बढ़ता नामांकन अनुपात तथा शिक्षा के विस्तार में प्रशिक्षित शिक्षकों की उपलब्धता में आई.सी.टी. की भूमिका पर नेशनल मिशन ऑफ एजुकेशन बल देता है। आई.सी.टी. के शिक्षा में अभिग्रहण के प्रमुख कारक है– किसी भी प्रणाली का लक्ष्य, कार्यक्रम और पाठ्यक्रम, पढ़ने तथा पढ़ाने के तरीके, अधिगम सामग्री और संसाधन, संवाद, समर्थन और वितरण प्रणाली छात्र एट्यूटर्स, स्टाफ और अन्य विशेषज्ञ, प्रबंधन और मूल्यांकन। अतः आई.सी.टी. के कार्यान्वयन से उच्च शिक्षा में निश्चित ही सुधार होगा।

शिक्षक की भूमिका :-

सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक केंद्रीय भूमिका में होते हैं। आईसीटी का उपयोग कर रहे शिक्षक के सुविधा प्रदाता की भूमिका में बदलाव होने से शिक्षकों द्वारा कक्षा में नेता के रूप में सेवा करने की जरूरत समाप्त नहीं हो जातीय शिक्षक के पारम्परिक नेतृत्व कौशल और उसका प्रयोग अभी भी महत्वपूर्ण हैं (विशेष रूप से उनके लिए, जो पाठ योजना, तैयारी तथा उनके फॉलो–अप में शामिल हों)।

आईसीटी का उपयोग करते समय पाठ की योजना बनाना महत्वपूर्ण है।

आईसीटी का उपयोग करते हुए पाठ की योजना बनाना महत्वपूर्ण है। अनुसंधान से पता चलता है कि जहां योजना अनुचित रूप से बनाई गई हो वहां छात्र का काम अक्सर विकेन्द्रित होता है और इससे लक्ष्य प्राप्ति में कमी आ सकती है।

केवल आईसीटी के अस्तित्व में होने से ही शिक्षकों की पद्धति नहीं बदलेगी। हालांकि, आईसीटी शिक्षकों को अपने शिक्षण पद्धति को बदलने तथा अधिक सक्षमता प्राप्त करने में मदद कर सकती है, बशर्ते आवश्यक

स्थितियां उपलब्ध करा दी जाएं। शिक्षकों की शैक्षणिक पद्धतियां और तार्किकता उनके द्वारा आईसीटी के उपयोग को प्रभावित करती है,आईसीटी को शिक्षकों द्वारा अधिक 'शिक्षार्थी केंद्रित' ज्ञानार्जन हेतु वातावरण बनाने में मदद देने वाले उपकरणों के रूप में देखा जाता है।

आईसीटी का शिक्षकों द्वारा शिक्षण पद्धतियों में उपयोग, अनिवार्य रूप से पारम्परिक तरीकों की शिक्षण पद्धतियों में मामूली संवर्धन से लेकर उनके शिक्षण के दृष्टिकोण में अधिक मौलिक परिवर्तन करने के लिए किया जा सकता है।

प्रस्तुति उपकरणों (ओवरहेड और एलसीडी प्रोजेक्टर, टेलीविजन, इलेक्ट्रॉनिक व्हाइटबोर्ड, निर्देशित ''वेब टूर्स'', जहां छात्र एक साथ कंप्यूटर स्क्रीन पर एक ही संसाधनों को देखते हैं) के रूप में आईसीटी का उपयोग एक मिश्रित प्रभाव के रूप में देखा जाता है।

आईसीटी का ज्ञान और शिक्षक की तकनीकी क्षमताएं :-

शिक्षकों को आईसीटी के उपयोग से लाभ के लिए तैयार करना केवल तकनीकी कौशल से अधिक है।

शिक्षण में आईसीटी के सफल एकीकरण के लिए शिक्षक की आईसीटी कौशल में तकनीकी महारथ करना एक पर्याप्त पूर्व शर्त नहीं है।

शिक्षकों को सबसे उपयुक्त संसाधनों का मूल्यांकन और चयन करने के लिए आईसीटी के गहन और सतत उपयोग की आवश्यकता होती है। हालांकि, उचित शैक्षणिक पद्धतियों का विकास उपयोग आईसीटी की तकनीकी महारथ से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।

कुछ ही शिक्षकों को अपने अध्यापन में आईसीटी के उपयोग में व्यापक 'विशेषज्ञता' होती है।

ओईसीडी देशों में सबसे उन्नत स्कूल में भी, बहुत कम शिक्षकों को आम तौर पर आईसीटी उपकरणों और संसाधनों की विस्तृत श्रृंखला का व्यापक ज्ञान होता है।

ओईसीडी देशों में 'कंप्यूटर साक्षरता' को बढ़ावा देने के लिए आईसीटी का उपयोग शिक्षण और अधिगम उपकरण के रूप में आईसीटी के उपयोग की तुलना में कम महत्वपूर्ण रूप में देखा जाता है। अधिक परिष्कृत होते हैं।

ओईसीडी देशों में, छात्र के ज्ञान और आईसीटी के उपयोग तथा शिक्षकों के ज्ञान और आईसीटी के उपयोग की क्षमताओं के बीच अत्यधिक विषमता प्रतीत होती है। यह बताता है कि शिक्षक की अनुभवहीनता और कौशल की कमी अक्सर छात्रों द्वारा शिक्षा के लिए आईसीटी के उपयोग की प्रभावकारिता में बाधा के महत्वपूर्ण कारक हो सकते है।

शिक्षक द्वारा आईसीटी का उपयोग :-

शिक्षक सामान्य रूप से आईसीटी का सबसे अधिक उपयोग प्रशासनिक कार्यों के लिए करते हैं।

शिक्षक अक्सर आईसीटी का उपयोग 'नियमित कार्य' (रिकॉर्ड रखने, लेसन प्लान विकास, सूचना प्रस्तुति, इंटरनेट पर बुनियादी जानकारी की खोज) के लिए करते हैं।

अधिक जानकार शिक्षक ''कंप्यूटर सहायता अनुदेश" पर कम भरोसा करते हैं।

आईसीटी के उपयोग के अधिक जानकार शिक्षक कंप्यूटर सहायता अनुदेश का उपयोग अन्य शिक्षकों की तुलना में कम करते हैं, लेकिन कुल मिलाकर आईसीटी का अधिक उपयोग करते हैं।

शिक्षक आईसीटी का उपयोग कैसे करते हैं, यह उनकी सामान्य शिक्षण शैली पर निर्भरकरता है।

आईसीटी के उपयोग के प्रकार शिक्षक के शैक्षणिक दर्शन के साथ जुड़ा होता हैं। जो शिक्षक आईसीटी का सर्वाधिक उपयोग करते हैं और सर्वाधिक प्रभावकारी तरीके से उनके पारंपरिक 'संचरण–विधि' द्वारा शिक्षण के उपयोग की संभावना कम होती है। जो शिक्षक अधिक प्रकार के सॉफ्टवेयर का उपयोग करते हैं, उनकी प्रवृत्ति ''रचनात्मक'' शिक्षण की अधिक होती है।

शिक्षण और सीखने में सहायता के लिए आईसीटी की शुरूआत और उपयोग शिक्षकों के लिए अधिक समय खर्च करने वाला होता है, दोनों स्थितियों में जबकि वे शिक्षण प्रथाओं और रणनीतियों में परिवर्तन कर रहे हों और जबकि ऐसी रणनीतियों का नियमित रूप से उपयोग किया जाता है।

शिक्षक का आत्मविश्वास और प्रेरणा :–

आईसीटी संसाधनों के एक विस्तृत रेंज का प्रयोग करने में कुछ ही शिक्षकों को आत्मविश्वास बना रहता है, और जिस तरह से पाठ संचालित किया जाता है, सीमित विश्वास उसे प्रभावित करता है।

भय कई शिक्षकों को आईसीटी का उपयोग करने से रोकता है।

ओईसीडी देशों में, कई शिक्षकों को आईसीटी का उपयोग करने के प्रति अभी भी भय है, इसलिए वे अपने शिक्षण में उनके उपयोग के लिए अनिच्छुक रहते हैं।

कम से कम शुरुआत में, आईसीटी से संपर्क शिक्षक के व्यावसायिक विकास को बढ़ावा देने के लिए सक्षम उपकरण के रूप में महत्वपूर्ण प्रेरणास्रोत हो सकता है।

व्यावसायिक विकास जारी रखने में शिक्षक की प्रभावी भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहन प्रणालियां विकसित की जानी चाहिए।

शिक्षकों द्वारा आईसीटी के उपयोग के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक है सुगमताशिक्षक के आईसीटी से संबंधित कौशल के विकास को जारी रखने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक है उनके द्वारा नियमित रूप से इनका उपयोग कर पाना तथा प्रासंगिक आईसीटी उपकरण के लिए सुगमता लाना।

कार्यस्थल पर प्रौद्योगिकी :–

प्रौद्योगिकी के प्रयोग से जुड़ी नीतियों, रणनीतियों और व्यावहारिक कदमों के प्रदर्शन के लिए दुनिया भर से ली गईं अन्वेषण, कामयाबी और विफलता की दास्तानें। इनके तहत निम्न विषय शामिल होंगे :–

कई माध्यमों से अध्ययन :–

1. शैक्षिक टीवी।
2. शैक्षिक रेडियो।
3. वेब आधारित निर्देश।
4. खोज के लिए पुस्तकालय।
5. विज्ञान और प्रौद्योगिकी में व्यावहारिक गतिविधियां।
6. मीडिया का इस्तेमाल।
7. कम अवस्था में विकास, कम जनसंख्या घनत्व, प्रौढ़ साक्षरता, महिला शिक्षा और कार्यबल में वृद्धि जैसे क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी का लक्षित इस्तेमाल।

8. शिक्षकों को तैयार करने और कैरियर से जुड़े प्रशिक्षण के लिए प्रौद्योगिकी।
9. नीति–निर्माण, डिजाइन और डेटा प्रबंधन के लिए प्रौद्योगिकी।
10. स्कूल प्रबंधन के लिए प्रौद्योगिकी।

आज की प्रौद्योगिकी :–

1. प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों में अध्ययन के लिए मौजूद चीजों पर एक नजर।
2. निर्देशात्मक सामग्री।
3. ऑडियो, विजुअल और डिजिटल उत्पाद।
4. सॉफ्टवेयर और कंटेंटवेयर।
5. संपर्क के माध्यम।
6. मीडिया।
7. शैक्षणिक वेबसाइट।

विषय ज्ञान :–

शिक्षक का विषय ज्ञान आईसीटी के उपयोग को प्रभावित करता है।

जिस तरह शिक्षकों द्वारा पाठ में आईसीटी का उपयोग किया जाता है, वह इस बात पर निर्भर करता है कि अपने विषयों पर शिक्षकों की कितनी पकड़ है और वे किस तरह आईसीटी संसाधनों को प्रासंगिक बनाकर उनका उपयोग कर सकते हैं।

शिक्षक की विषयवस्तु पर महारथ और छात्र की ग्रहण क्षमता की समझ आईसीटी के उपयोग को अधिक प्रभावी बनाती है।

प्रमाण यह बताता है कि जब शिक्षक–विषय ज्ञान और जिस तरह से विद्यार्थी विषय को समझते हैं। इन दोनों बातों के अपने ज्ञान का उपयोग करते हैं, तब के छात्र की उपलब्धि पर आईसीटी के प्रयोग का अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

आईसीटी के माध्यम से नई अतिरिक्त जानकारी से संपर्क पर्याप्त नहीं है।

प्राप्ति पर प्रभाव सबसे अधिक तब होता है जब विद्यार्थियों को सोचने के लिए चुनौती दी जाए और उनकी अपनी समझ पर सवाल किए जाएं, बजाय नई और अतिरिक्त जानकारी के सम्पर्क में लाने के।

आईसीटी विषय के मामले में स्व–शिक्षा के लिए शिक्षक की सहायता कर सकते हैं।

अद्यतन और सीखने के अतिरिक्त संसाधनों का उपयोग प्रदान कर, आईसीटी शिक्षक को उसके विषय क्षेत्र में स्व–शिक्षा के लिए सक्षम कर सकते हैं।

शिक्षक का व्यावसायिक विकास :–

शिक्षक का सतत प्रशिक्षण और सहायता शिक्षा के क्षेत्र में आईसीटी के सफल उपयोग के लिए महत्वपूर्ण है।

शिक्षक का प्रशिक्षण और व्यावसायिक विकास शिक्षा के क्षेत्र में आईसीटी के सफल प्रयोग के लिए मुख्य चालक के रूप में देखा जाता है।

आईसीटी के उपयोग में शिक्षकों को सहज महसूस करवाने के लिए परंपरागत, एक बार की शिक्षक प्रशिक्षण कार्यशालाएं अधिक प्रभावी नहीं पाई गई हैं, उनके द्वारा शिक्षण में समेकित करने में तो बिल्कुल भी नहीं।

असतत, 'एक–बार के' प्रशिक्षण कार्यक्रम सतत व्यावसायिक विकास गतिविधियों की तुलना में कम प्रभावी देखे गए हैं।

सफल शिक्षक व्यावसायिक विकास के मॉडल तीन चरणों में विभाजित किए जा सकते हैं :–

1) सेवा–पूर्व, शिक्षा शास्त्र, विषय की महारथ, प्रबंधन कौशल और विभिन्न शिक्षण उपकरणों (आईसीटी सहित) के उपयोग पर ध्यान केंद्रित करना।

2) सेवा–के दौरान, संरचित, आमने–सामने तथा दूरस्थ शिक्षा के अवसर, सेवापूर्व प्रशिक्षण को विस्तृत करने और सीधे शिक्षक की जरूरतों के लिए प्रासंगिक के निर्माण में।

3) शिक्षकों के लिए आईसीटी द्वारा सक्षम सतत औपचारिक और अनौपचारिक शैक्षणिक और तकनीकी सहायता, दैनिक जरूरतों और चुनौतियों पर लक्षित करना।

मूल्यांकन विधियों में प्रशिक्षण महत्वपूर्ण है :–

व्यावसायिक विकास में शैक्षणिक पद्धतियों के मूल्यांकन और संशोधन के तरीके तथा शिक्षक को मूल्यांकन के विभिन्न तरीकों के सम्पर्क में लाना शामिल होने चाहिये।

शिक्षक की व्यावसायिक विकास गतिविधियों के निर्माण और भागीदारी में मूल्यांकन से पहले आवश्यकता का मूल्यांकन होना चाहिए, इन गतिविधियों की नियमित निगरानी और आकलन होना चाहिये।

सक्षमता प्रदान करने वाले कारक :–

शिक्षक द्वारा आईसीटी के उपयोग का अनुकूलन लागू करने के लिए कई किस्म केपरिवर्तन किये जाने चाहिए।

शिक्षण के तरीकों में परिवर्तन, पाठ्यक्रम और मूल्यांकन में फेरबदल, और स्कूलों को और अधिक स्वायत्तता प्रदान करने से आईसीटी के उपयोग के अनुकूलन में मदद मिलती है।

यदि उनके द्वारा आईसीटी का प्रभावी ढंग से इस्तेमाल किया जाना हो तो शिक्षकों को कार्यशील कंप्यूटर की पर्याप्त उपलब्धता होनी चाहिये, और उन्हे पर्याप्त तकनीकी सहायता प्रदान की जानी चाहिये।

आईसीटी के परिचय में समय लगता है।

नए कौशल विकसित करने, अपनी मौजूदा शिक्षण पद्धतियों और पाठ्यक्रम में अपनी एकरूपता का पता लगाने और आवश्यक अतिरिक्त पाठ की योजना बनाने के लिये शिक्षकों को पर्याप्त समय दिया जाना चाहिये, यदि आईसीटी का प्रभावी ढंग से इस्तेमाल करना हो।

स्कूल प्रशासन और समुदाय की सहायता महत्वपूर्ण हो सकती है।

शिक्षक द्वारा आईसीटी के उपयोग के लिए स्कूल प्रशासकों और कुछ मामलों में आसपास के समुदाय का समर्थन महत्वपूर्ण माना जाता है।

अभ्यास तथा साथियों के नेटवर्क के औपचारिक और अनौपचारिक समुदाय के अस्तित्व शिक्षा की पहल और गतिविधियों में आईसीटी की सहायता के लिये महत्वपूर्ण उपकरण हो सकते हैं।

चूंकि शिक्षा की सहायता के रूप में आईसीटी की शुरूआत अक्सर एक बड़े परिवर्तन या सुधार प्रक्रिया का हिस्सा होती है, यह महत्वपूर्ण है कि आईसीटी के सफल प्रयोग की जानकारी को बढ़ावा दिया जाये तथा इसका फैलाव किया जाये।

References :-

1. Ball, DL (1990) The mathematical understandings that prospective teachers bring to teacher education, The Elementary School Journal, 90, 4, 449-466.
2. Brown, JS, Collins, A and Duguid, P (1989) Situated cognition and the culture of learning, Educational Researcher, 18, 32-42.
3. Cuban, L (1986) Teachers and machines: The classroom uses of technology since 1920, Teachers College Press, New York. Cyprus Ministry of Education and Culture (2000) The use of computers in primary education, Information Technology Team, Nicosia, Cyprus.
4. Duffy, TM and Cunningham, DJ (1996) Constructivism: implications for the design and delivery of instruction. In Jonassen, DH (ed.) Handbook of Research for Educational Communications and Technology, Simon & Shuster Macmillan, New York, pp. 170-198.
5. Lortie, DC (1975) Schoolteacher: A sociological study, University of Chicago Press, Chicago.
6. Means, B (ed.) (1994) Technology and education reform, Jossey-Bass, San Francisco, CA.
7. Republic of Cyprus (1998) Annual report on education 1998 Republic of Cyprus Nicosia Cyprus.

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 30-35

डॉ. जयभगवान शर्मा के काव्य में जीवन और जीवन-मूल्य

रेनू शर्मा, शोधार्थी
डॉ. दिग्विजय कुमार शर्मा, डीलिट्. शोध-निर्देशक
एसोसिएट प्रोफेसर एवं हिंदी विभागाध्यक्ष, ओ.पी.जे.एस. विश्वविद्यालय, चुरू (राज.)

मानव हृदय में कुछ आकांक्षाएं होती है, जिन्हें वह पूरी करने की इच्छा रखता है। आकांक्षाएं सैद्धान्तिक होती हैं और मूल्य व्यावहारिक। आकाक्षाएं जब परिवर्तित होकर उस रूप में बदल जाती है तब वे सर्वमान्य हो जाती हैं, उस वक्त वे मूल्य का रूप धारण कर लेती हैं। मूल्य का अर्थ होता है किसी वस्तु या स्थिति का वह गुण जो समालोचना में वरीयता प्रकट करता है। वह एक आदर्श या कामना अथवा इच्छा है जिसे पूरा करने के लिये व्यक्ति जीवित रहता है तथा जिन्दगी भर प्रयत्नशील रहता है। मिल्टन जैसे महान साहित्यकार का मानना है कि जीवन मूल्य ओस की बून्दों के सदृश नहीं है जो मौसम के अनुसार दिखाई दें। इनकी जड़े प्रत्येक प्राणी में बहुत गहरी होती है तथा इनका हकीकत से घनिष्ठ सम्बंध होता है।

समाज का हर एक व्यक्ति स्वच्छंद विचारों के संग परिवर्तन का इच्छुक दिखाई देता है जो कोई काम वह अपने जीवन में करना चाहता है उसमें अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति एव मुक्त सोच-समझ से ही चलने की आकांक्षा रखता है। मगर यह कहाँ तक सार्थक हो पाता यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। यही कारण है कि उन पर व्यक्ति समस्त पौराणिक धारणाओं एवं विचारों का विरोध करता नजर आता है उनमें वह परिवर्तन चाहता है। इस तरह बदलते जीवन मूल्यों की वजह से आधुनिक युग में मानव की विचारधारा स्वतंत्रता का उद्घोष करती नजर आती है।

वैज्ञानिक युग में शिक्षा के विस्तार और मनुष्य के परिवर्तित होते मानव-मूल्यों की वजह से मनुष्य मनुष्य की सोच में भी विशेष परिवर्तन आते रहते हैं।यह एक ऐसी सच्चाई है जो झूठलाई नहीं जा सकती। मनुष्य अपने परिवेश के प्रति विशेष रूप से जागरूक रहता है। प्रगतिशीलता मानव स्वभाव में सदैव से ही विद्यमान रही है। वह दूसरों के हितों में कार्य करना अपना कर्त्तव्य समझता है। वह अपने देश के प्रति वफादार होता है। उसके हृदय में देशभक्ति और परिवेश के प्रति जागरूकता हर वक्त होती है। वह कोई भी गलत कार्य करने में संकोच करता है क्योंकि उसकी आत्मा उसे ऐसा करने से रोकती है। यही सोच तो मानवीय मूल्यों की उद्गम स्थल है।

मूल्य शब्द लेटिन भाषा के 'वेलर' शब्द से लिया गया है जिसका तात्पर्य है– किमत। धर्म ग्रन्थों में मूल्य के लिये शील शब्द का प्रयोग किया जाता है। मानव मूल्य एक आधार संहिता है जिससे वह अपनी जीवन शैली व व्यक्तित्व का निर्माण करता है। किसी कार्य को करने से पूर्व मनुष्य के दिल में जब यह सोच उत्पन्न होती

है कि वह उसे करे या ना करे, इस प्रकार के निर्णयात्मक ढंग से उत्पन्न विचार ही मूल्य कहलाता है।

'मूल्य किसी वस्तु या स्थिति का वह गुण है जो समालोचना व वरीयता प्रकट करता है। यह एक आदर्श या इच्छा है जिसे पूरा करने के लिए व्यक्ति जीता हैतथा आजीवन प्रयास करता है।'[1]

मिल्टन के अनुसार, 'जीवन मूल्य ओस की बूंदों के सदृश नहीं है जो मौसम के अनुसार दिखाई दे। इनकी जड़ प्रत्येक प्राणी में बहुत गहरी होती हैं तथा इनका वास्तविकता वास्तवता से घनिष्ठ सम्बन्ध है।'[2]

विभिन्न विद्वानों एवं संस्थाओं ने मूल्यों को परिभाषित किया है। उनके अपने अपने विचार एवं अनुभूतियाँ रही है जिनका सृजन किया जा रहा है। इण्टरनेशनल डिस्कवरी ऑफ एजुकेशन के अनुसार– 'मूल्य वे विश्वास होते हैं जो क्या उचित या अनुचित है, के बारे में बताते हैं।'[3] सुप्रसिद्ध समाज शास्त्री डॉ. राधाकमल मुखर्जी के शब्दों में–'मूल्य समाज द्वारा स्वीकृत इच्छाएँ और लक्ष्य होते हैं जिन्हें कंडीशनिंग, सीखने या सामाजीकरण की प्रक्रिया से आत्मसात किया जाता है और जो व्यक्ति की अपनी पसीदें और महत्त्वकांक्षाएँ बन जाते हैं।'[4]

देखा जाये तो जीवन मूल्य मनुष्य को एक प्रकार से नहीं बल्कि कई प्रकार से कार्यान्वित करते हैं। इस प्रकार जीवन मूल्यों का मूल्यांकन करेंगे। जीवन मूल्य की अभिव्यक्ति उनके काव्य में सशक्त है– सामाजिक मूल्य, धार्मिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य, नैतिक मूल्य तथा राजनैतिक मूल्यों की स्थापना उन्होंने अपने पद्य साहित्य में की है।

आधुनिक साहित्य में जीवन मूल्य का अर्थ वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक स्तर का संपूर्ण मानव व्यवहार के मानदंडों के रूप में किया जाता है। दूसरा, श्मूल्यश शब्द का प्रयोग आवश्यकता, प्रेरणा, आदर्श, अनुशासन, प्रतिमान आदि अनेक अर्थों में प्रयोग होता है। उत्कर्ष जीवन मूल्यों की कसौटी है, उन व्यवहारों को ही जीवन मूल्य माना जाता है। हर एक धर्म में कुछ नैतिक आदर्श होते हैं, उनके आधार पर ही समाज में अनेक मूल्यों का प्रचलन होता है। अतः मूल्यों द्वारा सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है। साहित्यकार समाज का मार्गदर्शक रूप में होता है।

इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था को व्यवहारिक रूप में नियंत्रित एवं सुनियोजित करने हेतु अनेक संस्थाएँ काम करती है। इनमें प्रमुख हैं– व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र आदि। सामाजिक समस्याओं ने समाज के मूल्यों के विघटन में भी बहुत योगदान दिया है। अतः सामाजिक समस्याओं का अधिक सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करना विषयानुकूल ही प्रतीत होता है। डॉ० जयभगवान शर्मा के काव्य में सामाजिक समस्याओं को प्रमुखता से उठाया है। समस्याओं का कारण ही जीवन–मूल्यों का विघटन है यथा–भ्रष्ट शासन व्यवस्था का ही उदाहरण लिया जाए तो शासन व्यवस्था जनता को अधिकाधिक सुविधाएं यथा समय और उचित ढंग से पहुँचाने से पूर्व ही सक्षम वर्गों द्वारा भ्रष्ट तरीके से अपनाकर उस वर्ग को वंचित रखा जाता है। फिर बढ़ती जनसंख्या भी महत्त्वपूर्ण कारण है जिस कारण सामाजिक माग एवं पूर्ति के संतुलन को नुकसान पहुँचता है, बेरोजगारी के आंकड़ों में भी अभिवृद्धि होती है। अशिक्षा भी मानव जीवन के मूल्यों के विघटन का कारण है और शिक्षितों की दुर्दशा देखकर लोगों ने उच्च शिक्षा पाने से ही तौबा कर ली है। रूढ़िवादी नियम प्रगतिशील विचारधारा को अचानक जीवन में नहीं उतार पाते।

डॉ0 जयभगवान शर्मा के काव्य साहित्य का मूलाधार है– सामाजिकता। उनकी मानवीयता और मानवीयता का प्रमुख स्त्रोत है जन संबंधता जो कवि अपने को जन से संबद्ध नहीं करता, वह प्राय मानवीयता

अथवा जीवन मूल्यों की स्थापना नहीं कर सकता। डॉ० शर्मा के अधिकांश पद्य साहित्य में जीवन मूल्यों को प्रस्तुत किया है।

जीवन में आहलाद, रूदन और क्रंदन का स्पंदन सब नैसर्गिक है। कभी मनुष्य को सफल होने की खुशी में असफलता का डर, कभी प्रियजन से मिलने की खुशी में बिछुड़ने का डर, कभी इहलौकिक पदार्थों से तो कभी पारलौकिक शक्तियों से डर कभी जीवन की जिजीविषा तो कभी मरने का डर पल–पल अथवा प्रतिपल मनुष्य को डराता है। इस अनबूझ पहेली को सुलझाते हुए कवि चेताता है। कवि कहता है मनुष्य का देहयष्टि पंच महाभूतों– जल, वायु, तेज, पृथ्वी और आकाश से संसक्त है। गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द। वस्तुतः यह देह निर्मित है, जीवात्मा के लिए कवि कहता है– /इसके अभाव में/फिर/अंतर्धान/हो जाते हैं/एक–एक करके/ पाँच महाभूत/और/उनकी प्रकृति/पंच तन्मात्र/मपोत सदृश।'[5]

हाइकु संग्रह 'क्षितिज के पार' जहाँ हमें वैचारिक उच्चतम क्षितिज की आभा से उद्भासित करता है वही निम्नतम धरातल की छटपटाती दैनिक जिंदगी की कुटिल तथा जटिल समस्याओं की यथार्थ अनुभूति के साथ समाधान प्रस्तुत कर जीवन मूल्यों की स्थापना भी करता है। संक्षिप्तः कहा जा सकता है कि यह वैविध्यपूर्ण जीवन को सर्वांगीणता के साथ प्रस्तुत करते हुए जीवनोतर जीवन का संदेश देता है।

'वक्त के पंख' हाइकु संग्रह भावानुभति के चरम क्षणों के हाइकु हैं। ये क्षण कवि जयभगवान शर्मा की चेतना में जीवन दर्शन से अनुप्राणित होकर झकृत होते रहते हैं। प्रकृत संग्रह में युगीन सत्य और समकालीन भाव बोध को सम्यक अभिव्यक्ति की है। आज समाज का सामाजिक ढांचा चरमरा रहा है। धर्म हो या राजनीति, शिक्षा हो या फिश्र समाज सभी संक्रमण का शिकार है। संवेदनशीलता और समरसता जैसे जीवन मूल्य नष्ट हो चुके हैं। मनुष्य पर स्वार्थ और अवसरवादिता सवार है। ऐसे में कवि जैसा सवेदनशील प्राणी कैसे तटस्थ रह सकता है। अतः डॉ० शर्मा ने भी आँखो देखे अपने अनुभवों को अपने हाइकुओं के माध्यम से प्रामाणिक अभिव्यक्ति दी हैं– यथा– 'वक्त के संग/किया जो समझौता/बदले रंग।'[6]

'स्लोगन वल्लरी' ज्वलन्त बिंदुओं के परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण प्रेमी एवं शिक्षाविद –डॉ0 जयभगवान शर्मा ने 'स्लोगन वल्लरी कृति की रचना कर एक अनूठी पहल की है। इसमें 'नारा' विधा के माध्यम से कवि ने अपने मनोभावों को पल्लवित किया है। आज मनुष्य जो शैशवकाल, यौवनकाल तथा वार्धक्यकाल के विषम संक्रमणकाल से गुजर रहे हैं, जो अपन कर्त्तव्यों से नितांत पराणमुख हो रहे हैं और अपने दायित्वों का निष्ठापूर्वक निर्वाह नहीं कर पा रहे हैं। इन सब समस्याओं के निदान व निवारण के लिए मनुष्य का अनुशासनशील होना आवश्यक है। डॉ० शर्मा ने नारों के माध्यम से उनके निवारण के उपायों का विश्लेषण करने का प्रबल प्रयास किया है। उसमें चाहे स्वच्छता, वृक्षारोपण, दहेज, जल संरक्षण, साक्षरता रक्तदान, भ्रूण हत्या या नकल आदि कोई भी विषय हो। वस्तुत डॉ० शर्मा ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, विसंगतियों एवं विकृतियों पर करारे प्रहार किए हैं। मानव जीवन को संस्कारयुक्त बनने का सफल संदेश दिया है– 'स्वच्छता जीवन का मूल/इसे न जाना कभी भूल।... पेड़ों पर न मार कुल्हाड़ी/बिगडे मानव तेरी अगाड़ी।'[7]

'झरता पानी' हाइकु संग्रह हर दृष्टिकोण से असरदार है और जीवन मूल्यों मानवीय संवेदनाओं जीवन–दर्शन व सामाजिक सरोकारों आदि से संबंधित विषयों को जालोकित करता है। यथा– 'थी पनिहारी/जु, डोल, मसक,/आज बिसारी।'[8]

जीवन–मूल्यों पर आधृत भारतीय संस्कृति और सभ्यता प्राचीनतम है। अनुशासन, आत्मविश्वास, अहिंसा, उत्साह, कर्त्तव्यपालन, निःस्वार्थ भावना, परोपकार, बड़ों का आदर करना, सत्य बोलना, शिष्टाचार, संयम, सहयोग की भावना स्वाभिमान आदि – मूल्य, भारतीय संस्कृति के आधार रहे हैं, जिस कारण भारत को जगदगुरु जीवन– कहलाने का श्रेय प्राप्त है। प्रतिदान काव्य नाटक मानवीय अधिकारों से अनुप्राणित नारी सशक्तिकरण के इस दौर में प्राचीन आदर्श नारियों का उल्लेख करता है जो वर्तमान में अपेक्षित है। यह बाल नाटक शिक्षाप्रद होने के साथ–साथ बालोपयोगी है, जो बालकों में सुसंस्कारों का संचार है।

समाज में नारी का महत्वपूर्ण स्थान होता है। समाज में पतिव्रता देवियों में अनुसया का स्थान सबसे ऊँचा है। दूसरी पाचाल नरेश द्रुपद की पुत्री द्रोपदी है और तीसरी आदर्श नारी सुलक्षणा थी तथा आदर्श नारी हुई हैं जिनकी गणना श्रेष्ठ पंच कन्याओं में होती है। सावित्री देव! को संबोधन करती है–'देव!/रखते प्रजा को आप/नियम से संयम में/विभिन्न लोकों में।'[9]

'गवाक्ष' काव्य संग्रह जीवन उपक्रम के मर्म से उपजा मनोविश्लेषणात्मक भावों का दर्पण है। कविताएं मानव के शैशव, यौवन गृहस्थ और वार्धक्य जीवन क्रम को सुंदर शब्दों में सजी हैं। जैसे पल भर में जीवन के समस्त पडाव पार हो गए हो। 'जीवन उपक्रम' कविता में विकल जीवन का पीडाप्रद राग अलापता कवि लिखता है कि मानव जीवन का हर पड़ाव सीमा रेखा है, यथा–'गृहस्थ धनोपार्जन में बिताया/लोभ मोह का आश्रय अपनाया/कर्तव्यनिष्ठ होकर भ्रमाया/कर्मण्यता को पुनः बिसराया/दूनिया के सम्मुख सदा गिड़गिड़ाते देखा है/ मानव जीवन का हर पड़ाव सीमा रेखा है।'[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ० जयभगवान शर्मा ने अपने काव्य साहित्य में एक समन्वित धर्म और संस्कृति को अभिव्यक्ति देने का सफल प्रयास किया है, जो उनके नवीन युगबोध की देन है। उनके काव्य–साहित्य में धार्मिक जीवन–मूल्य कई रूपों में अभिव्यक्त हुए हैं। अतः डॉ० जयभगवान शर्मा ने भारतीय जन जीवन के सभी पक्षों की युगीन जन–जीवन की कसौटी पर कसकर बौद्धिक रूप से नवीनता प्रदान की है।

डॉ० शर्मा की काव्य कृति स्पंदन, प्रतिदान और गवाक्ष में जीवन के अनुभव स्पंदित होते हुए दिखाई देते हैं, साथ ही हाइकु संग्रह क्षितिज के पार, पथ के राही, वक्त के पंख आदि भ्रमित मानव के लिए आत्मा और परमात्मा के तादात्म्यपरक संबंध का संदेश देते हैं।

आज मनुष्य भौतिकता के प्रपंच–ताल में निमज्जित होता है। मनुष्य मानवता से विहीन हो चला है। 'उदबोधन' शीर्षक कविता का मूल स्वर भी दार्शनिक और सांस्कृतिक है। अपने पूर्वजों द्वारा प्रतिष्ठित नियमों, संस्कारों, जीवन मूल्यों को तिलांजलि देकर मनुष अज्ञानतावश सांसारिक, मकड़जाल मे फँस चुका है। इस अविवेकी मानव को विवेक की आँखे खोलकर पुन अपनी सहज पावन प्रकृति की ओर लौटने का उदात्त संदेश देते हुए डॉ० शर्मा लिखते हैं–'ऐ। भ्रम जाल में फँसे/अपने विवेक से/विच्छिन/मानव!'[11]

कवि डॉ० शर्मा कविता अतीत–दर्शन में अपने समय को याद कर स्मृतियों में खोया हुआ है। एक समय था जब सब आपस में मिल जुल कर रहते थे. साझे चूल्हे न कोई आपसी वैर–भाव, सुख–दुःख में एक सदा प्रीत की रीत निभाते थे। कवि कहता है। आज अपने अतीत पर विचार करने की आवश्यकता है। अतीत सदैव स्वर्णिम होता है–'पाप कर्म से सदैव डरते थे।/दया धर्म पर मर मिटते थे, सदा प्रकृति की पूजा करते थे/जल–थल का आदर करते थे/वे उमंग में भर गाते थे/जब आते थे तीज–त्यौहार/आओ अतीत पर करे विचार।'[12]

कवि मानव मन के अंतस भावों में झांक कभी भव–सागर के इस पार से उस पार का दृश्य अथवा चित्र प्रस्तुत है, तो भी वह मृगशावक–सा, स्वच्छंद धरा पर कभी आसमान के नक्षत्रों के बीच विचरता हुआ धर्म की स्थापना करता है। कविता 'जीवन–मर्म में कवि धर्मराज को संबोधन कर लिखता है–'हाँ..हाँ धर्मराज में झाँक रहा हूँ/सबकी गतिविधियों को भाप रहा हूँ।'[13]

भारतीय संस्कृति में मानव जीवन में दया का भाव उसका परिधान है किंतु मनुष्य जात धर्म के नाम पर उत्पाद मचाए हुए हैं, कवि लिखता है–'मनुष्य जात/धर्म के नाम पर/करे उत्पाद...दया का दान/मानव जीवन का/है परिधान।'[14]

डॉ० जयभगवान शर्मा के काव्य साहित्य में इस भारतीय संस्कृति का स्वरूप व्यापक एक विशाल है। उन्होंने भारतीय जन–मानस के जीवन पक्ष धार्मिक चेतना को समुपस्थित रूप में उकेरा है–'जीवन–स्थ/आप स्वयं सारथी/सुगम पथी।'...'जीवन है माही/सूझे वक्त के आगे/कोई न राही।'[15]

डॉ० शर्मा धार्मिक प्रवृति के व्यक्ति है तथा भारतीय अध्यात्म और जीवन दर्शन में इनकी गहरी आस्था है। इनके अधिकांश हाइकुओं में अध्यात्मक की अभिव्यक्ति और धार्मिक प्रतीकों के प्रयोग को देखा जा सकता है। 'अदभूत भव/किस्म–किस्म के जीवन/बदले शव/अर्थ से धर्म/धर्म से अर्थ, फिर/काम का वर्ग।'[16]

डॉ0 जयभगवान शर्मा को इस बात का बड़ा दुःख है कि धर्म आज अपने मूल्यों से विचलित हो गया है। वह धार्मिक आडम्बरों को डटकर विशेष विरोध करते हैं। चूंकि मनुष्य आज आध्यात्मिक आलोक से हटकर, विज्ञान की चकाचौंध में खो चुका है–'हैं पुरोहित/कोई यजमान तो/कोई रोहित।'[17]

निष्कर्षः डॉ० जयभगवान शर्मा ने जीवन मूल्यों पर आधृत भारतीय संस्कृति और सभ्यता को श्रेष्ठ माना है। अनुशासन, सदाचार, अहिंसा, उत्साह, कर्तव्यपरायणता, निःस्वार्थ भावना, परोपकार, बड़ों का आदर करना, सत्य बोलना, शिष्टाचार, संयम और सहयोग सरीखे गुण, संस्कार आदि भारतीय संस्कृति के आधार रहे है। डॉ० शर्मा ने जीवन के हर मोड को सहर्ष स्वीकार किया है, उसे अपना माना है। वह मजदूर श्रमिक, खेतीहर आदि जन सामान्य में ही राष्ट्र के उत्थान को सार्थक मानते हैं। वस्तुतरू डॉ० शर्मा समतामूलक, अर्थ–भेदहीन समाज के स्वप्न दृष्टा है। वह समरसता और समानता के समाज की व्यवस्था देखना चाहते हैं यह तभी संभव है जब हर व्यक्ति जीवन–मूल्यों का आचरण करते हुए आगे बढ़ेगा। यह एक दुष्कर कार्य है लेकिन कवि ने जन–जागृति का नवजागरण जागृत कर अग्रसर होने को उत्साहित किया है।

संदर्भ सूची :-

1. डॉ. रीना गुप्ता, नैतिकता और वैश्विक शांति के लिए मूल्य शिक्षा, पृ. 37
2. डॉ. जगदीश नारायण पाठक, संगीत निबंधमाला, पृ0 1
3. www.pravakta.com, इण्टरनेशनल डिस्कवरी ऑफ एजुकेशन के अनुसार।
4. डॉ. राधाकमल मुखर्जी, राष्ट्रीय ज्ञान आयोग।
5. डॉ0 जयभगवान शर्मा, स्पंदन, पृ0 40
6. डॉ0 जयभगवान शर्मा, वक्त के पंख, पृ0 79
7. डॉ0 जयभगवान शर्मा, स्लोगन वल्लरी, पृ0 16, 18

8. डॉ0 जयभगवान शर्मा, झरता पानी, पृ0 25
9. डॉ0 जयभगवान शर्मा, प्रतिदान, पृ0 75
10. डॉ0 जयभगवान शर्मा, गवाक्ष, पृ0 25
11. डॉ0 जयभगवान शर्मा, स्पंदन, पृ0 69
12. डॉ0 जयभगवान शर्मा, स्पंदन, पृ0 79
13. डॉ0 जयभगवान शर्मा, गवाक्ष, पृ0 28
14. डॉ0 जयभगवान शर्मा, क्षितिज के पार, पृ0 36, 37
15. डॉ0 जयभगवान शर्मा, वक्त के पंख, पृ0 69, 68
16. डॉ0 जयभगवान शर्मा, वक्त के पंख, पृ0 17, 36
17. डॉ0 जयभगवान शर्मा, झरता पानी, पृ0 25

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 36-40

'बादलों के घेरे' और 'सिक्का बदल गया' कहानी का प्रोक्ति विश्लेषण

मधु कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामान्य मनुष्य अपने विचारों का आदान–प्रदान सामान्य भाषा में करता है। रचनाकार एक सामान्य विचार वाले व्यक्ति से ज्यादा गहन चिन्तन–मनन वाला प्राणी होता है। वह अपनी रचना में सामान्य भाषा का प्रयोग न करके विशिष्ट भाषा का प्रयोग करता है। यह विशिष्ट भाषा ही आगे चलकर रचनाकार की शैली बनती है। "भाषिक अभिव्यक्ति के विशिष्ट ढंग को शैली कहते हैं।"[1] शैली विज्ञान दो शब्दों के मेल से बना है शैली+विज्ञान अर्थात् शैली के वैज्ञानिक अध्ययन को शैली विज्ञान कहते हैं। "भाषाविदों के अनुसार भाषा की न्यूनतम इकाई ध्वनि है। जिसका लिखित रूप वर्ण है। वर्ण से शब्द, शब्द से पद, पद से वाक्य बनते हैं।"[2] भाषाविज्ञान में विश्लेषण का आधार वाक्य तक ही सीमित कर दिया है। शैली वैज्ञानिक विश्लेषण में शैली वैज्ञानिकों ने इस विश्लेषण के आधार को वाक्य से आगे प्रोक्ति स्तर तक पहुँचाया है। "साहित्यिक कृति में सुसम्बद्ध वाक्यों के समूहों की भी एक इकाई होती है, जिसे प्रोक्ति (डिस्कोर्स) कहा जाता है। प्रोक्ति पूरी कृति भी है, उसका कोई सुसम्बद्ध बहुवाक्यीय अंश भी या वह कभी–कभी एक वाक्य भी जो अभिव्यक्ति की दृष्टि में अपने आप में पूर्ण हो। शैलीविज्ञान इस प्रोक्ति का अध्ययन विश्लेषण करता है, जिसे प्रोक्तिय शैलीविज्ञान कह सकते हैं।"[3] शैली वैज्ञानिक आलोचक भाषा के सभी स्तरों जैसे – ध्वनि, शब्द, रूप, अर्थ, वाक्य और प्रोक्ति स्तर पर विश्लेषण करते हैं। यह विश्लेषण चयन, विचलन, विपथन, समानांतरता एवं विरलता आदि सभी दृष्टि से किया जाता है। "प्रोक्ति का उद्देश्य किसी भी रचना में उस मर्म, उस उद्देश्य को खोजता है, जो रचनाकार अपनी कृति के द्वारा सम्प्रेषित करना चाहता है। जब तक किसी रचना की प्रोक्ति नहीं खुलती उसकी आत्मा उद्घाटित नहीं हो पाती। कृति द्वारा रचनाकार जो संदेश देना चाहता है उसके मर्म तक पहुंचना प्रोक्ति द्वारा ही सम्भव है।[4]

कृष्णा सोबती हिन्दी साहित्य जगत में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। कृष्णा सोबती अपनी रचनाओं में बेलाग कथात्मक अभिव्यक्ति और सौष्ठवपूर्ण रचनात्मकता के लिए जानी जाती हैं। उन्होंने हिन्दी की कथा भाषा को विलक्षण ताज़गी प्रदान की है। उनकी भाषा संस्कार के प्रांजलता और संप्रेषण ने कई उलझी हुई गुत्थिओं को खोलने का प्रयास किया है। उनकी प्रसिद्ध कहानी–संग्रह 'बादलों के घेरे' है जिसमें उनकी कुल चौबीस कहानियाँ शामिल है। कृष्णा सोबती ने अपनी कहानियों को मानवीय संवेदना के धरातल पर खड़ा किया है। इस धरातल को मजबूत करने का कार्य उनकी भाषा शैली ने किया है। सोबती जी ने अपनी कहानियों के केंद्र में ज्यादातर स्त्री मन की संवेदनाओं को रखा है। स्त्री मन के मनौविज्ञान को उन्होंने बहुत कलात्मक ढंग से पेश किया है। कृष्णा सोबती की भाषा शैली देखने में बहुत सरल एवं सहज प्रतीत होती है परन्तु गहराई से देखने

पर पता चलता है की उनकी भाषा शैली अपने आप में बहुत गहरे भावों को समेटे हुये है।

'बादलों के घेरे' और 'सिक्का बदल गया' कहानी का परिचय :-

'बादलों के घेरे' कहानी भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से उच्च कोटि की है। यह प्रेम कहानी हिंदी कथा साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस कहानी के केंद्र में दो पात्र रवि और मन्नो हैं। रवि अपनी बुआ के घर कुछ दिनों के लिए आया है। वहीं उसे पहली बार मन्नो मिलती है। रवि मन्नो की तरफ आकर्षित होता है। यह देख उसकी बुआ रवि को बताती है की मन्नो तपेदिक की मरीज है। जिसके कारण उन दोनों का साथ एक नहीं हो सकता। यह जानते हुए वह बाद में मन्नो से मिलने भुवाली के कॉटेज जाता है। यह सिलसिला लगातार चलता रहता है। मन्नो भी रवि को प्रेम करती है मगर अपनी बीमारी के चलते उसे कभी बताती नहीं। एक दिन रवि मन्नो को रोता छोड़ जीवन में आगे निकल जाता है। फिर कुछ वर्षों बाद पत्नी और दो बच्चों समेत रवि का भरा पूरा परिवार होता है।

कुछ सालों बाद रवि को बुआ से पता चलता है की मन्नो अब इस दुनिया में नहीं रही और मरने से पहले रवि के लिए एक स्वेटर छोड़ गई है। समय अपने आपको फिर दोहराता है। कुछ वर्षों बाद मन्नो की तरह रवि को भी तपेदिक की बीमारी हो जाती है वह भी अपने परिवार से अलग–थलग भुवाली के एक कॉटेज में पड़ा हुआ होता है। वही उसे मन्नो की पीड़ा उसकी छटपटाहट का बोध होता है। अपने स्वार्थ में वह मन्नो को भूल गया। उसकी इतने वर्षों तक उसने कोई सुध नहीं ली। जिससे वह आत्मग्लानि से भर जाता है। वह भी मन्नो ही तरह एक दिन बादलों के घेरे में समा जाता है अर्थात् वह भी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

'सिक्का बदल गया' कहानी देश–विभाजन की पृष्ठ भूमि पर लिखी गई है। विभाजन की पीड़ा को कृष्णा सोबती ने इस कहानी में दर्शाया है। मानवीय रिश्तों के यकायक बदल जाने और झूठे पड़ जाने की पीड़ा को लेखिका ने अभिव्यक्त किया है। इस कहानी की मुख्य पात्र शाहनी है। शाहजी जो शाहनी के पति हैं मगर अब वह इस दुनिया में नहीं हैं। शाहनी मुस्लिम आबादी वाले गाँव में रहती है। जहाँ अल्पसंख्यक लोगों को जान से मारा जाता है और उनके घरों पर कब्ज़ा कर लिया जाता है। इन सभी बातों से शाहनी अवगत है। वह एक दिन चनाब नदी में नहाने जाती है जहाँ वह वर्षों से नहाती आई है परन्तु उसे इस नदी में नहाने से डर लगता है। वहीं वह सोचती है की पहले यह जगह कितनी अपनी सी लगती थी। शेरा जो शाहनी का मुँह बोला बेटा है जिसे शाहजी और शाहनी ने पाल–पोषकर बड़ा किया है। वह अपने साथियों के साथ शाहनी को मारने की योजना बनाता है परन्तु वह शाहनी को मार नहीं पाता। उसे ऐसा करने से शाहनी की ममता रोक लेती है। शाहनी अपने गाँव की सबसे धनवान स्त्री होती है। गाँव वाले उसे गाँव छोड़ने का आग्रह करते हैं। जाते समय थानेदार दाउद खाँ शाहनी को कहता है कुछ नगद रूपये रख लो। शाहनी अपनी भरी हुई सम्पत्ति से एक कौड़ी भी नहीं ले जाती। जिसे देख पूरा गाँव भावुक हो जाता है। शाहनी सबको अपना आशिर्वाद देती है। शाहनी गाँव छोड़कर ट्रक में कैंप चली जाती है।

'बादलों के घेरे' और 'सिक्का बदल गया' कहानी का प्रोक्ति विश्लेषण इस प्रकार है :– कृष्णा सोबती ने जिस प्रकार अपनी कहानियों में भाव पक्ष पर कार्य किया है उसी प्रकार उन्होंने भाषा पक्ष को भी कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। जिसके लिए उन्होंने विशिष्ट भाषा का चयन किया हैं।

चयन :-

"चयन का अर्थ 'चुनना' अर्थात् 'एकाधिक' में से किसी 'एक' को चुन लेना। शैलीविज्ञान के प्रसंग में इसका अर्थ होगा किसी भाषा में प्राप्त एकाधिक इकाईयों या व्यवस्थाओं में अपनी अभिव्यक्ति के लिए 'किसी एक को चुन लेना।"[5] कृष्णा सोबती ने कहानियों में भाषा के स्तर पर उचित चयन किया है। जिसका उदाहरण 'बादलों के घेरे' कहानी से इस प्रकार दृष्टव्य है– "कम्बल के नीचे पड़ा–पड़ा मैं दवा की शीशियाँ देखता हूँ और उन पर लिखे विज्ञापन देखता हूँ। घूँट भरकर जब इन्हें पिता हूँ, तो सोचता हूँ, तन के रस रीत जाने पर हाड़–मांस सब काठ हो जाते हैं। मिट्टी नहीं कहता हूँ। मिट्टी हो जाने से तो मिट्टी से फिर रस उभरता है, अभी तो मुझे मिट्टी होना है।"[6] इस प्रोक्ति का चयन कृष्णा सोबती ने गहन अर्थ में किया हैं। यह प्रोक्ति जीवन के अंतिम सत्य की ओर संकेत करती है। कहानी में यह प्रोक्ति रवि द्वारा कही गई है। रवि भी मन्नो की तरह तपेदिक की बीमारी से ग्रस्त है। वह भी भुवाली के सुनसान कमरों में जीवन काटने को विवश है। वहीं उसे अपने बीते जीवन की सारी स्मृतियाँ याद आती हैं। जिसमें मन्नो के साथ बिताये हर पल को याद कर वह आत्मग्लानी से भर उठता है। यह पूरी प्रोक्ति रवि की मानसिक पीड़ा की ओर संकेत करती है और साथ ही जीवन के अंतिम सत्य मृत्यु का बोध कराती है। इस पूरी प्रोक्ति का अर्थ दो स्तरों पर खुलता है।

पहले स्तर पर रवि के अलेकेपन और छटपटाहट की ओर इशारा किया गया है। दूसरे स्तर पर जीवन के शाश्वत सत्य की ओर संकेत किया गया है। इसी प्रकार की प्रोक्ति में कृष्णा सोबती ने अपनी कहानियों में रखती हैं जो देखने में बहुत ही सामान्य सी मालूम होती है परन्तु अपने आप में बहुत गहरे अर्थों को छिपाए हुए है। जिसका एक और उदाहरण 'सिक्का बदल गया' कहानी से इस प्रकार दृष्टव्य है –"आसपास के हरे–हरे खेतों से घिरे गाँवों में रात खून बरसा रही थी। शायद राज पलटा खा रहा था और सिक्का बदल रहा था... ।"[7] यह प्रोक्ति अपने आप में बहुत गहरी संवेदना समेटे हुए है। इस प्रोक्ति में सोबती जी ने विभाजन की त्रासदी को दर्शया है। इस प्रोक्ति के भी अर्थ दो स्तरों पर खुलते हैं। पहले स्तर पर इसका अर्थ शाहनी के परिपेक्ष्य में अभिव्यक्त हो रहा है। विभाजन के कारण हो रही हिंसा से बचकर उसे किस प्रकार अपनी जान बचाकर और भरी हुई संम्पति छोड़कर कैंप जाना पड़ता है। दूसरे स्तर पर सोबती जी इस प्रोक्ति में विभाजन की हिंसात्मक पीड़ा को बयाँ किया है कि किस प्रकार हर रात अल्पसंख्यक लोगों को जान से मार कर उनके घरों पर कब्ज़ा किया जाता है। इस प्रोक्ति की दूसरी लाइन अपने आप में बहुत कुछ बयाँ कर रही है। यह प्रोक्ति हमारी शासन व्यवस्था के परिवर्तन को दर्शाती है कि जब–जब शासन बदलता है तब सामान्य लोगों को कितनी पीड़ा का सामना करना पड़ता है।

समानांतरता :-

समानांतरता से अभिप्राय है, किसी रचना में समान या विरोधी भाषिक इकाइयों का समानांतरता प्रयोग।

प्रोक्ति-स्तरीय समानांतरता :-

जब दो या दो से अधिक समान इकाइयाँ साथ–साथ आती हैं वहाँ प्रोक्ति स्तरीय समानांतरता होती है। कृष्णा सोबती ने 'बादलों के घेरे' कहानी के अंतर्गत भाषा के स्तर पर कई समान इकाइयों का प्रयोग किया है। जिसका उदाहरण इस प्रकार दृष्टव्य है –"मैं लेटा रहता हूँ और सुबह हो जाती है। मैं लेटा रहता हूँ, शाम हो जाती है। मैं लेटा रहता हूँ और रात झुक जाती है।"[8] इस प्रोक्ति को समान बनाने के पीछे रचनाकार की गहरी

संवेदना है। यह प्रोक्ति रवि के परिपेक्ष्य में रखकर उसके जीवन की नीरसता की ओर संकेत किया गया है। जो रवि की छटपटाहट को अभिव्यक्त करती है। किस प्रकार रवि एक जगह स्थिर होकर अपने आस–पास होती सामान्य सी क्रियाओं को देखता है। जिसे महसूस करके वह ऊब जाता है। पूरी प्रोक्ति में 'मैं लेटा रहता हूँ' इस वाक्य को तीन बार प्रयोग में लाया गया है। जिससे पूरी प्रोक्ति एक समान बनती है। इस वाक्य पर बार–बार बल देकर लेखिका रवि के जीवन की जड़ता और उसके अकेलेपन की ओर संकेत करती है। इसी प्रकार से कृष्णा सोबती ने भाषा के स्तर पर कई समान इकाइयों का प्रयोग किया है। जिसका उदाहरण 'सिक्का बदल गया' से इस प्रकार है–"वही शाहनी है जिसके शाहजी उसके लिए दरिया के किनारे खेमे लगवा दिया करते थे। यह तो वही शाहनी है जिसने उसकी मँगेतर को सोने के कनफूल दिए थे मुहँ दिखाई में।"[9] इस प्रोक्ति के अंतर्गत लेखिका ने समान इकाइयों का प्रयोग किया है जो अपने आप में गहरी संवेदना को अपने में समेटे हुए है। इस समान प्रोक्ति के माध्यम से लेखिका ने शाहनी के बदलते परिवेश को रेखांकित किया है। पहले शाहनी का गाँव में कितना रुतबा था। शाहजी ने नदी के किनारे उसकी सुविधा के लिए खेमें लगवाये और शाहनी की सभी आवश्कताओं को पूरा किया। मगर आज समय बदल गया है शाहनी को कोई पूछने वाला नहीं है। पूरा गाँव जो कभी शाहनी का अपना हुआ करता था और शाहनी पूरे गाँव की परन्तु समय परिवर्तित होते ही सभी गाँव वाले अजनबी हो जाते हैं। यह सामान्य सी प्रोक्ति अपने आप में शाहनी के बदलते दौर की गाथा को अभिव्यक्त कर रही है।

विरलता :–

विरलता तब उपस्थित होती है जब समानांतरता विचलन और विपथन– तीनों में से कोई भी अभिलक्षण क्रियाशील नहीं होते हैं।

प्रोक्ति–स्तर :–

जब प्रोक्ति स्तर पर रचनाकार कोई प्रोक्ति प्रस्तुत करता है, जो न तो पूरी रचना में आवर्तित होती है, न ही व्याकरणिकता या अस्वीकार्यता के आधार पर विचलित होती है और न ही रचनाकार के किसी मानक को अतिक्रमित करने के कारण विचलित, तब विरलता उपस्थित होती है। उदाहरण 'बादलों के घेरे' कहानी से इस प्रकार है –"मन्नो चौंकी नहीं। कन्धे पर पड़ा हाथ धीरे से अलग कर दिया और समूची आँखों से देखते हुए बोली, "रवि, जिसे तुम झेल नहीं सकते, उसके लिए हाथ न बढ़ाओ।"[10] यह प्रोक्ति गम्भीर भावों को अभिव्यक्त कर रही है। यह प्रोक्ति मन्नो द्वारा रवि को कही गई है। जिसमें मन्नो की मानसिक पीड़ा को दर्शाया गया है। मन्नो भी रवि से प्रेम करती है परन्तु अपनी बीमारी के चलते रवि को अपने से दूर करना चाहती है। जिसकी अभिव्यक्ति सोबती जी ने बहुत प्रभावशाली ढंग से किया है। प्रोक्ति की भाषा में न विचलन है न ही विपथन फिर भी पूरी प्रोक्ति मन्नो के मनोभावों को संप्रेषित कर रही है। 'सिक्का बदल गया' कहानी से एक और उदाहरण इस प्रकार है –"शाहनी चलो, तुम्हें घर तक छोड़ आऊँ। शाहनी उठ खड़ी हुई। किसी गहरे सोच में चलती हुई शाहनी के पीछे–पीछे मजबूत कदम उठाता शेरा चल रहा है। शंकित–सा इधर–उधर देखता जा रहा है। अपने साथियों की बातें उसके कानों में गूँज रही हैं। पर क्या होगा शाहनी को मारकर?"[11] इस प्रोक्ति में शेरे के मन में चल रही दुविधा को लेखिका ने बहुत कलात्मक ढंग से पेश किया है। उसके मन में शाहनी के प्रति सद्भाव है क्योंकि शाहनी ने उसे बचपन से बहुत लाड़ प्यार से पाल–पोसकर बड़ा किया है। मगर जैसे ही समय बदला उसके

साथियों ने उसके कान भरने लगे कि वह शाहनी को भी दूसरे अल्पसंख्यकों की तरह जान से मार डाले। मगर शेरा का मन शाहनी की हत्या के लिए गवाही नहीं देता। इस पूरे भाव को लेखिका ने बहुत ही कलात्मक ढंग से व्यक्त किया है।

निष्कर्ष :-

अंत में कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती की यह दोनों कहानियाँ भाव और भाषा की दृष्टि से सार्थक हैं। भाषा शैली की दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि यह दोनों कहनियाँ गहरे अर्थों को समेंटे हुए है। जिसके कारण पाठक को अभिभूत करने की क्षमता रखती हैं। जिसके पीछे उनकी भाषा शैली का बहुत बड़ा योगदान है। जिससे वह किसी भी भाव और दृश्य को मूर्त कर उसे कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करती हैं। कृष्णा सोबती की भाषा शैली बेजोड़ है। जो मानवीय संवेदना को भाषा की माला में पिरोकर चयन, समानांतरता, विरलता, द्वारा प्रस्तुत करती है। प्रोक्ति शैलीविज्ञान की यह विशेषता, लेखिका की रचनाशीलता को कलात्मक बनाते हैं।

सन्दर्भ सूची :-

1. तिवारी, भोलानाथ, शैलीविज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 22
2. शर्मा, देवेन्द्रनाथ, भाषा विज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2001, पृष्ठ संख्या 222–241
3. तिवारी, भोलानाथ, शैलीविज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 26
4. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, संरचनात्मक शैलीविज्ञान, आलेख प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1980, पृष्ठ संख्या 95
5. तिवारी, भोलानाथ, शैलीविज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 68
6. सोबती, कृष्णा, बादलों के घेरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2006, पृष्ठ संख्या 8
7. यथावत्, पृष्ठ संख्या 140
8. यथावत्, पृष्ठ संख्या 7
9. यथावत्, पृष्ठ संख्या 138
10. यथावत्, पृष्ठ संख्या 26
11. यथावत्, पृष्ठ संख्या 136

Email id- madhugupta583@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 41-45

To Study the Problem Solving Ability & Emotional Maturity of Secondary School Students in Relation to their School Environment

Archana, Student
Dr. Sangeeta Agarwal, Research Supervisor
Tantiya University, Sriganganagar, Rajasthan

The present study aims to determine the problems solving ability, emotional maturity and school environment of students of secondary level. The research was carried out on random sample of 600 students of rural and urban secondary school from Bikaner District. The research use standardized tools for the study. Statistical techniques of percentage, t-test and correlation was used to analysed the problems solving ability, emotional maturity and school environment of secondary school students. The result shows that there exist significant differences in problem solving ability of Rural and Urban secondary school students. There exist no significant difference in emotional maturity of Rural and Urban secondary school students. There exist significant difference in school environment of Rural and Urban secondary school students.

Introduction :-

Of all the creation of god, human life is the most sacred. It has two aspects the biological & sociological. While the biological aspects of human life is maintenance & transmission by education. In the primitive society, the primary needs of man comprised food, shelter & clothing. With the progress of society & civilization, however those primary needs have been multiplied into six – food, shelter, clothing, education, recreation & health. Man is primarily distinguishable from the lower animals because of his educating ability. He is endowed with emotional maturity, intelligence, he wants to remain active, energetic & even original. He desires to go ahead, this list of human achievement is very big. How has all these been done through education. It is education which promotes his intelligence, creativity & emotional intelligence & even,

Problem Solving Ability :-

Problems are unknown in nature. Charles & Lester (1982) said that "problems are solved

through the process of adjusting previous experience, knowledge & intuition" creativity into students can be furnished through problem solving ability. Achievement in life efficiency & happiness depends upon problem solving abilities of a person. Every human faces many problems in their life & it necessary to give more attention to this aspect. Education provides training to face challenges. It can be understood that problem solving ability is one of the key factors for success in organization & personal careers" (Anderson & Anderson 1995). Problem solving ability is chance which creates various options for the students & to determine the best possible solution to a given problem. Problem solving is a difficult cognitive ability as well as goal oriented process. Logical thinking & reasoning abilities is needed to solve complex problems in life in today's competitive world. Mayer & Wittrock (2006) defined problem solving cognitive process focused on accomplishing a goal when there is not any quick solution for the problem solver. It is a process which includes creative thinking & reasoning. It helps to remove a barrier that is in the way of attainment of goal.

Emotional Maturity :-

Emotional maturity is when someone can manage their emotions no matter their circumstances even if they don't have all the answers, on emotionally mature individual gives off a sense of calm amid the storm. They are the ones we look to when going through a difficult time because they perform well under stress. They know how to respond to tough situation & still keep their cool. Ifs a skill set they can consistently work on over time.

School Environment :-

"School environment means the extent to which school setting promote student safety & student health, which may include topics such as the physical plant, the academic environment, available physical & mental health supports & services & the fairness & adequacy of disciplinary procedures, as supported by relevant research & on assessment of validity".

When we establish a learning environment, keeping some important factors in mind, it helps in developing a thriving learning culture. A positive learning environment is the one where learners feel involved & responsible for their learning while being comfortable enough to fully participate in group & individual activities. Needless to say, when education foster positive learning culture, learners are more likely to have the higher motivation that leads to better & more promising learning outcomes.

Statements of Problems : -

"To Study the Problem Solving Ability & Emotional Maturity of Secondary School Students in Relation to their School Environment"

Objectives of the Study :-

1. To compare the problem solving ability of rural & urban students of secondary level.

2. To compare the emotional maturity of rural & urban students of secondary level.
3. To compare the school environment of rural & urban students of secondary level.

Hypothesis of the Study :-

1. There exist no significant difference in problem solving ability of rural & urban students of secondary level.
2. There exist no significant difference in emotional maturity of rural & urban students of secondary level.
3. There exist no significant difference in school environment of rural & urban students of secondary level.

Research Method :-

In the study survey method is used and information will be obtained from students.

Tools :-

(1) Standardized tools on problem solving ability of students by L.N Dubey.
(2) Standardized tool on Emotional maturity of students by Tara Sabapathy.
(3) Standardized tool took on School Environment of students by K.S Mishra

Sampling in the Present Study :-

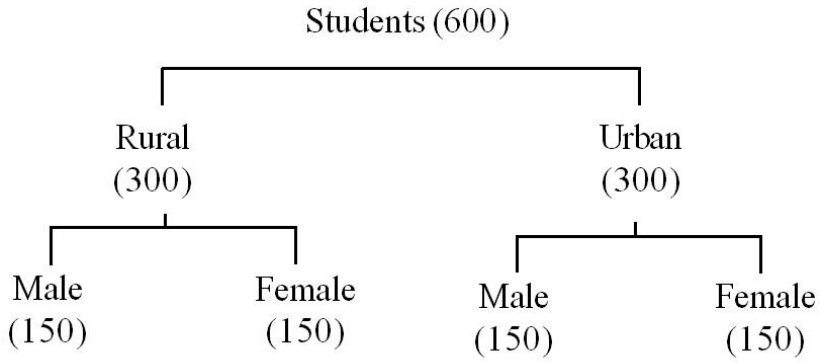

Statistics to be used in the study :-

(1) Graphical representation
(2) Mean
(3) Standard Deviation
(4) T-Test
(5) Co-relation

Analysis & Interpretation :-

Hypothesis - 1 :-

There exist no significant difference in problem solving ability of rural and urban students of secondary level.

Table – 4.1

This table shows the problem solving ability of rural and urban students of secondary level.

S. No.	Students	No.	Mean	S.D.	T-Value	Level of Significance	
1	Rural	300	7.93	5.34	8.757	0.05	0.01
2	Urban	300	10.96	3.07		Rejected	Rejected

Hypothesis – 2 :-

There exist no significant difference in emotional maturity of rural and urban students of secondary level.

Table – 4.2

This table shows the comparison of self concept of teachers of extrovert & introvert personality.

S.No.	Students	No.	Mean	S.D.	T-Value	Level of Significance	
1	Rural	300	128.96	10.26	0.69	0.05	0.01
2	Urban	300	129.91	13.25		Accepted	Accepted

Hypothesis – 3 :-

There exist no significant difference in school environment of rural and urban students of secondary level.

Table – 4.3

This table shows the school environment of rural and urban students of secondary level.

Personality	No. of Teachers	Sound Mental Health	Percentage	Result
Extrovert	76	49	64.47	Rejected
Introvert	26	16	61.53	

5.2 Conclusion :-

1. There is significance difference in problems solving edibility of rural and urban secondary students.
2. There is no significance difference in emotional maturity of rural and urban secondary students.
3. There is significance difference in school environment of rural and urban secondary students.

Educational Significance :-

1. It is beneficial for policy makers to formulate policies according to the problems solving

edibility, emotional maturity and school environment of students.

2. It is beneficial for students and management.

References :-

1. Mallick, R. Singh, A, Chaturvedi, P and Kumarand (2014) :- "A study on Higher secondary students Emotional maturity and Achievement."
   International journal of research and Development in Technology and management Science 2(1).
2. Aalst T.V and Hill C.M (2006) :- Activity theory as a framework for analyzing knowledge Building learning Environment Research 9: 23-44.
3. Aldridge J.M Laigksch R.C. and Fraser B.J (2006) :- "School- level environmental and outcomes-based education in south Africa". Learning Environment research 9-123-147

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 46-52

Revisiting Dalit Aesthetics : The Question of Representation

Dr. Sunil Kumar
Associate Professor of English, Govt. College, Sihma

"Man's fate today, is no longer in the hands of the gods, but is often in conflict with the evil in other men. Man makes himself, or thinks he can. The heart and mind of contemporary man is, therefore, moved by other casualties than salvation." -Mulk Raj Anand
("The story of My Experiments with a White Lie")

All man-made norms, systems and dictums are prone to change. Even the creators of all these mortal norms are not immortal. Only nature and its perennial system stand the test of time and tide. Things as they begin cannot remain as they were. Whole human drama undergoes innumerable fluctuations and crossovers. And all fluxes of this human drama of 'sound and fury' are manipulated through literature. Juggernaut of the social stratification is itself bound to be emaciated because change is the only thing which is certain. The social stratification has itself never been constant, its impact and the resultant imbalance, people's will to perpetuate or to abrogate it couldn't be withheld in literature. And it ought not to be. As literature is an important, now and then most powerful, asset in creating, retaining and demolishing erstwhile set-up- mental, social, ideological or physical.

The destiny of an untouchable has been a windowless room in which millions of men-made untouchables are still writhing with excruciating pain of exploitations and deprivations. Many fictional and factual vigilantes have taken up the comprehensive and rational crusades against the injustice and deprivation resulting from caste discrimination. This literary crusade is called Dalit literature. It is the portrayal of agonizing reality and the expression of a radical revolt against the age old, time-honoured defective traditions, conventions and dogmas of Hindu religion used as motif which define Dalit literature. The "Dalits" – are the deprived, the exploited, the abused, the oppressed, the destitute, the landless or as M.N. Wankhade puts it, "all those who toil and are exploited and oppressed." (Singh, 40)

Further the study of dalitism is invariably related to the socio-economic conditions of the down-trodden and thus inherently connected with cultural and sociological studies. "This is a literature which acts like an image of social realism i.e. it is a reflection of the shadow of realty rather than depiction of the solution to reality" (Narayan, 23)

Dalit literature has been a recent phenomenon. It is one of the many newly emerged concerns and literatures of the world after 1950 but 'with the difference that it is indigenous, home-made with local traits and habitation and is experimental'. K.Satchidanandan writes, 'Dalit literature empowers the marginalized by retrieving the voices, spaces and identities silenced or suppressed by casteist powers'. The term Dalit literature was for the first time used in Dalit Literary Conference in 1958. In 1960's Anna Bhau Sathe and Shankarrao Kharat became the first proponents of Dalit literary movement. With them, Baburao Bagul's collection of stories 'Tevha Mee Taat Chorli Hoti' ('When I concealed my caste') was considered the pioneering work of the period. In 1970's the poets like Daya Pawar, Waman Nimbalkar, Arjun Dangle, Namdeo Dhasal and short story writers such as Tarachandra Khandekar and Yogiraj Aaghmare formed the major Dalit voices in the period. After seventies the scope of Dalit writing widened and so many other writers made their appearance on the literary horizon of Dalit writings. The more noted works among them are Arjun Dangle's edited Poisoned Bread, published in1992, which is an excellent collection of modern Marathi dalit literature, Vasant Moon's Growing up Untouchable in India in 2002, Joseph McEwan's Angaliyat (The Step Child), which was published in 2004. Though there has been a spurt of creative impulse in Dalit writings, its potential as far as critical studies are concerned has not been fully harnessed

Postcolonial era turned the world upside-down by bringing a big change in social and political scenario of the world. This upside-down change marginalized the centre and centralized the marginal slowly and steadily. This exchange within the social order brought Dalit consciousness along with its literature in focus in Indian society. It was a revolution, a movement which cried for equality, right, respect and love. Dalit literature stressed that democracy is not a result of adult franchise but it should be a pattern of life which is founded on freedom, fairness, fraternity and justice. Dalit literature wouldn't lay down any norms to be followed by the posterity rather it would portray shockingly painful and humiliating treatment given to Dalits and by exposing inequality, sorrows and injustice meted to their class. Representation of cultural conflicts of the socially and economically deprived and disadvantaged is the preponderant subject-matter of Dalit Literature. So this literature would be revolutionary, didactic and doctrinaire. Dalit literature is integrationist rather than segregationist like Black Literature of Africa. Dalit literature is not 'Art for Art's sake', but it is the literature of a life that struggles hard to get itself rekindled after being blown off by the unjust social stratification of Indian society. Its sole aim is to portray the harsh realities of society. M.N.Wankhade asserts: "The concept of beauty is related to the thought of each particular age. At one time kings were the subject of literature, common people were not acceptable subject. But today the life of untouchable quarters and slums has become subject matter of literature."(Dangle, 297) It is a literature which not only questions the social, political and economic structure of a society but also questions the development of human consciousness. Its target is 'change'. But the motive behind its revolutionary disposition shouldn't be mistaken as revenge, as Baburao Bagul puts it: "Dalit Literature is not a Literature of

vengeance. Dalit Sahitya is not a Literature which spreads hatred. Dalit Sahitya first promotes man's greatness and man's freedom and for that reason it is an historic necessity."(Bagul, 56-57) As Burner says, "The active process of reconstruction of oneself is equally a remaking of history."(Abedi, 251) Thus Dalit Literature promotes the re-evaluation of whole Indian cultures scriptures and literature with a Dalit point of view that advocates a revolutionary but not apocalyptic change. Therefore Dalit Literature is taken as an effort to re-write history and tradition. Rajendra Yadav posits that 'struggle, suffering and vision' are three essentials of Dalit Literature; eminent Hindi critic Dr. Namawar Singh also observes that Dalit Literature's aesthetics lies in its art of attack. It is theme oriented than technique oriented. The treatment of Dalit in Indian literature is two-fold, one that is done by born Dalit writers and other by non-Dalit writers who have often been, especially in the dawn of Dalit awareness, excluded from any discussion of dalitism. Such studies always expose the inherent dichotomy which emerges from two different and opposite perspectives. One, non–Dailt writer are charged with producing only imaginary and fictional plights of the marginalized, exploited and deprived i.e -'Dalits', and Dalit writers have been applauded for rendering a very authentic and often autobiographical literature. The study of Dalit literature from the perspectives of born Dalit writers and non-Dalit writers will provide valuable insights into how genuine are the attempts to don Dalit identity now-a-days when 'Dalit' has become a catch word.

Heretofore we have witnessed different phases in the development of Dalit literature and its aesthetics. From extreme insularity it has reached a stage of broad inclusion. Arjun Dangle says in his article "New connotations of the word Dalit": "A number of doubts were raised as to its nature……Initially the discussions centred on Buddhist (or Mahar) as they led the movement. Later on it realized that while defining Dalit literature, Dalit writers and intellectuals had clearly stated that it was not the literature of a particular caste. Their stand from the beginning is broad-based and well-developed."(Dangle, 217)

After independence the word "Dalit" has become synonymous of scheduled castes and tribes and majority of them live below the poverty line and that they have been the real victims of the conventional dogmas of Hindu religion. That's why initially there is a view, although not always strongly manifested, that a complete good Dalit work can be written only by a Dalit and not by any non-Dalit writer. Therefore initial voices against exploitation and oppresion raised by Kabir, Rabindranath Tagore, Premchand, Mulkraj Anand, etc. have never been considered as a part of Dalit Literature; though they sensitized social opinion against caste-system even before the birth of the contemporary 'Dalit Literature', but their writings were taken as the attempts to procure commiseration, pathos and satire. But Dalit Literature doesn't approve such contents.

Dalit Literature has to instill a tone of immediacy, intensity, violence and strong disapproval of caste-system through strong and abusive language. Dalit writers and thinkers hold that the experiences of being a Dalit cannot be acquired by a person or writer who has not been put on the

vicious circle of Indian social stratification. Although well intentioned and sympathetic a non-Dalit writer might be, but the reality of felt experiences can never be equated with the imaginative and sympathetic literature. 'Can imaginative participation and a strong sense of empathy with the downtrodden be insufficient to feel the pain and humiliation which the burden of being born in a particular caste brings in?' Sharatchandra Muktibodh in Poisoned Bread… puts it as:

"There is as much a difference between a Dalit view and Dalit vision as there is between having a look at the map of a city and actually living in that city. When a view of life is experienced by a writer in its multiform distinct totality he could be said to have had a vision of his own point of view."(Dangle, 268)

Dalit author Narendra Jadhav also speaks in the same vein :

"Non-Dalit writing for Dalit is written out of sympathy. Empathy is a right word, but there is always a difference between mother's love and a wet nurse love. There is a substantial difference between Dalit writing about themselves and others doing it. Because they have a second hand experience and they could not shook the other's perception as could the first person account." (Singh K, 42-43)

Here S.P.Punalekar also views that direct experiences of suffering by the writer himself make his story more authentic and it is not twice or thrice removed from reality as it is in the case of non-Dalit writer's delineations. Another eminent Dalit thinker Sharatchandra Muktibodh in one of his essay entitled "What is Dalit Literature?" writes, "Dalit literature is the literature produced by Dalit consciousness…..The nature of Dalit consciousness is obviously not subjective. It is true that pains and pleasures are lived and experienced by individuals alone but the sufferings of the Dalits are common and are attributable to common reasons." (Dangle, 267) Eleanor Zelliot's opinion is straightforward in this respect- "Those in the Dalit School would say-'yes there is Dalit literature'. Only Dalit can write it because only they have experienced the social as well as the economic problems of the lowest of castes. And when educated and no longer poor, they not only remember their childhood, they also suffer from the idea of pollution which remains strong in the Hindu mind and they identify with their village brother and sisters who are still subject to outrageous treatment when they claim their full human rights."(Zelliot, 18-19) In this same strain of thoughts Prabhakar Mande, an eminent folklorist and scholar believes that Dalit literature shouldn't be considered only as a literary event. Juxtaposition of all these literary chain of events with sociological scenario is of utmost importance. He further views that if we don't see the Dalit literature in "sociological perspective against the entire background of the changes happening in the society" we will not be able to decipher the real significance and value of this literature. (Randhawa, 154) Commenting upon the importance of the sociological basis of Dalit literature S.R.Jalote dismisses the predominance of literary theories, just mark his saying: "A study of Dalit literature as well as that of any other subaltern literature clearly demonstrates that literary theories have never predominated over sociological analysis of Dalit texts

or subaltern texts. Since the root cause of the Dalit's oppression lies in the outmoded dogmas of Hindu religion, a study of Dalit literature is a very sensitive area."(Jalote, 11)

But its sensitivity may not be confounded with 'sensationalism of exclusion' of non-Dalit's endeavors from this literature. This exclusivist approach seems refutable owing to its narrow and parochial base upon which it rests. Many Dalit thinkers and writers are dismissive of the works of non-Dalit writers; they declare that non-Dalit writers are merely dabbling with Dalit literature by their imaginary delineations. They also questions the strong sense of sympathy coupled with excruciating intention (sense) of amelioration projected by non-Dalit writers in their works. They also think that these non-Dalit writers' works are beyond reality. Here these 'exclusivists' seem a little unsteady in their arguments. Literature doesn't mean the real or 'as it is' representation of the world. How can a literature be produced without imagination? Answer is definitely negative. It is this very imaginative sensibility in a writer which separates literati from a historian. The truth will not be violated if we proclaim that this inevitable imaginative sensibility constitutes the essential law of "poetic truth and poetic beauty" in a work of literature. A work of art sans probable imagination is nothing but a marrowless deed on the part of a writer.

These exclusivists point out that when a non-Dalit writes on behalf of a Dalit then the identity of a Dalit gets dwindled. Therefore some Dalit writers and thinkers determine the perception of reality, making representation of a Dalit life by a non-Dalit is spurious and invalid (unfaithful). They holds that literature written with a note of sympathy for Dalit is not Dalit literature therefore they do not include Prem Chand, Mulk Raj Anand, Vijay Tendulkar and many such other writers in the category of Dalit writers. But the stand on which these 'exclusivists' base their arguments is self-contradictory and unsteady. "Their vision does not take into account the irrefutable fact that all literature is essentially and inherently representational and symbolic, 'one voice' speaking for 'others'. The claim of a Dalit…to speak more authentically about other Dalit…in itself is questionable, since the writer or speaker can, at most, honestly speak about herself [or himself]; writers' claim to represent others who may be less educated or might have different experiences than the writer, in itself is debatable. While it cannot be denied that to feel the degradations and disabilities, some part is played by 'real life experiences', it can never be complete and an end in itself. Ultimately all experiences are 'borrowed' to some extent and imaginative identification plays a crucial role in every discourse. Even the experiences of born Dalit writers may also be borrowed and not their own in the sense that mostly the protagonists in their works are less fortunate financially and educationally than the writer herself [or himself]. (Singh, 44) What does it mean? It explains that well educated and well-settled and employed Dalit are not authentic representative, as a writer, of their ill-equipped fellow Dalits of grass-root level. Definitely their (writers') experiences differ from their poor and weak fellow Dalits. "It does not require any stretch of imagination to find the problem of the argument referred to by Gopal Guru wherein he confers the exclusive rights of the experiences of Dalithood to the Dalits since the question which arises is--

which Dalits' experiences the writer is claiming to represent? If the process of identification is possible for an urban, middle class, employed Dalit with a rural, poor, illiterate labourer, it is equally possible for a person belonging to other castes with a keen, sensitive, sympathetic intellectual apparatus. Further, the claim to exclusive Dalit experience fails to take into cognizance the role of other equally important factors such as individuality, class, sub-jatis, or region in the formation of 'experiences' ". (Singh K, 45)

Vandana Datta, the editor of A Journal of English Studies, questioning the view of Dalit thinkers of not including the non-Dalit writers in Dalit literature because of their not being born in a particular caste. She holds it very aptly: "…a debatable issue today is the stand taken by Dalit writers that only a Dalit writer can speak for Dalit. It is argued that sympathy cannot make up for personal experience. But isn't it true that the true artist does not belong to any caste, class or gender? He writes just not his own mind but gets into the skin of his characters and voices his words, feels his emotions, his sorrows. The better is the artist the deeper is the understanding. Are the portrayals of women by Shakespeare and Isben, Shaw and Sharatachandra any poorer for the fact that they have been done by men? Just as women's issues are not the concerns of women alone, the plight of the Dalit can be removed only by the concerted action of all segment of society."(Datta, vii) She further adds, "Literature stands far above these trifles. Such categorizations based on caste and class reflect the narrowness of the human mind. Literature is above all –isms, above all classifications and it is this that should be aimed at, irrespective of caste, class and gender. Things, however, are not as simple as they may appear. Social issues are just social issues. Politics has seeped into every aspect of our lives and made things far more complicated than they would have otherwise been, Let us try to keep literature away from the murkiness of politics. Let us keep it pure and clean….."(Datta, viii)

This lurking danger of diversion of the movement of Dalit in the realm of parochialism is widely deciphered not only by Dalit thinkers and writers but also outside it. The eminent Hindi critic Dr. Namwar Singh asserts in an interview given to 'Hans' magzine- "The literature manifesting dalit experiences, values, restlessness, curiosities and questions may be called Dalit literature without considering its author. Expression is a natural human right and neither Dalits nor non-Dalits can be prevented from writing against each other." (Singh, 42)

The meaning of "Dalit" was more elaborated and liberalized. Let's quote a few lines of the manifesto of the conference of 1972: "Who are Dalits? All scheduled castes and scheduled tribes, neo Buddhists, labourers, landless and destitute peasants, women and all those who have been exploited politically and economically and in the name of religion are Dalits." (Singh, 42) Thus, this declaration makes it confirm that the meaning of the word 'Dalit' should not be associated with a particular caste, class and religion. It is completely secular. The word 'dalit' comes from Marathi language and a Hindi synonym of it is 'damit', literally it means crushed, exploited, oppressed and ignored. It is not absolutely true that these injustices and exploitations would invariably happen only with SC, ST or other backward

classes. All those who are exploited, oppressed or deprived of general human needs and conditions irrespective of their class, caste, religion, sect, gender etc. are Dalits. So Dalit literature should be freed from the boundaries of parochialism and be taken in wide perspective as Sisir Kumar Das says, "Indian literature discovered a new potentiality in the life of the low and the lowliest, the deprived and humiliated. So this literature is particularly marked by pathos, anger and irony." (Das, 45)

Dalit literature is certainly, as Zakir Abedi - a foremost literary figure and a former chairman of the Minority Development Forum- puts, a form of protest literature but all protest literature is not Dalit literature. There are differences in the works of Dalit writers and non-Dalit writers. The difference is not only in ideas but also in experience, content, subject-matter, style and language. Bama, a Tamil Dalit Writer answers to a question, "Should Dalit literature be written by Dalits only? In the following:

"Need not be. Dalit consciousness can be illustrated by people from other castes. There is no hard and fast rule. Is there any one? Anyone can write about anything. But the difference will always remain. Take the example of untouchability – only an untouchable would know the pain of being one. Other people can empathies/sympathies. But the agony is always personal and it cannot be the same as something that is reflected or reported about. I don't think anyone other than a Dalit can expose all the Brahmanical lies and insult heaped upon Dalits. Others too can also write about Dalits. What is harm? But it should always be done remembering the respectability that has been denied to us and we so rightly deserve. There writing should be rich with the understanding of Dalits. Otherwise let the Dalits write about themselves. There are some writers who think that only the upper castes can help Dalit come up and not the Dalits and their leaders or writers."

Works Cited :-

1. Abedi, Zakir. Contemporary Dalit Literature. New Delhi: Arise Pub., 2010.
2. Bagul, Baburao "Dalit Sahitya: Man's greatness, Man's freedom" Asmitadarsh, Vol.1, (1973) 56-57.
3. Dangle, Arjun, ed. Poisoned Bread: Translations from Modern Marathi Dalit Literature. Bombay: Orient Longman, 1992.
4. Datta, Vandana. "A Journal of English Studies, vol.9, no.1, acknowledgement p.i-ix (Spring, 2009).
5. Narayan, Badri. Documenting Dissent: Contesting Fables, Contested Memories and Dalit Political Discourse. Shimla: IIAS, 2001.
6. S.R. Jalote, "Dalit Aesthetic Theory" p.1-12 SPIEL, Vol.3, Jan, 2007.
7. Randhawa, S. Harbir. ed. Dalit Literature: Contents, Trends and Concerns. New Delhi: Sarup Book Publishers, 2010.
8. Rao, Anupama, ed. Gender and Caste: Issues in Contemporary Indian Feminism. New Delhi: Kali for Women & Women Unlimited, 2003.
9. Singh, Karan, Amod Kumar Rai and Jyoti Yadav, eds. Dalit Literature: Challenges and Potentialities. New Delhi: Creative Books, 2009.
10. Singh K. Dalitism and Feminism: Locating Women in Dalit Literature. New Delhi: Creative Books, 2011

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 53-58

Love and Death in Sylvia Plath's Poetry: A Study of Her Confessional Mode

Dr. Mahesh Singh
Associate Professor, Govt. College for Women, Mahendergarh, Haryana-123029

Confessional mode of writing has its virtual origin in the mid 50s in America, John Berryman, Robert Lowell, Anne Sexton, Kamla Das and Sylvia Plath being its chief exponents. Confessional poetry is a hybrid mode of poetry that came into existence as a consequence of the popularization of the psychological studies, the spread of the Freudian and Jungian theories, and the emergence of the feminist movement. Confessional poetry means objective, analytical or even clinical observation of incidents from one's own life whether tinged with comedy or irony, self loathing or compassion. One thing that these writers have in common is the conception of the self as passive: the confessional poets alternately flagellate and flaunt, punish and cosset themselves. They see themselves as victims and heroes - sufferers through their sensitivity, heroic in their suffering which renders a peculiar tone - or rather range of tones nervous and hardboiled, sullen and self-pitying, the nervous breakdown often ending up in suicide. Suicide as the guarantor of integrity and the procurer of authenticity is the true identifying preoccupation of the school. The chaos off the psychic situation becomes the ground of a reoriented art in which the beset self is the testing ground and the embodiments of all human possibilities - the terrors, pains, early miseries, regrets, vexations, (and lassitude) remain as the proofs of one's existence, the degree of the intensity confirming one's reality. "The artistic problem is to make a genuine poetry out of the language of untrammeled self-awareness.

The poetry of Plath is always associated with the confessional movement. In the late 1950s and early 1960s, this form of writing emerged and it dealt with themes and subjects that had not been previously explored in American poems. Plath, who writes in the tradition of confessional writers, indulges in a great deal of heart baring. She confesses her failure, her doubts, her fear, her agony and her guilt like a true Christian. As the ultimate aim of confessional poets is to achieve poise, spirituals peace and quietude, in her poem "Edge" she looks beyond the ordinary human circumstances, anger, malice and bitterness. She confesses her guilt of suicide: "The woman is perfected. Her dead/ Body wears the smile of accomplishment." (“Edge”, Ariel p.85)"Edge" appears to be a peaceful poem but a serious reading of the poem indicates an undercurrent of vengeance. She was passing through a typical

state of confusion, hatred and madness. Her action before suicide indicates that she was a loving mother who had an apathetic husband. For Plath, poetry has mainly two purposes. She explores in the first instance, the organic capacity of art. A committed artist, she is different from other confessional poets, the confession is given an artistic form. She always tried to transform all her psychic scars into healthy confrontation with reality. The poem "Daddy" a fine example. Thus, the reader encounters Plath's anxieties, her strange experiences, pain and passion in an artistic form. It must not be forgotten that she was, not a great intellectual or a philosopher. She had no other material or resources for her poetry except the events, trails, and tribulations, fear and guilt in her own life.

Love and death enveloped her mind so much that she wrote of herself without any inhibition. Thus, even the darkest portions of her private experiences, her emotional tensions, and her psychic disturbances became an essential part of her poetry. She became a confessional poet. It is also well known that eminent poets like Robert Lowell, AnneSexton, and Roethke were leading poets in the genre of confessional poetry.

Death is an oft-repeated theme even in her first collection of poetry and the poems like "The Colossus", "All the Dead Dears" and "Full Fathom Five" (The title being an adaptation from Shakespeare's The Tempest.) "The Colossus" is her first significant outpour about the premature death of her father, the brilliant entomologist, Otto Plath. Plath placed her married and parental life in relation to the memories of her long dead rather: "I was seven, I knew nothing. / The world occurred. You had one leg and a Prussian mind" (Little Fugue", Arielp.54)and she further etches the figure of her father thus:

I remember a blue eye,
A briefcase of tangerines.
This was a man, then!
Death opened, like a black tree, blackly.
I survive the while,
Arranging my morning." (Little Fugue", Arielp.54)

This is the picture of a blue-eyed father with a Prussian disciplined cast of mind.

In "Daddy", "Lady Lazarus" and other poems, the theme of death is predominant. The poet begins on a sorry note by reminding the father how his death has left her a physical and moral orphan:

You do not do, you do not do
Any more, black shoe
In which I have lived like a foot
For thirty years, poor and white,
Barely daring to breathe or Achoo.("Daddy", Arielp.54)

She confesses that her father's death has adversely affected her life. She expresses her pitiable condition in a manner that the reader is touched by her heart-rending expression:

I was ten when they buried you.

At twenty I tried to die
And get back, back, back to you.
I thought even the bones would do.
But they pulled me out of the sack,
And they stuck me together with glue
And then I knew what to do.
I made a model of you,
A man in black with a Meinkampf look
And a love of the rack and the screw
And I said I do, I do,
So daddy I'm finally through. (“Daddy”, Arielp.55-56)

A poem "Fever 103°" begins with the word "Pure." It indicates the personal cathartic process for the poet. She was terribly ill and thus her illness had become intolerable. Perhaps she is searching purity in death.

The following lines are perhaps an echo or Robert Lowell's poem in Life Studies, entitled. "The woe that is in marriage" Under a very high fever, she cries out:

Darling, all night
I have been flickering, Off, On, Off', On.
The sheets grow heavy as a lecher's kiss.
Three days. Three nights.
Lemon water, chicken
Water, water make me retch.
I am too pure for you or anyone
Your body Hurts me as the world hurts God.("Fever 103°", Arielp.59)

These lines point to speaker's own suicidal impulse and death-wish. The speaker appears to be in a state of extreme boredom and quiet desperation. Perhaps the absorption in marital sex in the high state of fever is rejected as a loveless activity that would make the bed sheets "grow as heavy as a lechers (sinner's) kiss." Loveless lovemaking in marriage might be a worse option than adultery as an affirmation of life in a death-shocked environment where the lover's bodies are grieved in sweat as they make love.

Plath's Crossing the Water: Transitional Poems came into being somewhere between 1960 and 61. In this collection some of the poems like "Face-Lift" and "I am vertical" are marked for their autobiographical tone and lyrical beauty. The theme of love has been dealt seriously in the poem"Love Letter".

Not easy to state the change you made
If I'm alive now, then I was dead

Though, like a stone, unbothered by it

Staying put according to habit."("Ariel", Arielp.36)

Unfortunately, this powerful element of love leaves the poet in great anger and despair. She ultimately realizes the truth of life. Earlier, time and again, she has given candid expression, amounting to confession to all round darkness, sorrow and the burden of her life. The poet bursts out in "Wuthering Heights":

I can feel it trying

To funnel my heat away

If I pay the roots of the heather

Too close attention, they will invite me

To whiten my bones among them.("Wuthering Heights", Crossing the Water p.11)

The poem "Crossing the Water" and "Winter Trees" present a touching picture of Plath, a woman who has suffered a lot in her short life. She is a woman whose heart is full of love and craves earnestly for relationship. But the sad destiny does not allow it and her love is not reciprocated. Ultimately she is thrown in a pitiable despair. Though the poems in this collection lack the emotional intensity and candidness of her classics like "Lady Lazarus", "Daddy" and "Ariel" yet the poems appear to be outwardly calm and tranquil. There is an emotional storm beneath the calm surface.

Plath's confessional mode continues even in her last collection of poems entitled Winter Trees. In the poem "a Fatherless Son", she considers the miserable plight of a fatherless son as that of her own son Nicholas who becomes fatherless after her separation from Ted Hughes. Thus, the fatherless son and the childless woman become object of compassion and sympathy. She candidly confesses her empathy with the fatherless son:

But right now you are dumb,

And I love your stupidity

The blind mirror of it. I look in

And find no face but my own, and you think that's funny."(Winter Treesp.33)

Thus, the experiences of her own life have been portrayed in her poetry very truthfully but she was always conscious of the fact that poetry is the aesthetic product and not like life, which is chaotic or disorganized. Her chaotic experiences have been given a form, a shape. Her poetry is mirror in which the reader can experience the real agonizing thrills of her life. She herself admits this fact. Mark the following lines from her poem "Mirror":

I am silver and exact. I have no preconceptions

Whatever I see I swallow immediately

Just as it is, unmisted by love or dislike

I am not cruel, only truthful.("Mirror", Crossing the Water p.52

In Sylvia Plath's own life, her Letters Home present her married and poetic life in the most

glowing and flattering terms, disguising the actual fact of poet's own acute suffering, in her last years, owing to her marriage floundering on the rocks, her repeated hospitalization and her resorting to drugs to control pain. Her letters written to her mother between 1950 and 1963, show optimism and happiness where as in fact she wore a false mask, of cheerful hopefulness, Sylvia Platte who had earlier made suicide attempts in the 1950's had herself suffered in the grip of "objective" psychiatrists, just as had Virginia Wolf in the first decades of the 20th century or Septimus Smith at the hands of Pompus and objective sounding Sir William Bradshaw in Mrs. Dalloway. Virginia Woolf and Sylvia Plath appear two soul-sisters. The last part of the poem gives Mirror its specific position. Though it appears to of a Cadaver Room" be objective, it appears to conceal within it hidden deaths, emotions of rage and danger.

Sylvia Plath confesses her feminine weaknesses, her experiences with different men, her sensuousness, her sensuality, her betrayal, her guilt, her fear through aesthetically constructed sound poems. There are words, which are generally absent in poetic creations, but in Plath they are meant to communicate the real thrill of a particular experience. The fallowing lines from her poem "Two Sisters of Persephone"49 communicate the literal details of the sex act. The artist in her transforms these details into rich sensuous imagery:

Lulled
Near a bed of poppies,
She sees how their red silks flare
Of petalled blood
Burns open to sun's blade. (“Two Sisters of Persephere”, The Colossus p.63)

The poem is packed with the suggestion of sex-act through the phrases like "bed of poppies", "red silk flare", "petalled blood" and "sun blade." It is the recreation of the candid experience through rich imagery. Robert Lowell provided Sylvia Plath with just the kind of poetry she was looking for. Life Studies sets the example for her:

I have been excited by what I feel is the new break-through into very serious, emotional experience which I feel has been partly taboo. Robert Lowell's poems about his experience in a mental hospital, for example interests me very much. These peculiar, private taboo subjects. I feel have been explored in recent American poetry - I think particularly of Anne Sexton, who writes about her experience as a mother who had a nervous breakdown, as an extremely emotional and feeling woman. And her poems are wonderfully craftsman-like poems and yet they have a kind of emotional and psychological depth, which I think is something quite new and exciting. (Peter, p. 167-168)

Like her predecessors Robert Lowell and Anne Sexton, Sylvia Plath's poetry communicates her psychic burden. But at the same time she is quite careful about the craft of conveying the experience. Plath's tragic death went very deep into the hearts and minds of her contemporary readers. She was called "a darling of her culture". A gifted writer, she was, but she had on several occasions tried to

commit suicide may be because of the family frustration and differences with her husband Ted Hughes. There is a beautiful fusion, in her last poems, of "pathology" and clairvoyance". Just as the seismograph records even the slightest tremor, Plath's poetry communicates the tremors of her experience. She takes care of the final form of the experience thus transmuted. It will not be improper quote Helen McNeil:

It is important to remember that not all reading of poetry is directed towards aesthetic or formal understanding, indeed with a poet like Plath, understanding may be the byproduct of an encounter with text as personality.(Helen Vendeder p. 483)

Confessional poetry is a `psychic striptease', a close relationship between suffering and poetry. The poet lays bare her soul in a form of a poetic composition. It has its own artistic pleasure. Anne Sexton rightly remarks: "It is very embarrassing for someone to expose their body to you. You don't learn anything from it. But if they expose their soul you learn something. That is true of great writers."(Anne Sexton, p. 7) The voice in Plath's poetry reflects a range of oppressive and violent experiences(Smith, 320). When she failed to find her self-definition she committed suicide for getting the ultimate freedom. She tried to draw the image of her mental state and misery through her confessional poems

WORKS CITED :-

1. Sylvia Plath, The Colossus London: William Heinemann, 1960; New York Alfred A. Knopf, 1962; London: Faber and Faber. 1967.
2. Sylvia Plath, Ariel London: Faber and Faber, 1965; New York: Harper and Row, 1966.
3. Sylvia Plath,Crossing the Water. London: Faber and Faber,1971; New York: Harper and Row, 1971.
4. Sylvia Plath,Winter Trees. London: Faber and Faber, 1971; New York; Harper and Row, 1972.
5. "Sylvia Plath", The Poet Speaks, Ed, Peter Orr, New York Bornes and Noble, 1966.
6. Voices and Visions (The Poet in America) Ed. Helen Vendeler, Tata McGraw Hill Publishing House New Delhi, 1987.
7. Anne Sexton, "Oh, I was very sick" New York 7'ihnes (Nov. 1, 1969)

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 59-65

भारत-भारती में वर्णित भारतीय संस्कृति का मनोरम चित्रण

डॉ. उन्मेष मिश्र
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, वैश्य महाविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

भारत देश की महिमा उसकी उच्च, उच्तम, श्रेष्ठ, उन्नत संस्कृति की देन है। धरा की प्राचीनतम संस्कृति जो संपूर्ण विश्व की मार्गदर्शक रही है, उसका गुणगान करना सहज नहीं है। भारतीय संस्कृति जितनी प्राचीन है, उतनी सहज भी है। इसे समझना नामुमकिन नहीं है, यद्यपि इसकी गहराई को जानने के लिए गहरे उतरना पड़ता है अर्थात जितना ज्यादा इसके करीब रहा जाए उतना अधिक जानने की इच्छा होती है, जितनी तीव्र इच्छा इसको जानने की होती है उतना ही ज्यादा इसे समझा जा सकता है, जितना इसे समझा जाता है, उतनी और जानने की इच्छा होती जाती है। भारतीय संस्कृति की महानता इसके मानवतावादी होने में है यह भौतिकतावादी दृष्टिकोण की अपेक्षा मानवतावादी, अध्यात्मवादी, समाजवादी दृष्टिकोण पर आधारित है, भारतीय संस्कृति 'सर्वजन सुखायरू सर्वजन हितायश पर आधारित है, जहाँ दूसरे के पुरुष को अपना समझा जाता है और अपने सुख को सब के साथ बाँट कर आनंद लिया जाता है। हर स्थिति में इंसानियत व मानवता की भावना को सहेजा जाता है। जिस देश में शत्रु से भी सुद्धभूमि के अलावा प्रत्येक स्थान पर मित्रों की भांति व्यव्हार किया जाता है। साहसी होने के बावजूद शक्ति का प्रयोग किसी को पीड़ा नहीं अपितु सुख देने के लिए ही शक्ति का प्रयोग किया जाता है। इन्द्र के सामान सुख–वैभव मध्य रह कर भी आध्यात्मिक उन्नति को ज्यादा महत्व दिया जाता है। जिस धरती का श्रृंगार छह ऋतुएं करती है, जिस पर 24 अवतार हुए, जो महापुरुषों संतो व भक्तों की धरती है, जिसकी माटी ने अगणित देशभक्त, देश पर सर्वस्व न्योछावर करने वाले रणबाँकुरे सपूतों को जन्म दिया है, जिस पर लीलामय कृष्ण में युद्ध भूमि में भी श्गीताश का गान कर दिया। उस भारतवर्ष की संस्कृति की महानता की थाह नापना असंभव सा ही है। हाँ उसकी चर्चा करके स्वयं को महान गुणों से ओत–प्रोत करना सभी की पहुंच में है।

इसकी श्रेष्ठता का गान अनेक साहित्यकारों नें किया है, अपने देश के प्रति भक्ति को देश का गुणगान करके व्यक्त किया है। स्वतंत्रता आंदोलन में क्रान्तिकारियों, देशभक्तों न अनेक कुर्बानीयों दीं, देश की आजादी के लिए अनेक प्रकार के कष्ट सहे वही साहित्यकारों ने अपनी कलम की ताकत से जन–जन में आजादी की भूख भरकर स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़ने का जोश जगाया। य साहित्यकारों ने नहीं देश के गौरवशाली इतिहास से अवगत करा कर देशवासियों को समझाया कि तुम कितने महान हो, अपने आप को निर्बल समझने

की अज्ञानता न करो सभी सशक्त हो और सब कुछ करने के लिए सक्षम हो। वर्तमान स्थिति की चिंता करके बार–बार जन–जन को समझाया, उसमें जोश पैदा किया और प्रत्येक को आजादी उत्सव में चलने और उत्सव मनाने के लिए प्रेरित किया। हिंदी साहित्य में आधिकाल में तो युद्धों व आश्रयदाताओं के गुणों का वर्णन करने में ही साहित्यकारों की रुचि थी। भक्तिकालीन साहित्य भक्तिभावा में ही खोए रहे उन्होंने ईश्वर आधरना करते करते कर्म के करने के प्रति उदासीनता का रवैया बना लिया वही रीतिकालीन साहित्य शृंगारिक भावनाओं से ओत–प्रोत रहा। देश व देशवासियों के प्रति यथार्थ चित्रण और राष्ट्रीयता की भावना का सूत्रपात मुख्य तौर पर भारतेन्दु युग से ही हुआ और आधुनिककालीन साहित्यकारों में अपनी लेखनी की ताकत को स्वतंत्रता आंदोलन में जागरूकता बढ़ाने के लिए लगा दिया अप्रत्यक्ष रूप से साहित्यकारों में आजादी उत्सव में अस्तिकारी भूमिका निभाई।

''जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है।''

(मैथिलीशरण गुप्त, भारत भारती)

''मुझे तोड़ लेना वनमाली ! उस पथ में लेना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जाएं वीर अनेक।।''

(माखनलाल चतुर्वेदी)

भारतेन्दु हरिश्चंद्र से लेकर आधुनिक साहित्यकारों की श्रृंखला में अगणित साहित्यकारों ने राष्ट्रीयता की भावना से ओत प्रोत देश प्रेम से सराबोर रचनाएं लिखकर देशवाक्तियों में देशभक्ति का जज्बा बढ़ाया। द्विवेदी युगीन काव्य धारा के प्रमुख कवि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित भारत–भारती देश भक्ति का पैगाम है इस रचना में गुप्तजी ने अज्ञानता के गहन अंधकार में डूबे हुए भारताओं को उनके गौरवशाली अतीत से अवगत करवा कर यह संदेश दिया है कि संसार में ऐसा कोई काम नहीं है जो उद्यम करने से सिद्ध न हो सके। किसी भी उद्योग व कार्य की सफलता के लिए उत्साह की अति आवश्यकता है। इसी उत्साह को जगाने का कार्य ही साहित्यकार ने किया सभी भारतवासी उमंग व जोश में भरकर स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े।

भारत भारती का मंगल चरण करते हुए गुप्त जी कहते हैं :–

''मानस–भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती –
भगवान! भारतवर्ष में गूंज हमारी भारती।
हे भाद्भावौद्बोधिनी वह भारती हे भगवत!
सीतापते ! सीतापते ! गीतापते ! गीतापते !!।''

संसार के शाश्वत नियम का वर्णन करते हुए गुप्त जी ने कहा है कि उत्तति और अवनति प्रकृति का अखंड नियम है। यह संसार परिवर्तनशील है, निरंतर बदलता रहता है। आज जहाँ रेगिस्तान है वहाँ कभी नदी बहती होगी, जो सूरज सुबह चमकता है वह शाम ढलते दलते छिप जाता है, सुख–दुःख कर्म के अनुसार आते – जाते रहते हैं। जो आज सुखी हूँ वह कल मातम में डूबा होगा। जिसे आज दुःख है वह कल सुख से खिलखिला रहा होगा। कवि अपने देशवासियों को संदेश देना चाहता है कि यधपि देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है, पर तुम्हारा अतीत अत्यंत गौरवशाली रहा है और अब अगर अपनी शक्ति को पहचान लेते होय

अपनी अज्ञानता की नींद से जाग जाओगे तो हुआ अपना वही दैभव पा सकते हो, बदलाय तो संसार का सनातन नियम है :–

''उन्नति तथा अवनति प्रकृति का नियम एक अखंड है,
चढ़ता प्रथम जो व्योम में गिरता वही मार्तंड है।
अतएव अवनीत हो हमारी कह रही उन्नति–कला,
उत्थान ही जिसका नहीं उसका पतन ही क्या भला ?।''

कवि अपने देशवासियों को समझाते हुए कहता है कि जहाँ उद्यान में पतझड़ आती वहाँ बसंत भी लहलहाती है। आज तुम पराधीन हो, तो स्वाधीन भी हो जाओगे। अपनी इस अज्ञानता को दूर करने मात्र की देर है कि हम तो गुलामी के लिए बने हैं, हमारे पास शक्ति को कमी है, शत्रु हम से ज्यादा ताकतवर है, तुम आजाद हो जाओगे हे मेरे प्यारे भारतवासियो ! जरा सोच–विचार करो–

''यह नियम है, उद्यान में पककर गिरे पत्ते जहाँ
प्राथटित हुए पीछे उन्हीं के लहलह पल्लव वहाँ।
पर हाथ इस उद्यान का कुछ दूसरा ही हाल है,
कहें या सूखना, कायापलट या काल है? ।।''

कवि अपने मन की पीड़ा व पीडाभूत दर्द को व्यक्त करना चाहता है, अपने देशवासियों को जागृत करते हुए बार–बार कहता है कि मेरा देश विश्वगुरु की संज्ञा से उपमित देश है। कुदरत का वरदान है। इस देश के वासी देवताओं के समान है, फिर भी देश की ऐसी हालत क्यूं हैं, उन्हें अफसोस होता है कि इस देश को चारों तरफ से दुःख रूपी दावानल जला रहा है। देश को पतन के गर्त में जाते देख कवि हृदय व्याकुल उठता है द्य कवि कहती है कि आज जो भारत की दुर्दशा है उसके लिए हम सब जिम्मेदार हैं, पर हमारी आँखों से बहने वाला पश्चाताप रूपी जल ही देश में जलती हुई आग को बुझा सकता है। पर हमारा देश के प्रति प्रेम खतम हो गया है। हमारे मन से देश प्रेम रुपी गंगा कहीं लुप्त सी हो गई है। अपने देश प्रति समर्पण भावना के स्थान पर निजी स्वार्थ की महिमा अधिक हो गई है। अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए देश से गद्दारी करने वाले नागरिको के ऐतिल लेखक ने धिक्कार कहा है। और शत्रुओं की फूट डालो राज करो नीति का विरोध भी किया है। कवि को दुरूख है कि जब खुद के देशवासी अपनी जड़ों को स्वयं काट रहे हैं, अपने थोड़े से लाभ के लिए शत्रु से गठबंधन करने वाला ही देश के लिए सबसे घातक है, ऐसे व्यक्ति पर बार–बार धिक्कार है –

''दुख–सुख दवानल इसे सब ओर घेर जला रहा,
जिस पर अदृष्टाकाश उल्टा विपद– ब्रज चला रहा।
यद्यपि बुझा सकता हमारा नेत्र–जल इस आग को,
पर धिक् ! हमारे स्वार्थमय सूखे हुए अनुराग को।।''

हम भारतवासियों के पूर्वज बहुत ही महान थे, हर कौशल व गुणों में आचार्य रहे हैं, जिन्होंने देश के समक्ष युद्ध को तुच्छ समझा, देश की बढ़ौतरी के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया, आज हम उनकी संतान यद्यपि होकर अधोगति की ओर अग्रसर है, परन्तु उनकी महानता के चिह्न अब भी हम में मौजूद है। अतः हमें जागृत होकर देश को आजाद करवाने के लिए प्रयास करना चाहिए। कवि कहता है कि हे मेरे देशवासियों तुम

अपने देश के गौरव को महसूस करो और देश को आजाद करने की लिए यथासंभव प्रयास करो!

''यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध है, इसके निवासी आर्य हैं।
विद्या, कला–कौशल्य सबके जो प्रथम आचार्य है।।
सन्तान उनकी आज यद्धपि हम अधोगीते में पड़े।
पर चिह्न उनकी उच्चता के आज भी कुछ हैं खड़े।।''

अपने देश वासियों में जोश भरते हुए कवि कहता है कि हमारा उद्‌भव उच्च व श्रेष्ठ संस्कारों से हुआ है, श्रेष्ठ माता–पिता के संस्कार व लहू हमारी रग–रग में दौड़ रहा है। हमारी धरती का कण कण स्वर्गीय भावों से ओत प्रोत है, जहां स्वाभाविक वैर भाव रखने वाले भी प्रेम–भाईचारे से रहते हैंय उन्होंने कहा कि मृगों से हिल – मिल कर खेलती हुई सिंहनी जिस धरा पर दिखाई दे जाती है, ऐसा हमारा भारत वर्ष है। मानसिक शांति का अद्‌भूत प्रभाव हमारी धरती पर है। कहा जाता है कि महाप्रलय के बाद ब्रह्मा जी ने भारत देश से ही सृष्टि–रचना का आरम्भ किया था। ऐसे महान धरती के वासी होने पर प्रत्येक भारतीय को गर्व करना चाहिए। कवि बार–बार भारत देश की महानती का गायन कर देशवासियों में जोश व उमंग भरता है कि अपने आप को जानों, अपने आप को पहचानो और अपनी कमजोरियों पर काबू पाकर देश को आजाद कराने के लिए स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़ो।

''शुभ शांतिमय शोभ जहां भव–बंधनों को खोलती,
हिल–मिल मृगों से खेल करती सिहनी थी डोलती।
स्वर्गीय भावों से भरे ऋषि होम करते थे जहां,
उन ऋषिगणों से ही हुआ था हमारा उद्‌भव यहां।।''

लोक कल्याण लोक मंगल की भावना सभी भारतीयों का मूल स्वभाव व गुण रहा है। अपने जन का दुःख दूर करने के लिए खुद तकलीफ उठा लेना हमें अच्छा लगता था। कवि ने भारतीयों को संबोधित करते हुए कहा है कि लोक हितैषी के रूप में सभी भारतीयों की पहचान है। जो साहसी व सक्षम है उसे अपने आस–पास में जितने भी जरूरतमंद है, दुःखी व शापित लोग हैय उनका कष्ट दूर करने का यथासंभव प्रयास करना चाहिए। गुप्त जी हर कदम पर भारतीयों को उनके दिव्य गुणों व संस्कारों से अवगत करवा कर देश प्रेम का जज्बा भरना चाहते हैं ताकि वे स्वयं की मानसिक कमजोरी को दूर करके देश को आजाद कराने के लिए तड़फ उठें। सच्चे मानव की यही पहचान है कि वह लोक हितैषी होगा। कहा जाता है कि किसी के दुःख–संकट के समय में यदि सांत्वना व प्रेम के दो मीठे बोल कहे जाएं तो भी तकलीफ कम हो जाती है। यदि भारतीयों को कहना चाहता है कि भारतवासियों की जुबान या वाणी तो बड़े से बड़े कष्ट को दूर करने वाली थी। हमारी वाणी व भाषा तो शांति की राह दिखाने वाली थी। इस धरती पर इतने बड़े–बड़े महापुरुष हुए हैं कि उनके अंदर इतनी सकारात्मक उर्जा निकलती थी कि उनके आलौकिक दर्शन मात्र से सारे कष्ट दूर हो जाते थे। इसी महान् धरती के वासी हम सब भारतीय आज किसी मोह निद्रा के वशीभूत कर के खुद स्वयं को कमजोर व निर्बल मान कर परतंत्रता की बेड़ियों में बंधे हुए हैं। उन पूर्वजों की दिव्यता को याद करके खुद को सबल मानेंगे तभी यह बेड़ियाँ तोड़ पाएंगे :–

''उनके अलौकिक दर्शनों से दूर होता पाप था,

अति पुण्य मिलता था तथा मिटता हृदय का ताप था।
उपदेश उनके शांतिकारक थे निवारक शोक के,
सब लोक उनका भक्त था, वे थे हितैषी लोक के।।''

मानव हृदय पर राज करने और मानवता के लिए मानवीय मूल्यों का पालन करने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने में क्षण भर न लगाने वाले भारतीयों के पतन की चिंता करते कवि कहता है कि मेरे देश को न जाने कौन सा सूखना रोग लग गया है देश के हताहत होने से देश प्रेमी सच्चा हृदय पीड़ा से तड़पता है। कवि के मन में एक प्रश्न है कि जिस देश के ज्ञानमय आलोक से सारी धरती प्रकाशित थी, वह देश जो समस्त संसार का मुकुट है, आज भी मेरा भारत वही है क्या? हे मेरे देश बताओ तो सही तुम्हारी श्री कहाँ चली गई, तुम्हारा वैभव व श्रेष्ठता कहाँ हैं :–

''भारत, कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो !
हे पुण्यभूमि ! कहां गई है वह तुम्हारी श्री कहो ?
अब कमल क्या, जल तक नहीं, सर–मध्य केवल पंक है,
वह राज – राज कुबेर अब हा ! रंक का भी रंक है !
यद्धपि हताहत गात में कुछ सांस अभ भी आ रही,
पर सोच पूर्वपर दशा मुंह से निकलता है यही –
जिसकी अलौकिक कीर्ति से उज्वल हुई सारी मही,
था जो जगत का मुकुट, है क्या हाय ! यह भारत वही?।।''

जब कवि गरिमामय प्राचीन भारत की तुलना वर्तमान भारत से करता है तो वह भौंचक्का सा रह जाता है। देश में फैले दारिर्द्य व भूधमरी का बड़ा ही मार्मिक चित्रण करते हुए कहा है कि देश में गरीबी व भूखमरी से मात्र दस सालों में जितनी मौतें हो गई उतनी पूरे होने विश्व में 100 वर्षों में युद्धों मैं के दौरान ही उसने वाली मौतें भी नहीं थी। युद्ध में 100 वर्षों में जितने लोग मरे उससे लगभग दस गुणा मौतें भारत में भूखमरी से लोग मारे गए थे। किसी देश की दुर्दशा इससे ज्यादा क्या होगी कि जहाँ अन्न के दाने–दाने के लिए चारों तरफ हाहाकार मचा रहे, हर जगह लाखो भिखारी घूमते हुए नजर आते हैं :–

"दुर्भिक्ष मानो देह घर के घूमता सब ओर है,
हा ! अन्न ! हा! हा ! अन्न का रव गूंजता घनघोर है।
सब विश्व में सौ वर्ष में, रण में मरे जितने हरे,
जन चौगुने उनसे यहाँ दस वर्ष में भूखों मरे !
उड़ते प्रभंजन से यथा तप मध्य सूखे पत्र हैं,
लाखों यहाँ भूखे भिखारी घूमते सर्वत्र हैं ।
है एक चिथड़ा ही कमर में और खप्पर हाथ में
नंगे तथा रोते हुए बालक विकल है साथ में।''

देश की दुर्दशा देखकर कवि हृदय रो पड़ता है पर वह अभी भी उम्मीद नहीं छोड़ता है, उसे लगता है कि पूरी तरह खतम होने के नई शुरुआत की जा सकती है, शताब्दियों से देश की दुर्दशा देखकर भी देशवासी

मोह की निद्रा में सोए हुए हैं। वे न जाने किसी अज्ञानता के कारण यह मान बैठे है कि वे हमेशा गुलामी के लिए ही बने हैं। अपने देश के धर्म–दर्शन–मूल्य आदि से जुड़ी सनातन जातियों को कवि कहना चाहता है कि हमारे शील, शुद्धाचार, वैभव को याद करो और उसे पुनः प्राप्त करने के लिए स्वयं को तैयार कर लो कही ऐसा न हो कि भारतीय मोह निद्रा में सोए रहें और अकर्मव्यता इस कद्र हावी हो जाए कि पूर्वज उन्हें देख–देख कर आँसू बहाते रह जाएं :–

"हत भाग्य हिंदू जाति ! तेरा पूर्व– दर्शन है कहाँ ?
वह शील, शुद्धाचार, वैभव देख, अब क्या है यहाँ ?
क्या जान पड़ती वह कथा अब स्वप्न की सी है नहीं?
हम हों वहीं, पर पूर्व– दर्शन दृष्टि आते हैं। कहीं?
बीती अनेक शताब्दियों पर हाय ! तूं जागी नहींय
वह कुम्भकर्णी नींद तूने तनिक भी त्यागी नहीं।
देखें कहीं पूर्वज हमारे स्वर्ग से आकर हमें –
असू बहावे शोक से, इस वेश में पाकर हमें!''

अपने देशवासियों को जगाते हुए गुप्त जी कहते हैं कि तुम अपने पूर्वजों व पूर्वजों द्वारा देश के लिए किए गए सद्कार्यों को याद कर लो, उन् गुणों को हृदयों में धारण करके अपने हृदय को कमजोर बनाने वाले भलो का परित्याग करके अपने समृद्ध स्वभाव अपनी दिव्य संस्कृति को याद करके देश को आजाद करवाने के लिए खड़े हो जाओ। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि कौन कितना योगदान देता है। अपितु यह महत्वपूर्ण है कि यौन कितने मान से अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तैयार है। अपने जीवन में अपने पूर्वजों के दिव्य संस्थारों को शामिल करना और उसी के अनुसार आचरख ही जीत की तरफ कदम बढ़ाने का पहला चरण हैं :–

"निज पूर्वजों के सद्गुणों को यत्न से मन में घरों,
सब आत्म– परिभव–भाव तज निज रूप का चिन्तन करो।
निज पूर्वजों के सद्गुणों का गर्व जो रखती नहीं,
वह जाति जीवित जातियों में नहीं सकती कहीं।।''

अंग्रेजों की 'फूट डालो राजकरो' नीति से भारतीयों को सजग रहने व आपनी द्वैष रूपी जहर को दूर करने के लिए कवि हृदय बार–बार देशवासियों को जागृत करके कहता है कि :–

"विष–पूर्ण ईर्ष्या–द्वेप पहले शीघ्रता से छोड़ दो,
घर फूंकने वाली फुटैली फुट का सिर फोड़ दो।
मालिन्य से मुंह मोड़कर मंद–मोह के पद तोड़ दो,
टूटे हुए वे प्रेम–बन्धन फिर परस्पर जोड़ दो।।''

पुनः भारतीयों में स्वतंत्रता पाने के लिए जोश भरते हुए कवि कहता है कि शत्रु पक्ष में गिने चुने लोग है और तुम भारतीय पूरे तीस करोड़ हो तुम सभी एकता के सूत्र में बंध जाओ तो तुम्हारी ताकत से कोई भी लोहा नहीं ले सकता :–

''है ज्ञात क्या तुमको नहीं, तुम लोग तीस करोड़ हो,

यदि ऐक्य हो तो फिर तुम्हारा कौन जग में जोड़ हो?
उत्साह–जल से सींचकर हित का अखाड़ा गोड़ दो,
गर्दन अमित्र अधः, पतन की ताल ठोंक मरोड़ दो।।''

निष्कर्ष :– यह कहा जा सकता है कि देश की आजादी के आंदोलन में जहाँ देशभक्तों' में अपना बलिदान देकर सहयोग किया, वही साहित्यकारों ने अपनी लेखनी की ताकत से देशवासियों में देशभक्ति का जज्बा जगामार महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आधुनिककालीन गद्य व पद्म दोनों प्रकार की स्वताएं देश प्रेम की भावना से ओत प्रेत है। फिर मैथिलीशरण गुप्त को तो राष्ट्रवादी कवि होने का सम्मान प्राप्त है। भारत–भारती उनकी श्रेष्ठतम कृतियों में से एक श्रेष्ठ रचना है। देश के गरिमामय अतीत से भारतीयों को अवगत करवाकर मोह निद्रा भंग करने का प्रयास किया है और वर्तमान भारत की दुर्दशा पर हृदय के उदगार प्रकट करते हुए क्षोम भी प्रकट किया है। साथ ही भारतीयों में देश की आजादी की भूख जगाने व जोश भरने के लिए जोशीले शब्दों में आह्वान भी किया है। उन्होंने देशवासियों को बताया कि प्रभु भी उसी का साथ देते हैं जो खुद का साथ देता है। अकर्मण्यता से आजादी मिलना संभव नहीं है। जब भगवान में अपनी सर्वोत्तम कृति मानव के रूप में विश्व भर में उत्तम स्थान भारतवर्ष में जन्म दे दिया है तो तुम अपनी महानता की कद्र करना सीखो, अपनी शक्ति को पहचानों और देश को आजाद करवाने के लिए कमर कसलो–ईश्वर का साथ तुम्हे तभी मिलेगा जब तुम खुद हिम्मत जुटा कर खड़े हो जाओगे– 'हिम्मते बंदा तो हिम्मते खुदा' की भावना जगाते हुए कवि ने कहा है :–

"अपने सहायक आप हो, होगा सहायक प्रभु तभी,
बस चाहने से ही किसीको, सुख नहीं मिलता कभी।
कर, पद, हृदय, दृग, कर्ण तुमको इश ने सब कुछ दिया,
हँ कौन ऐसा काम जो तुमसे न जा सकता किया?''

जय हिंद जय भारत!

संदर्भ सूत्र :–

1. लेखक मैथिलीशरण गुप्त, भारत भारती, साहित्य सदन प्रकाशन, चिरगांव (झाँसी)– 284301, दशम संस्करण–1986, पृ – 09
2. वही, पृ 10
3. –वही–
4. वही, पृ. 11
5. वही, पृ. 12
6. –वही–
7. वही, पृ. 13
8. वही, पृ. 81
9. वही, पृ. 83
10. वही, पृ. 141
11. वही, पृ. 142
12. वही, पृ. 143
13. वही, पृ. 144
14. वही, पृ. 145
15. https://www-hindi&kavita.com/HindiBharatBhartiGupt.php, year-2022
16. https://www.amarujala.com/kavya/kavya&charcha/makhan&lal&chaturvedi&poem&pushp&ki&abhilasha year-2022

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 66-71

वैदिक कालीन शिक्षा का वर्तमान शिक्षा प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन की आवश्यकता

अरूण पाण्डेय, शोधार्थी, शिक्षा
डॉ. डी. एस. सिंह बघेल, आचार्य
अ.प्र. सिह. वि. वि. रीवा (म.प्र.)

सारांश :-

भारत देश की अति प्राचीन धारणा है कि ''सा विधा या विमुक्तये'' अर्थात विद्या वह है जिससे मुक्ति प्राप्त हो । ''ज्ञानं तृतीयं मनुष्य नेत्रं'' ज्ञान चक्षु खुल जाते है, उसे आध्यात्मिक तथा अलौकिक प्रकाश मिलता है जो जीवन का लक्ष्य है। वैदिक शिक्षा के आदर्शों अर्थात् श्रद्धा, भक्ति, सेवा, आदर, आत्म–अनुशासन, सादा जीवन उच्च विचार, ब्रह्मचर्य, वैदिक बल आदि का अनुसरण करके, वर्तमान समाज की आवश्यकता के अनुसार शिक्षा व्यवस्था की जा सकती है।

पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति के अन्धानुकरण में हम अपने पुरातन आदर्शों को भूलते जा रहे हैं, शिक्षा हमारे जीवन से दूर हटती जा रही है।

दिग्भ्रान्त युवकों और युवतियों की अनुशासनहीनता, बड़े–बड़े शहरों की कुकृत्यों से भरी रातों को बेरूह मान्यताएं, तथ्यविहीन सिनेमा, तस्करी और कालाबाजारी आधुनिकता के पर्याय बन गये हैं। परिणामस्वरूप सर्वत्र घुटन, असंतुलन, कुण्ठा, बिखराव और बेकारी का प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है। यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि वैज्ञानिक प्रगति धर्म पर अवस्थित न होने के कारण मानव के लिये वरदान न होकर अभिशाप बन गयी है।

अतः वैदिक शिक्षा प्रणाली के आदर्श तत्वों को वर्तमान शिक्षा में समावेश करके इन समस्याओं का समाधान संभव है। जीवन के वास्तविक मूल्यों, गुणों व आदर्शों का अनुसरण करके हमारे छात्रगण भारतवर्ष की समृद्धि तथा वैभव का पुनरोद्धार कर सकेंगें।

इस सन्दर्भ में महात्म गांधी का कथन प्रसंगानुकूल है जैसे – ''वैज्ञानिक प्रगति के पूर्व धार्मिक एवं नैतिक प्रगति नितान्त आवश्यक है अन्यथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक प्रगति खतरे में पड़ जायेगी।

1. भटनागर, सुरेश एवं सक्सेना, अनामिका आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, आर.लाल. बुक डिपो मेरठ दशम संस्करण : 2001
2. ''डा0 दुर्गादत्त पाण्डेय – धर्म दर्शन का सर्वेक्षण

सामाजिक विखराव का मूल कारण है – शाश्वत धार्मिक मूल्यों की उपेक्षा। आज मानवता के अस्तित्व की

रक्षा धार्मिक उद्देश्यों में खोजनी होगी। अन्यथा वह प्रकाश शून्य–ज्ञान–बोझ से कुचल जायेगी। विश्व के ऋषियों और मनीषियों ने अपने गहन तार्किक चिंतन एवं आलोचनात्मक–सृजनात्मक विचारण द्वारा जो नवीन जीवन दृष्टि विकसित की है, वह निश्चय ही शांति, सद्भाव, त्याग, परोपकार, सहानुभूति और करूणा पर आधारित थी। पूर्ण मनः शान्ति और चारित्रिक उत्थान के लिये धर्म एवं नैतिक मूल्य एक आवश्यक शर्त है।

वैदिक शिक्षा में मनुष्य के भौतिक और अध्यात्मिक जीवन में इतना उच्चकोटि का समनवय किया गया है कि वह आज भी सर्वोत्कृष्ट दर्शन माना जाता है और जीवन को सही रास्ता दिखाने वाला दर्शन माना जाता है। ज्ञान योग एवं कर्मयोग में जो समन्वय वैदिक दर्शन में किया गया है वह आगे चलकर उसी की पुर्नस्थापना भगवद्गीता में देखने को मिलती है। यही नहीं बल्कि भारतीय षट्दर्शनों–(न्यायदर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्यदर्शन, योग दर्शन वेदांश और मीमांसा) का विकास भी वैदिक दर्शन के मूल सिद्धांतों के आधार पर ही हुआ है।''

शिक्षा दर्शन के रूप में वैदिक शिक्षा का योगदान नींव के पत्थरों के समान है। वैदिक दर्शन में शिक्षा को मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया माना गया है और उसे जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया मानी गई है।

वैदिक कालीन सभ्यता का आधार सादा जीवन और उच्च विचार था। मिस्र और असीरिया की सभ्यताओं में भौतिक उन्नति की सूचक जो विशाल इमारते हैं उनका यहां अभाव है। लेकिन शिक्षा और आध्यात्मिक उन्नति संबंधी प्रमाणों की कमी नहीं है। जीवन सीधा सादा था, किन्तु विचार ऊँचे और परात्पर तक जाने वाले एवं नित्य वस्तुओं का चिंतन करने वाले थे। ऋग्वेद के कुछ मंत्र जैसे–गायत्री मंत्र (ऋग्वेद के तीसरे मण्डल) ज्ञान के उच्चतम छोर का स्पर्श करते हैं और वर्तमान समय में भी मानवीय आत्मा को उनसे शिक्षा मूलक प्रेरणा मिलती है। कोई हिन्दू चाहे वह कितना ही अर्वाचीन हो, इन मंत्रों में एक शब्द, स्वर या मात्रा का परिवर्तन भी स्वीकार नहीं करेगा।

प्रत्येक ऋषि उन मंत्रों का द्रष्टा था, जिनका उसने अपने तप और ध्यान की शक्ति से साक्षात्कार किया था। वे मंत्र उस ऋषि के पुत्रों और शिष्यों अर्थात् उसके कुल में परम्परागत मूल्यों के आधार पर सुरक्षित रहते थे। इस प्रकार प्रत्येक ऋषि–कुल एक वैदिक विद्यालय के समान था। जहाँ उनके मंत्रों का संग्रह सुरक्षित रहता था, और पिता–पुत्र अथवा गुरू–शिष्य द्वारा आगे चलता रहता था। इन समस्त ऋषि–कुलों या वैदिक विद्यागृहों के कार्य के परिणामस्वरूप मंत्रों की प्रभूत सामग्री व्यापक राष्ट्रीय संग्रह के रूप में संचित हो गई। जिससे वर्तमान एवं शाश्वत जैसे मूल्य परक शिक्षा का विकास बना हुआ है।

वैदिक सूक्तों के सबसे प्राचीन अंश भी मानव–जाति के अर्वाचीन इतिहास के अंग है। शिक्षा का मौलिक ढंग तप था और तप आत्मदर्शन की युक्ति थी। तप के प्रभाव ही दैवी–प्रेरणा–युक्त–मुनि, विप्र और मनीषी जैसे – विद्वानों का जन्म हुआ।

वैदिक मंत्रों में उस प्रकार के मानसिक चिंतन और ध्यान का उल्लेख मिलता है, जिसके परिणामस्वरूप ज्ञान का प्रकाश की पूर्णता मिलती है और जिसे प्राप्त कर लेने पर शिष्य स्वयं प्रवक्ता आचार्य बनने के योग्य होता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार संवत्सर तक चुपचाप पड़े हुये मण्डुक पर्जन्य मेघों के आने पर बोलने लगते हैं।

वैदिक काल में शिक्षा पाठशालाओं में नहीं बल्कि ऋषि आश्रम में दी जाती थी। प्रसिद्ध विद्वान ऋषियों

और गुरूओं के पास शिक्षा प्राप्ति के लिये दूर–दूर से विद्यार्थी आते जाते थे। गुरू हर प्रकार से शिष्य को सत्य का ज्ञान कराता और साथ ही उसके ज्ञान की वृद्धि कराता था। क्योंकि वह उसके पापों का उत्तरदायी माना जाता था। गुरू के आश्रम में शिष्य के वस्त्र, भोजन व निवास की मुफ्त व्यवस्था होती थी तथा शिक्षा मौखिक रूप से चलता था। स्थायी गुरूओं के अतिरिक्त कुछ भ्रमणशील गुरू भी होते थे। जिन्हें 'चरक' कहा जाता था। ऐसे गुरू विभिन्न प्रदेशों में भ्रमण करते और जनसाधारण में ज्ञान–विज्ञान का प्रसार वाद–विवाद तथा व्याख्यान द्वारा करते थे।

चिकित्सा शास्त्र की अपेक्षा ज्योतिष–शास्त्र के ज्ञान में अत्यधिक वृद्धि हुई थी। तिथियों एवं चन्द्रमा की कलाओं का यथेष्ट और स्पष्ट ज्ञान होता था। ज्योतिषियों ने सूर्य के मार्ग को सत्ताईस भागों में विभक्त कर दिया था और इसके अतिरिक्त वैदिक काल में धातु विज्ञान की भी शिक्षा दी जाती थी।

मनुष्य एक प्रगतिशील प्राणी है, वह सदैव आगे बढ़ना चाहता है, ऊँचा उठना चाहता है। वह अपने जीवन में जो कुछ प्राप्त करना चाहता है उसकी आदर्श स्थिति को उद्देश्य कहते हैं। भारत एक लोकतन्त्रात्मक देश है और लोकतंत्र में जनता को नियमों का पालन करने के साथ–साथ स्वतंत्र चिंतन और स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर दिये जाते हैं।

वर्तमान युग में देश की शिक्ष का यह अनिवार्य उद्देश्य है कि, इसके द्वारा राष्ट्र अपनी मान्यताओं के अनुसार नागरिकों का निर्माण करता है, वह उन्हें अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का ज्ञान कराता है और तदनुकूल व्यवहार करने की ओर प्रवृत्त करता है। इससे नागरिकों में राष्ट्र के प्रति कर्तव्य बाध होता है। वे उसके उत्थान के लिये क्रियाशील होते हैं शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। शिक्षा का उद्देश्य मानव को समग्र जीवन को तैयार करना होना चाहिए।

किसी समाज की शिक्षा के उद्देश्य मूल रूप से उसके दर्शन, उसके अपने स्वरूप एवं संस्कृति, उसके राज्य तंत्र और अर्थतंत्र पर निर्भर करते हैं। वर्तमान में उनके निर्धारण में मनोविज्ञान एवं विज्ञान की भूमिका होती है और चूंकि इन सबमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है इसलिये समाज विशेष की शिक्षा के उद्देश्यों के स्वरूप में परिवर्तन होता रहा है। जिस समय किसी समाज का जो दर्शन होता है, उसका अपना स्वरूप और उसकी अपनी जो संस्कृति होती है, उसका जो शासन तंत्र होता है और उसका जो अर्थतंत्र होता है और उसके शिक्षा का बीजकों को मनोविज्ञान एवं विज्ञान का जितना ज्ञान होता है उसी के अनुकूल उसकी शिक्षा के उद्देश्य होते हैं। जैसे –

वैदिक शिक्षा में, वैदिक दर्शन का वर्चस्व था, समाज में वर्ण व्यवस्था थी। संस्कृति धर्म प्रधान थी। वैदिक काल में छोटे–छोटे राज्य जैसे कुरू, पंचाल उस समय के राष्ट्र थे। शिक्षा की व्यवस्था करना इनका अपना उत्तरदायित्व नहीं था, देश में कृषि और कुटीर, उद्योग प्रधान अर्थव्यवस्था हमारे ऋषि मानव, मनोविज्ञान से परिचित थे, तब वर्तमान के इस भौतिक विज्ञान का विकास नहीं हुआ था। वैदिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मानव मुक्ति था। और इसके लिये ईश्वर भक्ति पर सर्वाधिक बल दिया गया।

वैदिक काल के बाद हमारे देश के समाज और उसकी संस्कृति में निरन्तर परिवर्तन होता रहा, यहां के शासन तंत्र एवं अर्थ तंत्र में भी परिवर्तन होता रहा है। परिणामस्वरूप इसकी शिक्षा के उद्देश्य एवं स्वरूप में परिवर्तन होता रहा है। अतः इस परिस्थिति में वैदिक शिक्षा की आवश्यकता है। जहाँ पर भौतिक विकास के

साथ–साथ आध्यात्मिक विकास पर अधिक बल दिया गया था। जिससे मानव जाति को शांति, सद्भाव एवं पारस्परिक सहयोग की अनुभूति का आभास होता था।

आधुनिक शिक्षा का प्रारंभ यूरोपीय जातियों के आगमन से माना जाता है, आधुनिक शिक्षा प्रणाली को अंग्रेजी या पश्चिमी शिक्षा के नाम से अभिहित किया जाता है। किन्तु आगे चलकर अंग्रेजी के अतिरिक्त आधुनिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी, भारतीय समाज, दर्शन एवं विधि भाषाओं के अध्ययन की सुविधा उपलब्ध होने से इसे आधुनिक शिक्षा का नाम दिया गया जो अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। कहा भी जाता है कि– आधुनिक शिक्षा का प्रारंभ कर अंग्रेज वैज्ञानिक और समाज शास्त्रीय ज्ञान के क्षेत्र में भारत को आधुनिक पाश्चात्य उपलब्धियों के सम्पर्क मेकं ले आए।

1813 ई0 के पश्चात बंगाल में भारतीयों का अंग्रेजी शिक्षा की मांग करने में मुख्य उद्देश्य लौकिक क्षेत्र में अज्ञानता को दूर करने तथ प्रशासन कार्य में भाग लेने योग्य बनना था। ईसाई मिशनरी भी अंग्रेजी शिक्षा को लौकिक ज्ञान तथा उदारमान शिक्षा के विकास में सहायक समझते थे। साथ ही उनका विचार यह भी था कि इस ज्ञान से भारतीय विद्यार्थी अपने पुराने धर्मों के अंधविश्वासी होने पर सहज यकीन कर सकेंगे और ईसाई धर्म को सुविधापूर्वक ग्रहण कर लेंगें। लार्ड मैकाले ने स्वयं अपने पिता को पत्र लिखा था कि – ''यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि हमारी शिक्षा योजनाओं पर कार्य किया गया तो तीस वर्ष (30 वर्ष) पश्चात बंगाल के सम्मानित वर्गों में एक भी मूर्तिपूजक नहीं बचेगा।'' आरम्भ में अंग्रेजी शिक्षा के प्रति इसलिये भी आकर्षण था कि इससे कम्पनी के अधीन नौकरी सरलता से मिल सकती थी। विलियम वैदिक ने प्रशासनिक काम करने की दृष्टि से कुछ निम्न पदों पर भारतीय को नियुक्त करना प्रारंभ किया।

लार्ड हार्डिंग के समय (1844) में निर्णय लिया गया कि अंग्रेजी माध्यम से नवीन शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को सरकारी नौकरी प्रदान की जायेगी। इस नीति के परिणामस्वरूप अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में जनमत और अधिक बढ़ा।

ब्रिटिश सरकार ने विजित भू–भाग के लिये व्यापक प्रशासन तंत्र की स्थापना की। इस वृहद राजनीतिक प्रशासकीय यंत्र के संचालन के लिये शिक्षित व्यक्तियों की बड़ी तादात में जरूरत थी। इतने सारे शिक्षित लोग सीधे ब्रिटेन से तो आ नहीं सकते थे। नए प्रशासन के लिये और सुयोग्य व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने के लिये भारत में स्कूल एवं कालेज खोलने आवश्यक हो गये। महत्वपूर्ण ओहदों पर अंग्रेजों की और अधीनस्थ पदों पर शिक्षित भारतीयों की बहाली हुई। भारत में भी कुछ उद्योगों को प्रारंभ किया गया। भारत के साथ व्यापार और विकसित हो रहे नये उद्योगों के सफलतपूर्वक संचालन हेतु टेक्नीशियनों, एजेंटों, मैनेजरों की आवश्यकता थी। जो अंग्रेजी भाषा जानते हो। इस प्रकार नवीन उद्योगों में नौकरी, विविध व्यवसायों, कम्पनियों में कार्य मिलने के अवसरों के कारण आधुनिक शिक्षा को प्रोत्साहन मिला।

अंग्रेजी शिक्षा से लोगों में वकील, डाक्टर, शिक्षक आदि बन जाने का आकर्षण था। यह तथ्य भी सामने आया कि भारतीय निश्चित रूप से अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में थे। (जैसे – राजाराम मोहनराय) क्योंकि वे अंग्रेजी शिक्षा के लिये पैसे खर्च करने के लिये तैयार थे। लेकिन संस्कृत और अरबी पढ़ने के लिये छात्रवृत्ति की जरूरत पड़ती थी।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली मैकाले की देन है। लार्ड मैकाले ने कहा था कि ''मेरा उद्देश्य इस शिक्षा से केवल

यही है कि भारत में अधिक से अधिक लिपिक पैदा हो।'' जिससे यह देश बहुत समय तक गुलाम बना रहे। इस संकुचित शिक्षा व्यवस्था में नवीन विषयों का समावेश आवश्यक था। वर्तमान समय में आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के कारण या अंग्रेजी शिक्षा के कारण छात्रों में शिक्षा के प्रति उदासीनता, उदण्डता, अनुशासनहीनता, अनैतिकता, चरित्र पतन, माता–पिता एवं गुरू के प्रति श्रद्धाहीनता आदि दोष इसी शिक्षा पद्धति के कारण हुआ है।

वैदिक शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थी 25 वर्ष की आयु तक निरन्तर आचार्य के सानिध्य, सम्पर्क एवं निर्देशन में रहकर शिक्षा ग्रहण करता था। उसके प्रत्येक क्षण की उपयोगिता निर्धारित थी। तत्कालीन शिक्षण पद्धति के अन्तर्गत निरन्तर अनुकरण, श्रवण, मनन, चिंतन एवं निदिध्यासन से पाठ्य विषयों को प्रत्यक्ष प्राप्त कर लेता था, लेकिन वर्तमान शिक्षण पद्धति में जिन नवाचारों–दूरदर्शन, पत्राचार, इन्सेट तथा कम्प्यूटर, इण्टरनेट, शिक्षण द्वारा प्रत्यक्ष सम्पर्क, स्नेह, निर्देशन, परामर्श, नियंत्रण की कोई व्यवस्था न होने के कारण यह सम्पूर्ण शिक्षण न होकर एकांगी, विकलांग और स्वयं में अपूर्ण तक सीमित रह जाती है। इसमें सम्प्रेषण का कार्य एकपक्षीय होता है। प्रश्न के उत्तर की अपेक्षा इसमें संयोजन नहीं है, मात्र छात्रों के भीड़ को विभाजित तथा नियंत्रित करने का एक यांत्रिक प्रयास है। इस शिक्षण विधि व व्यवस्था से कोई उचित परिणाम की अपेक्षा नहीं की जा सकती, मात्र प्रवेश और परीक्षा का कार्य किया जा सकता है। नैतिक मूल्यों, परम्परागत मूल्यों एवं सत्य निष्ठा का अस्तित्व ही समाप्त सा लगता वर्तमान शिक्षण पद्धति में अर्थात् वर्तमान परिस्थिति में वैदिक शिक्षा जैसे परक मूल्यों का होना आवश्यक है।

वैदिक कालीन शिक्षण पद्धति मात्र कक्षागत अवधि तक की सीमित नहीं थी। बल्कि प्रातःकालीन जागरण से और रात्रि में शयन कक्ष तक छात्र के प्रत्येक क्रियाकलापों पर नजर रखी जाती थी और छात्र की निरन्तर शोधन परिष्कार और परिमार्जन की प्रक्रिया चलती रहती थी।

परिणामतः आधुनिक शिक्षण पद्धति में वैदिक शिक्षण पद्धति की तुलना में दोष है। शिक्षक एवं छात्र के बीच जो घनिष्ठता का संबंध वैदिक शिक्षण पद्धति में मिलता है उस तरह आधुनिक शिक्षण पद्धति में शिक्षक और छात्र दोनों दो ध्रुवों पर स्थित होते हैं ओर दोनों के बीच दूरी बढ़ती जा रही है। वर्तमान शिक्षण पद्धति के प्रासंगिकता मात्र सूचना सम्प्रेषण तक ही सीमित रह गयी है।

वैदिक शिक्षा पद्धतियों में आधुनिक शिक्षा के तत्व के रूप में शास्त्रार्थ, संगोष्ठी, चरण (चर्चा) परिषद, सभा, विद्वत परिषद, धर्म विद्यमान थे। वाद–विवाद, वार्ता विशिष्ट शाखाध्ययन होता था।

आचार्य अपने शिष्यों के साथ विभिन्न राज संस्थाओं, विद्या केन्द्रों का भ्रमण करता था और समाज में प्रत्यक्ष सम्पर्क कर समस्याओं का अध्ययन करता था। सामाजिक व्यवहार की शिक्षा, नैतिकता का पाठ, भिक्षाटन पद्धति से होता था। आधुनिक शिक्षा पद्धति में श्रम पद्धति का अभाव है। इसलिये विद्यालयों से निकले हुये छात्र कोई श्रम नहीं करते क्योंकि शिक्षण पद्धति में इसका अभाव है। शिक्षण स्वयं कोई श्रम नहीं करता और न तो श्रम पर आधारित पाठ्यक्रम और पद्धति है। इसलिये आधुनिक छात्रों में श्रम के प्रति उपेक्षा का भाव है। उसके बाद वे अपने को बेरोजगार की श्रेणी में रखते हैं। यही कारण है कि आधुनिक समय में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है जो वर्तमान भारत वर्ष की एक मुख्य समस्या है।

निःसंदेह वैदिक कालीन शिक्षा की अनेक विशेषताएं आधुनिक समय में भी पूर्णरूपेण प्रासंगिक तथा उपयोगी एवं आवश्यक हैं। वैदिक शिक्षा के उद्देश्य छात्र अध्यापक सम्बन्ध, अनुशासन व्यवस्था, उपनयन

संस्कार की अनिवार्यता, समावर्तन उपदेश तथा विनयशीलता, नैतिक चरित्र, कार्य अनुभव व गुरू श्रद्धा आदि विशेषताओं को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में समाहित करके अनेक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। अतः वैदिक शिक्षा का वर्तमान शिक्षा प्रणाली में लागू होना अति आवश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. डॉ0 दुर्गादत्त पाण्डेय – धर्म दर्शन का सर्वेक्षण
2. डॉ0 रमन बिहारी लाल – शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत – रस्तोगी पब्लिकेशन मेरठ
3. भटनागर, सुरेश एवं सक्सेना, अनामिका, आधुनिक शिक्षा और उसकी समस्याएँ, आर0 लाल0 बुक डिपो मेरठ दशम संस्करण 2001
4. प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति (डॉ0 अ0 स0 अल्तेकर)
5. नवीन शिक्षा (एडमस. जे.)

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 72-76

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 एवं बहुभाषिकता

किशोरी लाल
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जोशीमठ, चमोली (उत्तराखण्ड़)

साराँश :–

केन्द्रीय मंत्रीमण्डल ने 21वीं सदी के भारत की जरूरतों को पूरा करने के लिए भारतीय शिक्षा प्रणाली में बदलाव किया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 यदि अपने निर्धारित लक्ष्य व उद्देश्यों को प्राप्त करने में कारगर साबित होती है तो यह शिक्षा प्रणाली भारत को वैश्विक फलक पर अग्रणी देशों के समकक्ष ले जाएगी। 34 वर्षों के एक लम्बे कालखण्ड के पश्चात लागू की गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का उद्देश्य सभी छात्रों को उच्च शिक्षा प्रदान करना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में बहुभाषिकता सम्बन्धी विशेष प्रावधान किये गये हैं जिसमें भारतीय भाषा व साहित्य के माध्यम से 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' की पहल को सुदृढ़ करने हेतु भारतीय भाषाओं की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है। जो भारत की विविधता में एकता और अखण्डता को प्रतिदर्शित करती हैं। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का माध्यम होती हैं और शिक्षा से ही समाज की चेतना जागृत होती हैं। प्राचीन काल से ही भारत में ज्ञान और शिक्षा की एक समृद्ध व व्यापक परम्परा रही है। औपनिवेशिक काल में भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल थोपी गयी शिक्षा व्यवस्था ने देश को उसकी ज्ञान–परम्परा से न केवल दूर किया, अपितु उसके प्रति घृणा और द्वेष का भाव भी कूट–कूट कर भर दिया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के माध्यम से औपनिवेशिक काल की उन सभी समस्याओं की पहचाना की गयी जिसके माध्यम से प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप और उसकी उपलब्धियाँ विश्रृंखलित हुई हैं। इस दस्तावेज में भारतीय शिक्षा प्रणाली की पूर्व की राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों की कमीयों को दूर करने तथा इक्कीसवीं सदी के आधुनिक उन्नत भारत के विकास में प्राचीन भाषा, संस्कृति व ज्ञान–परम्परा के माध्यम से भविष्य के भारतीय समाज को तैयार करने के लिए खाका प्रस्तुत किया गया।

प्रस्तावना :–

किसी भी राष्ट्र के विकास तथा वैश्विक फलक पर विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में गणना होने हेतु उस राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान होता है। जिस राष्ट्र का शैक्षिक स्तर जितना अधिक उच्च और गुणवत्तापूर्ण होगा वह राष्ट्र उतना ही अधिक विकसित होगा। शैक्षिक प्रणाली का मुख्य उद्देश्य अच्छे नागरिकों का विकास करना है जो वैज्ञानिक चिंतन, रचनात्मक कल्पनाशक्ति, करूणा, सहानुभूति, नैतिक मूल्य, तर्कसंगत विचार और कार्य करने में सक्षम हों। भारत की भाषा और संस्कृति प्राचीन सभ्यताओं में से एक है। यहाँ विभिन्न जाति, धर्म और सम्प्रदायों के लोग निवास करते हैं। प्राचीन भारतीय सनातन की समृद्ध विचार ज्ञान–परम्परा रही

है जिसमें ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय दर्शन में सर्वोपरि मानवीय लक्ष्य माना जाता है। नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति के दस्तावेज में बहुभाषिकता के सम्बन्ध में कुछ उल्लेखनीय उपबन्धों की व्यवस्था की गयी है जिससे हम अपनी–अपनी मातृभाषाओं/क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से भी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं और सफलता के उच्च आयामों को प्राप्त कर सकते है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में बहुभाषिकता का परिप्रेक्ष्य :–

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के संरक्षण और शिक्षा मंत्री डॉ0 रमेश पोखरियाल "निशंक" के मार्गदर्शन तथा अंतरिक्ष वैज्ञानिक डॉ0 के0 कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में तैयार की गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मसौदा 'आत्मनिर्भर भारत' के निर्माण व भारतीय शिक्षा के दूरगामी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संभावनाओं का अभिलेख है। इस नीति में सामाजिक न्याय, शोध व अनुसंधान, रोजगार तथा भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्तुतियाँ प्रगतिगामी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 का यह अभिलेख 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' की परिकल्पना से ओत–प्रोत गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुँच प्रदान करना तथा वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय और समानता, बन्धुत्व, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण व संरक्षण के संदर्भ में भारत की सतत प्रगति और आर्थिक विकास के साथ ही बहुभाषिकता का अध्ययन और अध्यापन के कार्य में भाषा की शक्ति को प्रोत्साहन देना भी शामिल है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में 3 वर्ष से 18 वर्ष तक के आयु वर्ग के बच्चों के लिए पाठ्यचर्या और शिक्षण–शास्त्रीय आधार पर (10़2) संरचना की जगह 5़3़3़4 की एक नई संरचना वाली व्यवस्था को अपनाया गया है। "जिसके तहत क्रमशः फाउंडेशन स्टेज (दो भागों में अर्थात् आंगनवाड़ी/प्री–स्कूल के 3 साल़प्राथमिक स्कूल में कक्षा 1–2 में, 3–8 वर्ष के बच्चों सहित), प्रिपरेटरी स्टेज (कक्षा 3–5, 8–11 वर्ष के बच्चों सहित), मिडिल स्कूल स्टेज (कक्षा 6–8, 11 से 14 वर्ष के बच्चों सहित), और सेकेंडरी स्टेज (कक्षा 9–12, दो फेज में, यानी पहले फेज में 9 और 10 और दूसरे फेज में 11 और 12, 14 से 18 वर्ष के बच्चों सहित) शामिल होगी।"[1]

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहने के लिए तथा समाज के अन्य लोगों से उसे अपने मनोभावों, विचारों का आदान–प्रदान करने एवं चिंतन–मनन करने के लिए भाषा की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य को संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने का गौरव प्राप्त है। जिसका प्रामाण उसे उसकी भाषा प्रदान करती है। भाषा एक सामाजिक संम्पत्ति है। जिसका प्रयोग मनुष्य द्वारा अपने विचार–विनिमय के लिए किया जाता है और यही भाषा उसके इतिहास एवं संस्कृति को समृद्ध बनाती है। भाषा के संदर्भ में प्रसिद्ध व्याकरणाचार्य कामता प्रसाद गुरू का कथन है कि "भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली–भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकतें हैं। मनुष्य के कार्य उसके विचारों से उत्पन्न होते हैं और इन कार्यों में दूसरों की सहायता अथवा सम्मत्ति प्राप्त करने के लिए उसे वे विचार दूसरों पर प्रकट करने पड़ते हैं। जगत का अधिकांश व्यवहार बोलचाल अथवा लिखा–पड़ी से चलता हैय इसीलिए भाषा जगत के व्यवहार का मूल है।"[2] जीवन व्यापार में शिक्षा की भूमिका सर्वविदित है। मनुष्य के कृत्रिम आविष्कारों में भाषा का स्थान निश्चित ही सर्वोपरि है। मानव जीवन का कोई ऐसा पक्ष नहीं जो भाषा से अछूता हो, जागरण हो या स्वप्न हम भाषा परिवेश की दुनियां में ही जीते हैं। हमारी भावनाएँ, हास–परिहास, पीड़ा की अभिव्यक्तियों और जन संवाद को संभव बनाते हुए भाषा हमारे सामाजिक जीवन को भी संयोजित करती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रारूप में यह व्यवस्था की गयी है कि सभी भारतीय भाषाओं में विशेषकर

मातृभाषाओं या क्षेत्रीय भाषाओं को प्राथमिक स्तर पर अनिवार्य रूप से शिक्षा का माध्यम और उसके आगे यथा संभव भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाए जाने की बात कही गई है। जो भारतीय भाषाओं के संरक्षण के लिए एक बहुत बड़ा कदम माना जा रहा है। जिसमें बहुभाषिकता और अध्ययन–अध्यापन के कार्य में भाषा की शक्ति को प्रोत्साहन देना भी शामिल है। स्कूली शिक्षा के साथ ही उच्च शिक्षा तक में भारतीय भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयोग हेतु महत्वपूर्ण अनुशंसा कि गई है। जिससे प्राचीन भारतीय ज्ञान–परम्परा भाषा व संस्कृति को संरक्षित किया जा सके और साथ ही भारत को वैश्विक परिदृश्य में आगे लाया जा सके। "भारत की भाषाएँ दुनियाँ में सबसे समृद्ध, सबसे वैज्ञानिक, सबसे सुन्दर और अधिक अभिव्यंजनात्मक भाषा में से हैं, जिनमें प्राचीन और आधुनिक गद्य और कविता दोनों के विशाल भण्डार हैं।"[3] भाषा केवल विचारों के आदान–प्रदान का साधन मात्र ही नहीं अपितु यह विचार, संस्कार और आधार प्रदान करने वाली महत्वपूर्ण कड़ी है। भाषा ही किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का वह महत्वपूर्ण पहलू है जो उस व्यक्ति को पहचान देता है। भाषा ही व्यक्ति को विभिन्न पटलों पर विचार अभिव्यक्ति हेतु सक्षम बनाती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में रटन्त शिक्षा प्रवृति के बोझ को कम करने तथा भाषिक ज्ञान व चिन्तन–मनन के साथ ही शिक्षा व्यक्ति के निर्माण और साथ–साथ उसके व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण आयामों, संस्कार, विचार, व्यवहार आदि का विकास करना है। भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने प्राचीन धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों से जुड़े रहते हैं और साथ ही मानवाधिकारों व स्थायी विकास तथा जीवन यापन और वैश्विक कल्याण के लिए प्रतिबद्ध हों ताकि हम सही मायने में वैश्विक नागरिक बन सकें। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की इस अवधारणा को स्पष्ट करते हुए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने अपने सम्बोधन में कहा कि "हमारे छात्र ग्लोबल सिटीजन तो बनें, साथ–साथ अपनी जड़ों से भी जुड़ें रहें। जड़ से ले करके जग तक, मनुष्य से मानवता तक, अतीत से आधुनिकता तक सभी बिन्दुओं का समावेश करते हुए इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति का स्वरूप तय किया गया है।"[4] स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारतीय भाषाओं के साथ जड़ों से जोड़ने वाली होगी और जड़ों से जोड़कर छात्रों को ग्लोबल सिटीजन के रूप में भी स्थापित करने में महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

संस्कृति मानव द्वारा निर्मित एक अद्भूत शब्द है जो मनुष्य को इस भौतिक यथार्थ को संकेतित करते हुए मनुष्य के मनुष्य होने से संबन्धित है। संस्कृति शब्द अत्यन्त व्यापक और बहुसंदर्भी है। जिसकी छाया प्राचीनकाल से लेकर भविष्य तक जाती है। संस्कृति वस्तुतः देश जाति से संम्बन्धित है, धर्म के साथ उसका नाता जोड़ना गौण रीति से हो सकता है। संस्कृति के अन्तर्गत विभिन्न जाति, धर्म और सम्प्रदायों के खान–पान, रीति–रीवाज, रहन–सहन, बोली–भाषा, तीज, त्योहार, कला–संगीत, संस्कार तथा क्षेत्र विशेष के अंचल में निवासरत विभिन्न जातियों व जनजातिय समुदायों के लोगों की अपनी विशेष लोक परम्पराएँ आदि समाहित हैं। जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को पीढ़ी दर पीढ़ी स्वाभाविक रूप से हस्तांतरित होती रहती है। मनुष्य अपनी संस्कृति को अक्षुण बनाये रखने के लिए अपनी उस परम्परागत विरासत को संजोकर रखने हेतु निरंतर प्रयासरत रहता है और अपने समुदाय से इसे ग्रहण भी करता है। संस्कृति के संबन्ध में महात्मा गांधी जी ने कहा था कि हम स्वस्थ सांस्कृतिक प्रभावों के लिए अपने दरवाजे खिड़की खुले रखें पर अपनी बुनियाद पर कायम रहें। उपभोक्तावादी संस्कृति हमारी सामाजिक नींव को ही हिला रही है। यह एक बड़ा खतरा है। भविष्य के लिए यह एक चुनौती है। भाषा, संस्कृति और समाज को जोड़ने का कार्य करती है तो वहीं भारतीय संस्कृति भारत की

विविधता में एकता को एक सूत्र में बाँधने का कार्य करती है। भारत में कुछ बोली–भाषाएँ तथा संस्कृति विलुप्ति की कगार पर हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ की एक रिपोर्ट के अनुसार 197 भारतीय भाषाएँ खतरे की जद में हैं जिनकी पहचान कर उनका संरक्षण करना अत्यन्त आवश्यक है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखा गया है कि हम भारतीय भाषाओं व संस्कृति को छोड़कर पाश्चात्य भाषा व संस्कृति को अंधानुकरण से अपनाने की होड़ में लगे हैं, जिससे हम अपनी भारतीय भाषा व संस्कृति को विस्मृत करते जा रहे हैं। प्राचीन भाषा संस्कृत भारतीय संस्कृति का केन्द्र बिन्दु रही हैं और वर्तमान में भारत में प्रयुक्त अधिकांश भारतीय भाषाओं की जननी भी। भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जो हमें अपनी संस्कृति से जोड़ने का कार्य करती है जिससे हम अपनी भाषा और संस्कृति को पहचान सकें साथ ही उनके जड़ों से जुड़े रहें। "भारत की शास्त्रीय भाषाओं और साहित्य के महत्व, प्रासंगिकता और सुंदरता को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। संस्कृत, संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित एक महत्वपूर्ण आधुनिक भाषा होते हुए भी, इसका शास्त्रीय साहित्य इतना विशाल है कि सारे लैटिन और ग्रीक साहित्य को भी यदि मिलाकर इसकी तुलना कि जाए तो भी इसकी बराबरी नहीं कर सकता। संस्कृत साहित्य में गणित, दर्शन, व्याकरण, संगीत, राजनीति, चिकित्सा, वास्तुकला, धातु विज्ञान, नाटक, कविता, कहानी और बहुत कुछ (जिन्हें संस्कृत ज्ञान प्रणालियों के रूप में जाना जाता है) के विशाल खजाने हैं। इन सबको विभिन्न धर्मों के लोगों को साथ–साथ गैर धार्मिक लोगों और जीवन के सभी क्षेत्रों और सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि के लोगों द्वारा हजारों वर्षों में लिखा गया है। इस प्रकार संस्कृत को, त्रि–भाषा के मुख्यधारा विकल्प के साथ, स्कूल और उच्चतर शिक्षा के सभी स्तरों पर छात्रों के लिए एक महत्वपूर्ण, समृद्ध विकल्प के रूप में पेश किया जाएगा। यह उन तरीकों से पढ़ाया जाएगा जो दिलचस्प और अनुभवात्मक होने के साथ–साथ समकालीन रूप से प्रासंगिक है, जिसमें संस्कृत ज्ञान प्रणाली का उपयोग शामिल हैं।"[5]

मातृभाषा को लेकर आचार्य विनोबा भावे का कहना है कि "मैं दुनियां की सभी भाषाओं की इज्जत करता हूँ पर मेरे देश में मातृभाषा की इज्जत न हो, यह मैं सह नहीं सकता।"[6] भाषा किसी भी देश की पहचान और परिचय होती है। बोली–भाषा मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है। विदेशी भाषा की अपेक्षा व्यक्ति अपनी बोली–भाषा में अपने विचारों व भावनाओं का साधिकार, अच्छे तरीके से अच्छी शैली में प्रस्तुत कर सकता है क्योंकि वह आत्मा से जुड़ी होती है। भाषा का सवाल देश की अस्मिता व अखण्डता से भी संबन्धित होता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कला, संस्कृति और भाषाई विविधता के माध्यम से मनुष्य के सृजनात्मक क्षमता को जागृत करने पर बल दिया गया है। जिसका दूरगामी परिणाम देश की उन्नति व सर्वांगीण विकास तथा रोजगार के अवसर और आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में कारगर सिद्ध होगा।

भारत में शिक्षा की दशा और दिशा सुधारने के लिए गठित राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने अंग्रेजी के वर्चस्व को समाप्त करने की संस्तुति की है ताकि शिक्षा के लिए मातृभाषाध्भारतीय भाषाओं के माध्यम को अपनाया जा सके और साथ ही भारतीय भाषाओं को संरक्षित भी किया जा सके। मातृभाषा के सम्बन्ध में महापण्ड़ित राहुल सांस्कृत्यायन का कथन है कि "मातृभाषा ही हमारी परिषाभा है, जिसके बोलने में अनपढ़ से अनपढ़ आदमी और बच्चा तक भी व्याकरण की गलती नहीं कर सके।"[7] वहीं कवि शिरोमणि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी अपने लेख 'शिक्षा स्वांगीकरण' के माध्यम से भावाभिव्यक्त किये उन्होंने कहा है कि "शिक्षा में मातृभाषा माता के दूध के समान हैं।

ये सरल और सार्वभौमिक उद्‌गार मैंने बहुत पहले प्रकट किए थे और मैं उन्हें फिर दुहरा रहा हूँ जो उस समय अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव में थे, उनके कानों के लिए ये शब्द अप्रिय थे। यदि इन शब्दों का अभी भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो मेरा विचार है कि लोग उसे बार–बार दुहराएँगें।"[8] राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 के खण्ड 4(3) के अनुसार शिक्षा के स्तर में सुधार और ज्ञान के विस्तार हेतु भारतीय भाषाओं एवं साहित्य को सशक्त रूप से विकसित किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। यूनेस्को की 2003 की एक रिर्पोट के अनुसार 'बहुभाषी विश्व शिक्षा' के दिशानिर्देशों के अनुसार मातृभाषा में शिक्षण से शैक्षणिक गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी होती है तथा ज्ञान और अनुभव की वृद्धि में सहायता मिलती है। वहीं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के खण्ड 3.1.1 के अनुसार विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए क्योंकि मातृभाषा में ही छात्र अपने घर, आस–पास तथा सामाजिक वातावरण की गतिविधियों से स्वाभाविक रूप से सीख पाते हैं।

निष्कर्ष :–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के द्वारा भारतीय शिक्षा संरचना को बहुभाषिकता के माध्यम से अधिक गतिशील, लचीला व प्रासंगिक बनाने हेतु एक सार्थक प्रयत्न किया गया है। शिक्षा नीति में इस सुचिंतित मान्यता को स्वीकृति दी गई है कि भारतीय प्राचीन गौरवमयी ज्ञान–विज्ञान की परम्परा को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है जिसे भारतीय बहुभाषिकता के माध्यम से ही पूरा किया जा सकता है। भारतीय भाषाओं में पारंगत भारतीय युवाओं की सृजनात्मक क्षमता में वृद्धि करने के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति और संकल्प का स्पष्ट भाव इस शिक्षा नीति में दिखाई देता है। निश्चित रूप के निःसंदेह ज्ञानवान, सशक्त और आत्मनिर्भर भारत के निर्माण की संकल्पना साकार हो सकेगी। साथ ही ज्ञान की विविध विधाओं का अध्ययन अपनी भाषा में करने के फलस्वरूप शिक्षा में उत्कृष्टता आएगी और ऐसी युवा पीढ़ी का निर्माण हो सकेगा जो पूर्ण रूप से भारतीय मूत्यों एवं परम्पराओं के प्रति समर्पित होगी।

संदर्भ सूची :–

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, अनुच्छेद 4.1, मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार।
2. हिन्दी व्याकरण – पंडित कामता प्रसाद गुरू, पृ0 सं0 01
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, अनुच्छेद 4.15, मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार।
4. भाषा द्वैमासिक – मार्च–अप्रैल 2021, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय भारत सरकार, पृ0 सं0 45
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, अनुच्छेद 4.17, मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार।
6. संपादक, प्रभात शास्त्री, राजर्षि पुरूषोत्तम दास टंडन एवं गांधी अंक, पृ0 सं0 15
7. राहुल सांकृत्यायन, निबन्धावली, पृ0 सं0 76
8. रविन्द्रनाथ टैगोर, शिक्षार स्वांगीकरण, बंगाल एजुकेशन वीक, 1936, खण्ड 1, पृ0 सं0 – 71

मो0 न0 – 9410734703

ई–मेल – kishori2101985@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 77-79

कृष्णा सोबती के साहित्य में अभिव्यक्त प्रेम

डॉ० सुनीता कुमारी
सहायक प्राध्यापक, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

कोई भी साहित्यकार अपने युग की पृष्ठभूमि से प्रभावित हुए बिना साहित्य सृजन नहीं करता, जीवन में वह जो कुछ भी अनुभव करता है उसी को अपनी लेखनी के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। आदिकाल से ही रचनाकारों में प्रेम का निरूपण अपनी रचनाओं में किया है यह प्रयास आज भी जारी है। कृष्णा सोबती ने प्रेम को केन्द्र में रखकर बहुत कम लिखा पर उन्होंने जो भी लिखा उसकी जीवंत अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में मिलती है।

'प्रेम' की परिभाषा बहुत सारे विद्वानों ने अपने अनुसार दी है– उनमें रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार – ''जो तृप्ति दे, प्रीति दे, वही प्रेम है। तृप्ति देने की क्रिया प्रिय से सम्बद्ध होकर ही सम्पन्न हो सकती है।'' कहा जा सकता है कि प्रेम ही वह चिरन्तन भावना है जो इस संसार के सभी मनुष्यों को एकता के सूत्र में बांधती है। 'प्रेम' शब्द को व्याख्यायित करने के प्रयास साहित्यिक, दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से भी किए गए लेकिन किसी भी परिभाषा को पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

कृष्णा सोबती की कहानियों, रोमानी और भावुक किस्म की कहानी है, मधुरेश ने उनकी प्रेम सम्बन्धी रोमानी कहानियों पर लिखा है– कृष्णा सोबती की प्रेम सम्बन्धी कहानियाँ– अपने सारे रोमनी और भावुक मिजाज के बावजूद इस तथ्य को नए सिरे से उद्घाटित करती है कि तप का धर्म मन के धर्म से अलग नहीं होता। नयी कहानी आंदोलन के दौर में जैनेन्द्र और अज्ञेय की मनोवैज्ञानिक कहानियों के विरूद्ध काफी कुछ लिखा गया। कृष्णा सोबती उसी परिवर्तित दृष्टि से रचनात्मक स्तर पर व्यक्त करती है।

अज्ञेय और जैनेन्द्र की कहानियों की अगर बात की जाए तो वहाँ वासनात्मक मन का मनोवैाानिक आकलन मिलता है वहीं कृष्णा सोबती ने प्रेमपूरित मन का। कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य में प्रेम–संबंधी दृष्टिकोण में बदलाव को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया गया है। प्रेम संबंधों में आ रहे बदलाव को प्रस्तुत करते समय कृष्णा सोबती वस्तुतः बदलती मानसिकता को सूचित करना चाहती है।

इस संदर्भ में सबसे पहले उनकी कहानी 'बादलों में घेरे में' इस कहानी को विवेचित करना चाहती हूँ– इस कहानी में कृष्णा सोबती प्रेम की शक्ति का मूल्यांकन करती है। इस कहानी की मन्नो टीबी की मरीज है जब वह अपनी चाची के घर जाती है तो परिवार के लोग उसे अछूत की तरह मानते हुए उसके लिए खाना नौकर

द्वारा उसके कमरे में पहुँचा देते हैं लेकिन वहीं पर उसकी भेंट रवि से होती है जो उसके प्रति प्रेम और अपनापन का मान रखता है, मन्नो का भी हृदय उस पर ढल जाता है, लेकिन वह जानती है कि वह ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रहेगी, अतः वह अपने प्रेम को रवि के सामने अभिव्यक्त नहीं कर पाती।

कन्धे पर पड़ा हाथ धीरे से अलग आया और समूची आखों से देखती हुई बोली– ''रवि, तुम जिसे झेल नहीं सकते, उसके लिए हाथ न बठाओं''[1] किन्तु दो प्रेम करने वालों को प्रेम के इजहार के लिए शब्दों की नहीं संवेदनशील हृदय की आवश्यकता होती है। जिस सेनेटोरियम के कॉटेज में इलाजरत मन्नो मृत्यु को वरण करती है, उसी सेनेटोरियम के उसी कॉटे के पास दस वर्ष के बाद रवि आता है और मन्नो के प्रेम को महसूस करता है रवि भी अपना प्रेम प्रकट नहीं कर पाता और मन्नो तो अपनी स्थिति के कारण, लेकिन प्रेम की शक्ति देह की सीमा से परे होता है।

'डार से बिछुडी' उपन्यास में पाशो की माँ एक हिन्दू विधवा होने के बावजूद भी विधवाओं के लिए बनाई गई परिपाटी पर चलने को तैयार नहीं और वह मुस्लिम शेखजी के प्रेम में पड़कर उनसे विवाह कर लेती है। परिवार या समाज का डर भी उसे डिगा नहीं पाता।

'मित्रो मरजानी' में तो प्रेम की परिभाषा ही बदलती नजर आती है। मित्रों प्रेम को अशरीरी नहीं मानती। उसके लिए प्रेम शारीरिक और मानसिक दोनों ही तरह के आनंद का साधन है। जब अपने पति सरदारीलाल की शारीरिक अक्षमता की वजह से मित्रो इस संतुष्टि को हासिल नहीं कर पाती तो उसका मन विद्रोह कर उठता है वह कहती है– ''वह कहती है जिठानी तुम्हारे देवर–सा बगलोल कोई और न दूजा होगा न दुःख–सुख न प्रीति प्यार, न जलन–प्यास बस आए दिन धौल–धप्पा..... लानत–सलामत।''[2]

मित्रो अपनी यौन अतृप्ति को सामान्य भारतीय नारी, परम्परा और रूढ़ियों में जकड़ी नारी की तरह अपनी नियति नहीं मानती वह विद्रोह करती है– वह सामाजिक रूढ़ियों को ध्वस्त करती हुई दूसरे मर्द में साथ अपनी दैहिक प्यास बुझाने की बात करती है– लेकिन मित्रों के सामने उसकी आधुनिकता के सामने भारतीयता आ खड़ी होती है और वह वापस अपने पति के पास लौट आती है।

आधुनिक युग में प्रेम के स्वरूप में अनेक बदलाव आए है प्रेम एकनिष्ठ नहीं रह गया। एकनिष्ठता एक अविश्वसनीय वस्तु बन गई है। इस संबंध में उर्वशी बुटालिया का यह कथन कि– ''इस विचार में पितृसत्ता को या पुरूष प्रधान समाज व्यवस्था को भूला दिया जाता है जिसमें स्त्री और पुरूष के कर्त्तव्य तथा अधिकार कभी एक समान नहीं होते जिसमें स्त्री के लिए तो पतिव्रता का या एकनिष्ठ प्रेम जरूरी नहीं माना जाता।''[3]

प्रेम में स्त्री के व्यक्तित्व के तिरोहित हो जाने का अस्वीकार ही कृष्णा सोबती के लेखन को विशिष्ट बनाता है। ''ऐ लड़की की अम्मू नर्से सूसन को समझती है।, ''सूसन शादी के बाद किसी के हाथ का झुनझुना नहीं बनना, अपनी ताकत बनने की कोशिश करना।''[4]

समय सरगम की अनन्या प्रेम रहित विवाह का आग्रह नहीं रखती वह प्रेम में बराबरी और सम्मान की उम्मीद करती है, इसीलिए लड़की, अम्मू को बताती है– ''मैं किसी को नहीं पुकारती, जो मुझे आवाज देगा, मैं

उसे जवाब दूँगी।''[5]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में बदलते सामाजिक परिवेश का वर्णन के साथ ही प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण में नित्य आए बदलाव का भी यथार्थ चित्रण है।

संदर्भ सूची :-

1. शुक्ल, रामचन्द्र – चिंतामणि, भाग–1, (लोभ और प्रीप्ति), संस्करण– 1983, पृ. सं. 77
2. सोबती, कृष्ण – मित्रो मरजानी, राजकमल पकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. सं. 18
3. सं. रमेश उपाध्याय एवं संज्ञा उपाध्याय, आज के समय में प्रेम, शब्द संधान, प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. सं. 37
4. सोबती, कृष्णा – ऐ लड़की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ. सं. 06
5. वही, पृ.सं. 56

मो0 : 9470368260

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 80-85

सन 57' की क्रान्ति, हिंदी भाषा-नवजागरण और भारतेंदु

डॉ रमेश यादव
सहायक प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, महारानी काशीश्वरी कॉलेज, कोलकाता–700003

शोध-सार :-

आधुनिक काल के आरंभ में नवजागरण की गंध आहिस्ता–आहिस्ता निरंतर फैल रही थी, जो कि आगे चलकर यह व्यापक स्वरुप धारण करती गयी। सच रुप में यदि हम देखें तो 19वीं सदी के नवजागरण में विविध जाति और कौम या सम्प्रदाय के आग्रह के सभी स्वरुप एक जैसे नहीं रहे हैं। कहीं पर दृष्टिगत अधिक उदारता थी तो कहीं पर आज परंपरा से चले आ रहे मूल्यों को सार्थक मानकर महत्व दिया जा रहा है। जैसे कि ब्रह्म–समाज और विवेकानन्द ने पारंपरिक मूल्यों को महत्व दिया पर उनमें वे नई चेतना के लिए आग्रह भी दिखाया। 19वीं शती में भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजाराममोहन राय अपने समय की सांस्कृतिक चेतना को नवजागरण से नामित करते हैं। जबकि बंकिमचंद्र 15वीं शती के भक्ति आंदोलन को सच्चे अर्थों में नवजागरण मानते हैं, लेकिन हिंदी के प्रख्यात आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने भक्तिकालीन आंदोलन को लोक–जागरण कहा और 19वीं शताब्दी के जागरण को नवजागरण माना है। इसलिए हिंदी क्षेत्रों में नवजागरण की शुरुवात सन 1857 ई. से माना जाता रहा है। अंग्रेजों द्वारा जो व्यवस्था जमींदारों, साहूकारों, सामन्तों के हितों को ध्यान में रखकर बनायी गयी थी उसको बदल देना प्रमुख उद्देश्य रहा है। सैनिकों, गैर–सैनिकों और किसानों, मजदूरों के एकजुट होकर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ना, साम्प्रदायिक सद्भाव को बनाये रखते हुए और विभेद मिटाते हुए संघर्ष करना हिंदी प्रदेश की स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख उद्देश्य रहे हैं।

बीज-शब्द :- नवजागरण, समाज, संघर्ष, हिंदी, भारतेन्दु, चेतना, भाषा, संस्कृति, संग्राम, व्यवस्था, राष्ट्र, क्रांति।

प्रस्तावना :-

नवजागरण के परिपेक्ष्य के रुप में 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी नवजागरण के लिए दो तरह की लड़नी थीं। प्रथम अंग्रेजी हुकूमत के प्रति और द्वितीय सामंती क्रूर–व्यवस्था के प्रति। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा ने लिखा है, 'भारत में अंग्रेजों के मुख्य सहायक यहाँ के सामंत थे। सन 57–58 में कश्मीर से लेकर हैदराबाद तक और महाराष्ट्र–राजस्थान से लेकर बंगाल तक के जमींदारों और राजाओं–नबाबों ने अंग्रेजों की मदद की।'[1] फलतः हिंदी नवजागरण की विशिष्टता बताने के लिए उन्होंने सन 1857 की राज्य क्रान्ति को उसका बीज रुप माना है। विचार विमर्श के लिए यह संदर्भ पर्याप्त महत्व रखता है। किंतु एक सचाई यह भी है कि भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने बंगाल जमीन के नवजागरण से ही प्रेरणा हासिल की थी। यदि ऐसा न हुआ होता तो आधुनिक काल में बहुत सी ऐसी विशेषताएं हैं जो अपना साहित्य में आकार पाने से वंचित रह जातीं।

हम माने तो नयी संबंध चेतना, नयी–सौंदर्य दृष्टि चाहे कलात्मक हो या भावनात्मक वे सभी बंगाल नवजागरण की ही देन हिंदी में माने जा सकते हैं।

भारतेंदु युग में लिखा गया साहित्य नवजागरण या पुनर्जागरण का साहित्य माना जाना चाहिए। क्योंकि परंपरा से प्रचलित आदर्श, धारणाएं और जीवन सूत्र जीवित तो थे, किन्तु अपनी विशिष्टता और मौलिकता के रंग खो चुके थे। इसलिए किसी काल विशेष में कोई भी ऐसी शक्ति, धारणा और विश्वासमयी सत्ता उभर नहीं पा रही थी, जो तत्कालीन जीवन, संस्कृति, साहित्य, भाषा प्रवाह के रुख को मोड़ पाती। इस संक्रमण के दौर में भारतेंदु का आविर्भाव एक चमत्कार से कम न था। धीरे–धीरे स्थिति बदलती गयी, सामाजिक चेतना प्रबुद्ध हुई। वजह, विक्टोरिया के शासन काल में अंग्रेजी, सभ्यता, भाषा और साहित्य के प्रचार–प्रसार को बढ़ावा मिला। इसी समय जहाँ प्रबुद्ध मनीषियों ने अपनी मंद चेतना को जाग्रत किया वहीं साहित्य सर्जकों में भारतेन्दु ने नवजागरण का संदेश भी दिया और उसे व्यापक रुप देने का बीड़ा भी उठाया। उपरोक्त संदर्भ में प्रो. अमरनाथ शर्मा ने स्पष्ट लिखा है, 'निःसंदेह, भारतेंदु के भाषा संबंधी चिंतन का तत्कालीन हिंदी समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। खासतौर पर भारतेंदु मंडल के लेखकों के भाषा के रुप को आगे बढ़ाने में महती भूमिका निभाई।'[2] अंगेजों ने भारतीय समाज के उद्योग–धंधों, संस्कृति और आर्थिक स्थिति को और अधिक बदतर बना दिया। सामन्तों और अंग्रेजों के आपसी सांठ–गांठ ने भी भारतीय जीवन को अधिक नारकीय स्थिति में ला खड़ा किया। प्रत्येक क्षेत्र में शोषण अपने विकराल रुप में शुरु था।

सन 57, की क्रान्ति और अंग्रेजी शासन के शोषण का प्रभाव भारतेंदु और युगीन साहित्य पर हर जगह दिखाई देता है। अंग्रेजों की आर्थिक नीति पर भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपनी पत्रिका श्कविवचन सुधाश में लिखा है, 'क्या यह अनीति नहीं है कि अनुमान दो सौ वर्ष हुआ इनका अधिकार इस देश में है। इन्होंने हमारे धनधान्य की वृद्धि में कोई उपाय नहीं किया और केवल अपनी भाषा सिखाया और सब व्यापार और धन सब अपने हस्तगत किया, क्या यह खेद की बात नहीं है कि हमको कला–कौशल से विमुख रखा और आप स्वतः व्यापारी बनकर सब देशभर का धन और धान्य अपने देश में ले गये।'[3] यानी भारत की अर्थ–व्यवस्था को पूरी तरह से अंग्रेजों ने चौपट कर दिया। भारतीय समाज के किसान चौपट होती खेती की पीड़ा से पीड़ित थे। अंग्रेज लगातार व्यापार, कृषि, काम–काज को पूर्ण रुप से बर्बाद कर रहे थे। भारतेंदु इस परिदृश्य से अत्यधिक व्यथित थे, इसलिए वे लिखते हैं, 'कपड़ा, झाड़ फानूस, खिलौने, कागज और पुस्तक इत्यादि सब वस्तु विलायत से आवेंगी उसके बदले यहाँ से द्रव्य जायेगा।'[4] अतएव, 'शुरु के जमाने में ईस्ट इंडिया कम्पनी का खास काम और वह उद्देश्य, जिसके लिए उसकी स्थापना हुयी थी, यह था कि हिंदुस्तान से तैयार माल, जैसे कपड़ा वगैरह और साथ ही मसालों को, पूरब से यूरोप ले जाकर बेचा जाय, जहाँ इन चीजों की बहुत मांग थी।'[5]

भाषा को लेकर भारतेंदु–युग और उसके समकाल रचनाकारों ने अपने तरीके से विकास का कार्य किया। इसके परिप्रेक्ष्य में नवजागरण और राष्ट्र की प्रवृत्ति भी प्रबल मानी जा सकती है। जिसमें कि यूरोपीय दार्शनिक आधार 'हेर्डर' और 'रुसो' की भाषा को लेकर सैद्धांतिक स्थापनाओं का प्रभाव माना जा सकता है। इसलिए प्रत्येक राष्ट्र को सही मायने में उसकी विशिष्ट भाषा और साहित्यिक संस्कृति के द्वारा ही समझा जा सकता है। भारतेंदु युग भी इससे अछूता नहीं रहा है। भाषा किसी क्षेत्र या समाज की साधारण जनता के लिए प्रतिनिधित्व का कार्य करती रही है, ओ चाहे पुनरुत्थान का काल हो या पुनर्जागरण का काल, दोनों में ही सर्व–सामान्य

जनता के लिए भाषायी संपृक्तता जरुरी हो जाता है। जैसे कि, 'हिंदी में बंगला और मराठी की तुलना में नवजागरण बाद में शुरु हुआ, और इसके गद्य का भी विकास थोड़ा विलम्ब से हुआ। बावजूद इसके हिंदी समुदाय के गठन की प्रक्रिया ज्यादा तीव्र और व्यापक साबित हुयी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से शुरु होकर बीसवीं शताब्दी के दूसरे–तीसरे दशक तक उन जगहों पर हिंदी के प्रसार में बेहद सफलता मिली, जिन्हें ऐतिहासिक रुप से मगध, मिथिला, भोजपुरी क्षेत्र, कोसल, ब्रज, मालवा आदि के रुप में जाना जाता रहा है,... मैथिली में विद्यापति, अवधि में जायसी और तुलसी, राजस्थानी में मीरा जैसी प्रतिभाएं साहित्यिक कीर्तिमान स्थापित कर चुकी थी।'[6] फलतः उपरोक्त का सीधा प्रभाव भारतेंदु के साहित्य पर पड़ता है, और मध्यकालीन भाषा परिष्कृत होकर भारतेन्दु युग में सरल, सहज हिंदी रुप में प्रयोग में आने लगी थी, 'भारतेंदु ने जैसी सरल हिंदी लिखी, वैसी कम बहुत कम लोग लिख पाते हैं, इसका एक कारण यह भी है कि उन्होंने हिंदी के सहज रुप को पहचाना था और उसे संस्कृत के सांचे में ढालने की कोशिश न की थी। शुक्लजी ने संस्कृत–गद्य से प्रभावित हिंदी लेखकों की शैली से भारतेन्दु की गद्य–शैली का अलगाव दिखलाते हुए लिखा–'एक बात विशेष रुप से ध्यान देने की है। वस्तु वर्णन या दृश्य वर्णन में विषयानुकूल मधुर या कठोर वर्ण वाले संस्कृत शब्दों की योजना की, जो प्रायः समस्त और सानुप्रास होती है, चाल–सी चली आई है। भारतेंदु में यह प्रवृत्ति हम सामान्यतः नहीं पाते।'[7] यही वजह है कि भारतेंदु युग में प्रयुक्त भाषा और उनके द्वारा प्रयोग की हुई भाषा अपनी सहजता, सरलता के कारण की शनिजत्वश की ओर अधिक ले जाती है। जहाँ किसी भी जाति या समुदाय की संस्कृति और भाषा का जुड़ाव वहाँ सीधे तौर पर होता है, और जहाँ मनुष्य समुदाय अपनी भाषा–संस्कृति से जुड़कर अपनी पहचान स्थापित करता है। फलस्वरुप भारतेंदु ने लिखा है, 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।'[8]

दरअसल नवजागरण का सवाल यदि हम कहें तो यह निश्चित रुप से राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम, आधुनिकीकरण और जनतांत्रिक चेतना से कम महत्वपूर्ण का नहीं रहा है। सामान्यतः किसी देश या प्रदेश की सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन, जिसमें सामाजिक कुरीतियों को दूर करने और दलित–पिछड़ी स्त्री या समूहों की स्थिति को परिवर्तित करने को ही हम भारतीय समाज में नवजागरण का रुप कह सकते हैं। बहरहाल, यूरोपीय नवजागरण के बाद 19वीं सदी के दूसरे दशक में भारत के जमीन पर नवजागरण का प्रारंभ हुआ वह यूरोप में नवजागरण सर्वप्रथम इटली में पैट्रियार्थ, दांते जे माध्यम से 14वीं सदी में आया था जो 19वीं सदी के भारतीय नवजागरण के सूत्र रुप में था। इस प्रकार भारतीय नवजागरण सामाजिक सुधार, सांस्कृतिक पुनरुत्थान, राष्ट्रीयता के लिए संघर्षों के साथ–साथ सर्वहारा वर्गों के उद्धार, जो यूरोपीय नवजागरण से बहुत कुछ मामलों में कई गुना आगे था। 'किसी देश या उसके प्रदेश के सामाजिक, सांस्कृतिक आंदोलन को हम नवजागरण कहते हैं, इसमें सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के प्रयत्न शामिल हैं। शूद्रों और स्त्रियों की स्थिति बदलने के लिए प्रयत्न नवजागरण के अंग हैं।'[9]

इस तरह नवजागरण काल में हिंदी भाषा–नवजागरण के समक्ष भारतीय बहुभाषिकता की अलग–अलग सामाजिक पृष्ठभूमि में विविध बाधाएं एवं समस्याएं थीं। जिसकी वजह से किसी के लिए और तो अन्य के लिए और कोई नवजागरण के लिए आदर्श एवं लोकप्रिय रहा है। यह समस्या आंतरिक जातीय भाषाओं को लेकर ज्यादा थी। बहुभाषिक रचनाकार अपने–अपने जातीय नवजागरण और भाषा को लेकर स्वयं में व्यथित थे और

लोकल विशेषताओं से बाहर निकलकर कुछ सोचने का तर्क उनके पास नहीं था। इसके मूल में था तार्किक वैज्ञानिकता का अभाव और अंतर्द्वंद्व या अंतर्विरोध को जन्म देना। चूंकि, 'बांग्ला नवजागरण का सारतत्व बुद्धिवाद है (राजाराममोहन राय) जबकि हिंदी नवजागरण का सारतत्व राष्ट्रवाद है (1857 का पहला स्वाधीनता संग्राम)। महाराष्ट्र नवजागरण का सारतत्व दलित चेतना (ज्योतिवा फुले) और सुधारवाद (रानाडे) है। तमिल नवजागरण का सारतत्व ब्राह्मणवाद विरोध और द्रविड़–चेतना है (नारायण गुरु)। भारतीय नवजागरण की इन परंपराओं के स्थानीय 'थ्रस्ट' को पहचानते हुए नवजागरण के राष्ट्रीय सारतत्व की अनदेखी एक भूल होगी। इसी तरह भारतीय नवजागरण के वैश्विक संपर्क को न देखना एक दूसरी भूल होगी।'[10] इस तरह नवजागरण के यूरोपीय स्वरुप को देखें तो पायेंगे कि वहाँ बुद्धिवाद(रैशनलिज्म) का ज्यादा प्रभाव रहा है। जिसके मूल में हैं तर्क, विज्ञान और चिंतन।

उल्लेखनीय है कि 19वीं सदी का नवजागरण भारत में आया, उसके औपनिवेशिक तत्वों की प्रमुख भूमिका रही है जो आगे चलकर यह नवजागरण समाज–सुधार एवं 'भाषायी अस्मिता' को लेकर आत्म–पहचान के लिए मूल सहयोगी सिद्ध हुआ। '1801 में फोर्ट विलियम कॉलेज खुला, जिसमें बांग्ला के अलावा हिंदी की भी आधुनिक शिक्षा दी जाती थी। बंगाल में सती–प्रथा के विरोध में आंदोलन हुआ, स्त्री शिक्षा और विधवा विवाह के आंदोलन चले। समाज सुधारों के केंद्र में स्त्री थी। इसी दौर में कलकत्ते के हिंदी प्रेस और हिंदी के पहले समाचार पत्र उदन्त मार्तण्ड के 1826 में प्रकाशन को हिंदी नवजागरण से अलग करके नहीं देखा जा सकता।'[11] ब्रिटिश काल में कचहरियों की भाषा के तौर पर फारसी भाषा का चलन था जो उर्दू भाषा की लिपि से समानता भी थी। उस समय नौकरियों में मुस्लिम और हिंदुओं की तुलना में कायस्थों की संख्या अधिक थी। जब अंग्रेजी राजभाषा के पद पर आसीन हुई और आज भी बनी हुई है। समस्या प्रभु वर्गों के लिए नहीं थी, परेशानी सामान्य जनता के लिए थी। उनकी अपनी सोच, चिंतन, संस्कृति सभी संकट के घेरे में थे। आधुनिक आचार–विचार के मामलों में अंग्रेज भारतीय से बहुत आगे थे। कारण कि अंग्रेज और सामंती समाज एक दूसरे के पूरक थे।

इसलिए साधारण जनता के लिए जीवन–मूल्य में आधुनिक दृष्टि को चेतना के रुप में सामने लाना इतना सहज नहीं था। इनमें लम्बे समय से आपसी द्वंद्व या संघर्ष चल रहे थे। जिसकी वजह से सामंती और पिछड़ी समाज व्यवस्था में दमित भारतीय वर्ग अपने विविध अंतर्विरोधों से त्रस्त थे। जिनमें हिन्दी भाषी क्षेत्र की जनता के मध्य सामुदायिक आपसी तनाव जो धर्म और सम्प्रदाय को लेकर था उसे हम दरकिनार नहीं कर सकते हैं। श्देखिये आप हिन्दी भाषा क्षेत्र अथवा अन्य क्षेत्रों में मौजूद धार्मिक समुदायों की जटिल उपस्थित को तो नजरअंदाज नहीं कर सकते।...ईसाई मिशनरियों को जबर्दस्त सत्ता संरक्षण था और ब्रिटेन से भारत ताकतवर लोग ईसाई प्रभाव प्रसार के लिए प्राणप्रण से कटिबद्ध और सक्रिय थे।...भारत में मौजूद छुआछूत, जाति–व्यवस्था, पाखण्ड, आडंबर और अंधविश्वासों का अपनी ओर इस्तेमाल करने में ईसाई मिशनरियाँ ज्यादा बेहतर स्थिति में थीं,...नवजागरण के उस युग में बेशक पश्चिम से प्रभावित सुधारवादी आंदोलन चल रहे थे, तो कुछ उथल–पुथल उसकी प्रतिक्रिया में भी थे। अनेक धार्मिक नेता अपने–अपने धर्म की रक्षा के लिए उसकी कमजोरियों से भी लड़ रहे थे। बंगाल–महाराष्ट्र, दक्षिण अथवा काशी में चले धार्मिक आन्दोलनों को इसी आसंग में समय सरोकारों के आसंग में रखकर विचार किया जाना चाहिए।'[12]

भारतेन्दु युग भाषायी चेतना की दृष्टि से एक ओर ब्रज भाषा का लालित्य और दूसरी ओर खड़ी बोली

हिंदी का प्रयोग इस काल की भाषायी चेतना के प्रमुख बिन्दु रहे हैं। भारतेंदु युग में हिंदी–उर्दू का संघर्ष जोरों पर था, परंतु फिर भी यह सत्य है कि लोकपरक चेतना की वजह से भारतेंदु युग के रचनाकार इस चिंता में थे कि कैसे भी कोई ऐसी भाषा प्राप्त हो जिसे व्यापक भूमिका प्रदान की जा सके निश्चय ही यह खड़ी बोली थी जिसका प्रयोग इस युग के रचनाकारों ने भले ही कम किया हो, लेकिन किया जरुर है। यहीं पर एक बात कह देना अनुचित न होगा कि नवजागरण युग के ये रचनाकार भाषा की शुद्धता की अपेक्षा भाषा की महत्व अंकन में इनकी विशेष रुचि रही है। इसीलिए प्रस्तुत युग के रचनाकारों में इतर भाषायी प्रयोगों से भी हिंदी का शब्द–भंडार अवश्य भरा पड़ा है। फिर भी हिन्दी अपनी पुख्ता जमीन की खोज में एक सीमा तक संक्रमण काल से द्वंद्वरत रहकर भी राष्ट्रीय अस्मिता के संदर्भ में अपने को स्थापित करने में वह सफल होती है। फलतः 'हिंदी का देश बहुत बड़ा था। हम कह सकते हैं कि नवजागरण की चेतना अपने विकसित रुप में हिन्दी नवजागरण में दिखती है... पहली बार राष्ट्रीयता को केंद्र में हिंदी नवजागरण ने रखा और इस हिंदी नवजागरण के पिता भारतेंदु जी ही हैं। उनके द्वारा सम्पादित विभिन्न पत्रिकाओं का हिंदी नवजागरण के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा। उनके द्वारा सम्पादित 'कविवचन सुधा (1868), हरिश्चंद्र मैगजिन (1873), बाला–बोधिनी (1874) में देश की उन्नति और देश के विकास को रोकने वाली कुप्रथा की विवेचना की गयी है।'[13]

भारतेंदु लोकभाषा के प्रबल समर्थक रहे हैं। वे टकसाली भाषा के विरुद्ध थे। बनावटी और पांडित्य भाषा के पक्ष में वे कभी नहीं रहे। इसलिए भारतेंदु भाषा के सहज, सरल, प्रवाहमय और विनोदपूर्ण रुप को स्वीकार करते थे। इस तरह उनके सम्बंध में कहा गया है, 'हिंदी भाषा के विकास में भारतेंदु और उनके युगीन लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने हिंदी गद्य की भाषा का संस्कार एवं परिष्कार किया तथा आगामी लेखकों के लिए पुख्ता जमीन तैयार कर दी। हिंदी–उर्दू विवाद को पीछे छोड़ते हुए इस युग के लेखकों ने हिंदी भाषा एवं साहित्य को एक नया पथ दिया तथा आधुनिक हिन्दी गद्य का प्रवर्तन किया।...भाषा का निखरा हुआ शिष्ट सामान्य रुप भारतेंदु की कला के साथ ही प्रकट हुआ। उनका प्रभाव भाषा एवं साहित्य दोनों पर बहुत गहरा पड़ा।'[14]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारतेंदु युग और उसके पूर्व का परिप्रेक्ष्य नवजागरण के लिए एक पृष्ठभूमि के रुप में अवश्य था। पुनरुत्थान काल और इसके पश्चात सामाजिक, सांस्कृतिक उत्थान जो इतिहास में घटित हुआ उसका सीधा प्रभाव भारतेंदु काल पर पड़ा। समानांतर तौर पर औपनिवेशिक स्थिति जो कहीं–न–कहीं भारतीय समाज को सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक स्तर पर अत्यधिक प्रभावित किया और जो विश्व स्तरीय सामाजिक, सांस्कृतिक बदलाव के लिए संघर्ष चल रहे थे उसका प्रत्यक्ष प्रभाव भारत की जमीन पर पड़ा। जिसके मूल में सन 57' की क्रांति का योग भी मुख्य रहा है। अंग्रेजी शासन के संक्रमण काल ने भारतीय समाज को अधिक प्रभावित किया, विशेषकर आर्थिक और सांस्कृतिक नजरिये से भारत के लोग अधिक जाग्रत हुए। समय–समय से समाज सुधारकों ने और उनके कार्यरत संस्थाएं बुनियादी सुधार में बहुमूल्य योगदान किये। जिसमें भाषा का प्रश्न और भाषायी स्तर पर उसमें नवजागरण का प्रसार होना प्रमुख रहा है।

हिन्दी भाषा नवजागरण में उपरोक्त तमाम गतिविधियों एवं समय–समय से हुए बहुल समाज सुधार के लिए आंदोलन या संघर्ष सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और भाषायी विस्तार और परिष्कार आदि की समुच्चय भूमिका

रही हैं। जहाँ से आगे चलकर भारतेंदु युग में हिंदी नवजागरण और भाषायी फलक पर हिंदी जमीन की तलाश करती हिंदी भाषा एक दायरे तक अपने को और भाषा नवजागरण को विस्तार देने में सफल रही है।

संदर्भ-सूची :-

1. शर्मा, रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2018, नयी दिल्ली, पृ. 11
2. शर्मा, अमरनाथ (प्रो.), हिंदी नवजागरण के अग्रदूत : भारतेन्दु हरिश्चंद्र, अक्षर वार्ता, वेब पेज : https:/www-aksharwartajournal-page
3. शर्मा, रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2018, नयी दिल्ली, पृ. 13
4. शर्मा, रामविलास, भरतेन्दु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएं, रामकमल प्रकाशन, संस्करण 2019, नयी दिल्ली, पृ. 18
5. नेहरु, जवाहरलाल, रामचन्द्र टंडन (सं), हिंदुस्तान की कहानी, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, संस्करण 2016, नयी दिल्ली, पृ. 346
6. सिंह, सुधीर रंजन, हिंदी समुदाय और राष्ट्रवाद, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2009, नयी दिल्ली, पृ. 57
7. तिवारी, अजय (सं), रामविलास शर्मा संकलित निबन्ध, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, संस्करण 2013, नयी दिल्ली, पृ. 243
8. शंभुनाथ (सं), सामाजिक क्रान्ति के दस्तावेज भाग–1, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2006, नयी दिल्ली, पृ. 373
9. पहल, इति. अंक, दिसम्बर–मार्च, 1991, पृ. 125
10. शंभुनाथ, रामविलास शर्मा, साहित्य अकादेमी, संस्करण 2011, नयी दिल्ली, पृ. 86
11. वही., पृ. 84
12. शिशिर, कर्मेन्दु, डॉ. रामविलास शर्मा नवजागरण एवं इतिहास लेखन, विभा प्रकाशन, संस्करण 2015, इलाहाबाद, पृ. 39–40
13. Web.page https:/hi.m.wikibooks.org
14. सिंह, रविनन्दन, 'हिंदी, उर्दू और खड़ी बोली की जमीन, साहित्य भंडार, संस्करण 2013, इलाहाबाद, पृ. 29

ईमेल : ramvand79@gmail.com, मोबाईल 9903081233

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 86-90

आदिवासी केन्द्रित उपन्यास : मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

डॉ. जाकिर हुसैन गुलगुंदी
हिंदी विभाग, कर्नाटक कला महाविद्यालय, धारवाड़, कर्नाटक–580001

भारत एक विशाल राष्ट्र है। यहाँ अनेक समुदाय के लोग रहते हैं। इसी प्रकार इस देश में अनेक धर्म हैं, प्रत्येक धर्म के संप्रदाय है, इन सभी के सम्मिश्रण से भारत की एक सामाजिक संस्कृति विकसित हुई है। इसी विकसित संस्कृति में आदिवासी समुदाय समाहित है। सदियों से आदिवासी, दलित, नारी आदि विषयों पर चर्चा–परिचर्या हो रही है। यह निर्विवाद है कि आदिवासी समुदाय सदैव हाशिए पर रहा है। आदिवासी शब्द से तात्पर्थ है– मूल निवासी। सामान्यतः किसी एक विशिष्ट भूप्रदेश में निवास करनेवाले, समान बोली का प्रयोग करनेवाले अशिक्षित समूह को आदिवासी कहा जाता है। आदिवासियों को जनजाति, वनवासी, गिरिजन आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है। भारत में लगभग आठ से दस प्रतिशत आदिवासी हैं। कहने के लिए उन्हें संविधानिक संरक्षण प्राप्त है परंतु आर्थिक संरक्षण के अभाव में इन्हें अपनी दैनिक अवश्यकताओं की पूर्ति के किए संघर्ष करना पड़ता है।

सम्प्रति, आदिवासियों की एक महत्वपूर्ण समस्या विस्थापन की है। आज भी वे घने जंगलों में रहते हैं जहाँ ज्यादातर कोयले की खदानें, बॉक्साइट, खनिज सम्पत्तियों का खजाना होता है। विकास के नाम पर सरकार द्वारा उद्योग धंधे स्थापित किये जाते हैं। इसी के साथ विभिन्न परियोजनाओं के लिए नदियों पर बाँध बनाये जाते हैं। इन्हीं कारणों से उन्हें अपने जमीन से बेदखल किया जा रहा है। इस स्थिति का निरूपण आदिवासी साहित्य में विस्तार से हुआ है। आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयाम परिलक्षित होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्यान्य आयाम का भी विश्लेषण किया गया है।

साहित्य और मनोविज्ञान एक–दूसरे से सम्बंधित है क्योंकि दिनों का उद्देश्य एक ही है। साहित्य में मानव चरित्र का सूक्ष्म अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है और मनोविज्ञान में मानव मन का अध्ययन होता है। मानव के आचरणों, उसके दैनिक व्यवहारों, क्रिया–कलापों की तह तक जाकर मानव स्वाभाव का सूक्ष्म अध्ययन करना ही मनोविज्ञान का मुख्य कार्य है। आदिवासी भी मानव है उनके रहन सहन, उनके आचरण पर मनोवैज्ञानिकता का प्रभाव होता है। इस दृष्टि से आदिवासी केंद्रित उपन्यासों में अंतर्निहित, मनोवैज्ञानिकता का विश्लेषण प्रस्तुत है।

मनुष्य रात–दिन जिसके बारे में सोचता है, जिसके बारे में विचार करता है या जो कुछ भी वह देखता

है, वही बाते उसके सपने में दिखाई देती है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भी है। 'पिंजरे में पन्नाश उपन्यास में अशोक मास्टर आदिवासियों के बीच रहते हुए उनमें से एक बन गया था और आज आजीवन उनके बीच ही रहना चाहता है। वह मन ही एक मन नथनी को अपना मान बैठता है। जब नथनी को खाँसी हो गई थी तब तब वह बहुत उदास हो जाता है, वह रात दिन उसी के बारे में सोचने लगता है। वह अपने सपनों में भी नयनी को देखने लगता है। नथनी उसके सपनों में आकर कहने लगती है– 'गुरु जी, हम यहाँ नहीं... कहीं और जन्म लेंगे, जहाँ प्यार के बीच परम्पराओं की अंधी गुलामी और धर्म व जाति के नाम पर दरिंदे न होंगे।"[1]

मनुष्य का मन विचित्र और चंचल होता है उसे काबू में रखना बहुत मुश्किल है। जब मनुष्य यात्रा में होता है तो यह अशंका बनी रहती है कि कहीं दुर्घटना घटित न हो। ऐसे समय में उसे वे सारी बातें याद आने लगती हैं जो उसने दूसरों में सुनी हो, या समाचार पत्रों में पढे या दूरदर्शन पर देखे हो। 'पिंजरे में पन्ना' की रम्या जब यात्रा करती है तो उसका मन आशंका से भयभीत होते रहता है– 'किन्तु...पहाड़ उसे हमेशा डराते थे। घाटी में वह अपने आपको इस कदर असहाय महसूस करती थी कि लगता था अभी कोई चट्टान खिसकेगी और उसके ऊपर आ गिरेगी। थर थर काँपती हुई पसीना–पसीना होती हुई वह यह देखने के लिए विवश थी कि चट्टानें खिसकने लगी हैं।"[2]

'धार' उपन्यास का मंगल देखता है कि अंधविश्वास के नाम पर मैना की माँ को गाँव से बेदखल कर दिया गया है। ठेकेदार आदिवासियों पर जुल्म ढाँते हैं। आदिवासियों के ऊपर होनेवाले शोषण को देखकर मंगल का मन वितृष्णा से भर उठता है। उसे गाँव के चारों ओर यही असंगती, विडम्बना दिखाई पड़ती है – "उसे हर चीज से वितृष्णा होने लगी थी। जिंदगी चारों ओर रूक्ष थी। कहीं भी इतमिनान नहीं। अगर कुछ था तो शक जो एक अमूर्त भाव से जगह पसरा पडा था। मैना तक भी संदेहमुक्त नहीं, उसके संबंध में उड़ती अफवाहों, बीता अतीत और रहस्य–भरा वर्तमाना"[3] उपन्यास में मैना का संघर्षपूर्ण जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। विषम परिस्थितियों से उसका मन कभी विचलित नहीं होता। क्षण–प्रतिक्षण वह अपने मन को दृढ बनाती है।

भगवानदास मोरवाल कृत 'काला पहाड़' उपन्यास में सलेमी की मनःस्थिति को रेखांकित किया गया है। बाबरी मस्जिद कांड के पश्चात हिन्दू–मुस्लिम दोनों में दहशत का माहोल बन गया। दोनों समाज के लोगों के मन पर इस घटना का गहरा असर दिखने लगा। दोनों ही समुदाय के लोगों के मन–मस्तिष्क में दहशत की छाया व्याप्त हो गई। सलेमी की मानसिक स्थिति इतनी बिगड गई कि वह रात–दिन उन्हीं ख्यालों में डूबा रहता। 'नींद तो जैसे आँखों से उड़ ही गई। यह पहला मौका है जब पता नहीं सलेमी ने कितनी बार हुक्के को ताजा किया और कितनी बार पौली से बाहर जा–जाकर देखा? कभी–कभार जब कुत्ते अपनी आदत के अनुसार बेमतलब भौंकने लगते, तब उसे लगता जैसे उसका दिल उछल कर बाहर आ जाएगा। वह तुरंत पाँव में पणहा डाल, सिरहाने रखी लाठी को उठाता और बाहर जाकर पूरे दगडे को स्याह रात में चौककर नजरों से दूर तक देखकर वापस आ लेटता।'[4] सलेमी रात भर बेचौन रहता और चौकन्ना रहता उसके मन में यही अशंका रहती की कि कहीं से कोई धावा न बोल दे। उसकी मनःस्थिति को व्यक्त करते हुए उपन्यासकार लिखते हैं– 'तीसरा पहर खत्म

होने के बाद उसे नींद का एक लम्बा झोंका आया लेकिन इस झोंके में न जाने कितने डरावने दृश्य उसके सुप्त अवचेतन में आते रहे– कभी काले पहाड़ की देह के पीछे से उठती हुई काली आँधी के विशाल बगुले दिखाई देने लगते हैं। तो कभी हरहराती बीड का शोर सुनाई देने लगता है। कभी उसे रेत से पटा पूरा दगडा लाल रंग से नहाया नजर आता है तो कभी उसे मतीराम, हरसाय, सूरज, बुध्दन के घरों से धुआँ उठता दिखाई देता है।"[5]

'जंगल जहाँ से शुरू होता है' उपन्यास में काली के मन का अंतद्वंद्व को व्यक्त किया गया है। ठेकेदार काली का आर्थिक शोषण करता है। ठेकेदार को काली को उसके हक के 15 हजार देने थे लेकिन, ठेकेदार काली को उसके हक के पैसे न देकर लुटेरे परशुराम को देता है। अपने हक के पैसे न मिलने पर उसका मन आक्रोश से भर जाता है। उसकी मानसिक दशा को अभिव्यक्त करते लेखक लिखते हैं–'आग घुल रही है काली के मन में। ऐसे अन्याय उसे पर उसे क्या करना चाहिए, यह बताने वाला कोई नहीं, न कोई देवी–देवता, न कोई साधु–फकीर, न कोई लीडर–अफसर। हर तरफ अंधेरा है हर तरफ घुटन।''[6]

मैत्रेयी पुष्पा कृत उपन्यास 'आल्मा कबूतरी' में पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। राणा मंसाराम का पुत्र है। मंसाराम को अपने किए पर पछतावा है। जोधा और करन उसके बेटे हैं, राणा भी उसका बेटा है परंतु समाज के सामने उसे अपना बेटा मान नहीं सकता। राणा और अलमा के दैहिक मिलन का विस्तार से वर्णन उपन्यास में किया गया है।

जिसमें यौन मनोविज्ञान भी झलकता है। लेखिका लिखती है– 'दोनों छिप गए। झुरमुट में अल्मा कितनी अपनी लगी। आंखें रंग बदलती गई। हाथ ने हाथ थाम किया। पास–पास सट गए। अन देखे अनजाने की सारा खिंचाव होता गया।'[7] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कोई भी मनुष्य अपराध कृत से जुड़ने के लिए तत्पर नहीं होता परंतु एकबार उसे अपराध करने का चस्का लग जाता है तो वह उसी में फँसता जाता है। मेधिया कहता है– 'कसाई पहली बार बकरा काटते झिझकता है। जल्लाद किसी को सूली जब पहली बार देता है, उस दिन खाता नहीं खाता। ...मगर फिर उसे आदत पड़ जाती है। सब कुछ रोजमर्रा का काम। जितना ही निर्दय होफर काम करता है, उतना ही कामयाबी पर खुश, होता है।"[8]

राकेश कुमार सिंह कृत उपन्यास 'पठार पर कोहरा' में एक प्रसंग चित्रित है। गजली ठोरी गाँव में आये नये मास्टर संजीव को अपने घर में एक दिन रहने के लिए आश्रय देती है। परंतु उसे साहू की बताई बातें याद आने लगती है। साहू कहता है कि मास्टर जी एक कम्युनिस्ट है, इससे बचकर रहना – "रंगेनी तो व दुविधाग्रस्त हो उठी थी। कोमनिस उसे भी वैसा बुरा आदमी तो लगा नहीं अभी तक, जैसा साहू बताता है। साग–सातू जो भी परोसा, मन से खाता है कोमनिस। मुँह–खोलकर कभी कुछ....एक चुटकी नीमक तक नहीं माँगा कभी। आती–जाती रंगेनी को आँख उठाकर कभी ताका भी नहीं। फिर क्यों साहू कोमनिस के बारे में सूअर जैसा लेंड हगता रहता है?"[9]

शरद सिंह के उपन्यास 'पिछले पन्ने की औरतें' में मनेवैज्ञानिक तथ्य का उद्‌घाटन किया गया है। प्रत्येक

स्त्री की महत्वाकांक्षा सौभाग्यवती बनना ही होती है। इस अकांक्षा में नारी मनोविज्ञान निहित है। कौशल्याबाई अविवाहित है। बेडिया समुदाय के नियमों के अनुसार उसे माँग भरने का अधिकार नहीं है फिर भी वह ठाकुर के नाम का सिंदूर लगाती है। माँग में सिंदूर भरना उसके लिए अपना शौक पूरा करना है। यह शौक उसकी मनोदशा को दर्शाता है। लेखिका ने अपने इस उपन्यास में फ्रायड के यौन मनोविज्ञान का उल्लेख किया है। चंदा बेडनी सरपंच बन जाती है परंतु अंत तक वह बेडनी ही मानी जाती है। इस संदर्भ में लेखिका लिखती है– "वह राजनीतिक विकास के पन्नों के मुख्य पृष्ठों पर कभी नहीं आ पाई (अर्थात् उसे आने नहीं दिया गया) उसका 'स्व' उसका 'स्व–मोह' उसका 'अहम्' उसका 'इद' उसका 'अस्तित्व' उसकी 'वासना' रचनात्मकता की सीमा तक नहीं पहुँच पाई।"[10]

बेड़िया स्त्रियाँ देह व्यापार को सहर्ष स्वीकारती है। इसमें उन्हें कोई बुराई नहीं दिखती। इस व्यवसाय में अधिक कमाई होने के कारण वे कोई धंधा करना पसंद नहीं करती। बेडनियों को विवाह बंधन में बंधकर किसी एक की बनकर रहना भी पसंद नहीं है। उन्हें ना अपने आज की चिंता रहती है और ना अपने संतान के भविष्य की। बुंदेलखंड के बेडनियों के इलाके के आसपास के गाँव के ठाकुर जो बेडनियों से संबंध रखते हैं, उनकी पत्नियों को इस संबंध से कोई भाजत नहीं होती। लेखिका उन ठकुराइनों की मनःस्थिति को अभिव्यक्ति दी है, एक ठकुराइन कखिका से कहती है– 'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता... उनका वंश तो मेरी कोख से जन्मी संतान से ही चलेगा और दूसरी बात ये कि बेड़नियाँ भी बीवी की भांति बंधकर रहना पसंद नहीं करती हैं... वे एक की होकर रह ही नहीं सकती!"[11]

उपन्यास से शरद सिंह ने बेडिया स्तरियों का मनोवैज्ञानिक निरूपण क्रिया है। जब लिखिका शामा से वेश्यावृत्ति छोड़ने के लिए कहती है तो शामा कहने लगती है– "मैं बुरी औरत हूँ न? लेकिन बाई साहब, आप ही बताइए कि फोकट में कौन किसी को पैसा देता है? जिसके पास जो है वही बेचकर तो वह पैसा कमाएगा ना।"[12]

'भगवानदास मोरवाल कृत उपन्यास 'रेत' में' बाल मनोविज्ञान का निरुपण क्रिया गया है। पिंकी छोटी बालिका है। रुक्मिणी उसे बातों बातों में पूछ बैठती है कि तू बड़ी होकर क्या बनेगी? तो वह कहती है वह बुआ बनेगी। उसने कमला बुआ के ठाट–बाट को देखा है, इसलिए, वह भी बुआ बनना चाहती है। उस अबोध पिंकी को पता नहीं कि बुआ बनता यानी देह व्यापर करना है। जब वैद्यजी पिंकी से पूछते है कि वह बुआ क्यों बनना चाहती है? तो वह बहुत ही सहजता से उसका उत्तर देने लगती है–'बुआ रोज अच्छे–अच्छे कपडे पहनती हैं। लेट कर टी.वी. देखती है और बुआ के पास, जो अंकल आते हैं, वो कितना रुपया देकर जाता है।' इस प्रसंग से यह सिद्ध होता है कि छोटे बच्चें बड़ों का किस प्रकार अनुकरण करते हैं? उनका रहन सहन बालमन को कितना प्रभावित करता है।

किसी अनदेखे व्यक्ति, वस्तु, या समाज के संबंध में हमारे मन में अनेक कल्पित बिंब स्थापित हो जाते हैं। ये कल्पित बिंब उस व्यक्ति, वस्तु या समाज के संदर्भ में दूसरों से सूनी सुनायी बातों पर आधारित होती हैं।

रणेंद्र कृत 'ग्लोबल गाँव का देवता' उपन्यास में इसका उल्लेख मिलता है। कथाकार असूरों के इलाके के बारे में दूसरों से कही–सुनी बातों से असूरों के संबंध में मन में एक अलग बिम्ब बना लेते हैं। 'खूब–लम्बे–चौडे, काले–कलूटे, भयानक दाँत–वाँत निकले हुए, माथे पर सिंग–वींग लगे हुए लोग होंगे। लेकिन लालचन को देखकर सब उलट–पुलट हो रहा था। बचपन की सारी कहानियाँ घुम रही थी।"[13]

स्पष्ट है कि आदिवासी केन्द्रित इन उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। उपन्यासकारों ने विशेष रूप से नारी मनोविज्ञान पर जोर दिया है। पिंजरे में पन्ना की रम्या, नीलोफर की नथनी, अल्मा कबुतरी की कदमबाई और अल्मा, रेत की पिंकी और रुक्मिणी, पठार पर कोहरा की रंगेनी, पिछले पन्ने की औरतें की शामा ऐसे चरित्र हैं, जिनके मानसिकता को, जिनके अन्तद्वंद्व को उपन्यासकारों ने व्यक्त किया है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. पिंजरे में पन्ना – मणि मधुकर – पृ. सं– 152
2. पूर्ववत् – पृ. सं–55
3. धार – संजीव – पृ. सं. 40
4. काला पहाड– भगवानदास मोरवाल – पृ. सं. 324
5. पूर्ववत– पृ. सं. 324
6. जंगल जहाँ से शुरू होता है– संजिव – पृ. सं. 93
7. अल्मा कबूतरी मैत्रेयी श्पुष्पा – पृ.. सं. 136
8. पूर्ववत् –पृ. सं. 243
9. पठार पर कोहरा – राकेश कुमार सिंह – पृ. सं. 130.
10. पिछले पन्ने की औरतें – शरद सिंह – पृ. सं. 260
11. पूर्ववत्– पृ. सं. 94
12. पूर्ववत – पृ. सं. 19
13. ग्लोबल गाँव का देवता– रणेंद्र।

zakirhussaingulagundi@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 90-100

AN EVALUATION OF HEALTH AND PHYSICAL ACTIVITY STATUS OF THE TEACHERS OF PUNJAB BELONG TO DIFFERENT STREAMS

Dr. Harnam Singh
Assistant Professor, SHAHEED UDAM SINGH PANJAB UNIVERSITY CONSTITUENT COLLEGE GURUHAR SAHAI (FEROZEPUR)

ABSTRACT :-

The present study was conducted on teachers of Arts, commerce, and science streams in Punjab. The purpose of the study was to know the physical activity status of these teachers. There were 4767 teachers were examined under the supervision of the researcher. Through this study the researcher find the daily routine of the teachers in physical activity at the time of work, and physical activity at the time of leisure.

KEY WORDS :-

Physical activity, Exercise, physical activity at the time of work and physical activity at Leisure.

INTRODUCTION :-

"Health in the human organism is that condition that permits optimal functioning of the individual enabling him to live most and to serve most the personal and social relationship" (Williams, 1950).Health is a state of physical, mental, emotional, and social well being. Good health enables people to enjoy life and to have the opportunity to achieve the goals they have set for themselves. The real purpose of health is to develop and maintain vigour and vitality, to acquire interest and habits in ways of living that are wholesome and to meet the demands put upon an individual efficiently with energy and satisfaction. The concept of health has been summed up by J.F. Williams (1961), "Health is that quality of life which enables an individual to live most and serve best." Health can be achieved, maintained and improved by supplying the basic physical, mental, emotional and social needs in proper proportion. Now a day's health and its maintenance is being considered as a major social investment and it is being felt that health involves individual, state and national responsibility.Physical activity improves health and well-being. Physical activity involve into their everyday life; at home, at school, at work. For children, regular physical activity is essential for healthy growth and development. For adults, it allows daily tasks to be accomplished with greater ease and comfort and with less fatigue.

For seniors, weight-bearing physical activity reduces the rate of bone loss associated with osteoporosis. Regular physical activity also maintains strength, flexibility, balance, and coordination, and can help reduce the risk of falls.Physical activity is any body movement that works your muscles and requires more energy than resting. Walking, running, dancing, swimming, yoga, and gardening are a few examples of physical activity.

OBJECTIVE OF THE STUDY :-

- To ascertain the health and physical activity status of the different teachers of arts, commerce and science streams.

HYPOTHESIS :-

- There will be no significant differences on the variable of health and physical activity status of teachers among arts, commerce and science streams.

DESIGN OF THE STUDY :-

To investigate the health and physical activity status of the Punjab School Teachers working in different streams. A descriptive study has been designed in which survey method was adopted.

THE SAMPLE :-

By using random sampling 4767 teachers of high and senior secondary schools of Punjab were involved for obtaining responses on their health and physical activity status through questionnaire.

ANALYSIS TECHNIQUE :-

The data were collected through questionnaire and analyzed by using descriptive statistics where percentages and chi-square were worked out for interpretation.

FINDINGS

TABLE – 1

PHYSICAL ACTIVITY PROFILE OF TEACHERS BELONG TO ARTS, COMMERCE AND SCIENCE STREAMS AT THE TIME OF WORK

STREAMS	Low	Low moderate	Moderate	High Moderate	High	Chi-square value	P-value
ARTS (2272)	217 (9.6%)	258 (11.4%)	1205 (53.0%)	414 (18.2%)	178 (7.82%)		
COMMERCE (1063)	43 (4.0%)	260 (24.5%)	542 (51.0%)	188 (17.7%)	30 (2.8%)		
SCIENCE (1432)	92 (6.4%)	273 (19.1%)	779 (54.4%)	191 (13.3%)	97 (6.8%)	158.481	.000**

Chi-Square Tabulated value at 8 d f =15.51 at 5%, 20.09 at 1%

Highly Significant**(P<0.01)

Table- 1 indicated that the 9.6% teachers of Arts stream were active at low level of physical activity and 18.2% at high moderate level of physical activity and 7.82% teachers have done at high level of physical activity at the time of work. Further table showed that 24.5% teachers of commerce stream were reported low moderate activity at the time of work. On the other hand the teachers of arts and science stream were less active as compare to teachers of commerce stream. It is also reported from the table that 54.4% teachers of science stream were more active at moderate level activity at the time of work as compare to their counterpart commerce and arts teachers. The chi-square value was 158.481 and P-value was found highly significant.

Figure-1

PHYSICAL ACTIVITY PROFILE OF TEACHERS BELONG TO ARTS, COMMERCE AND SCIENCE STREAMS AT THE TIME OF WORK

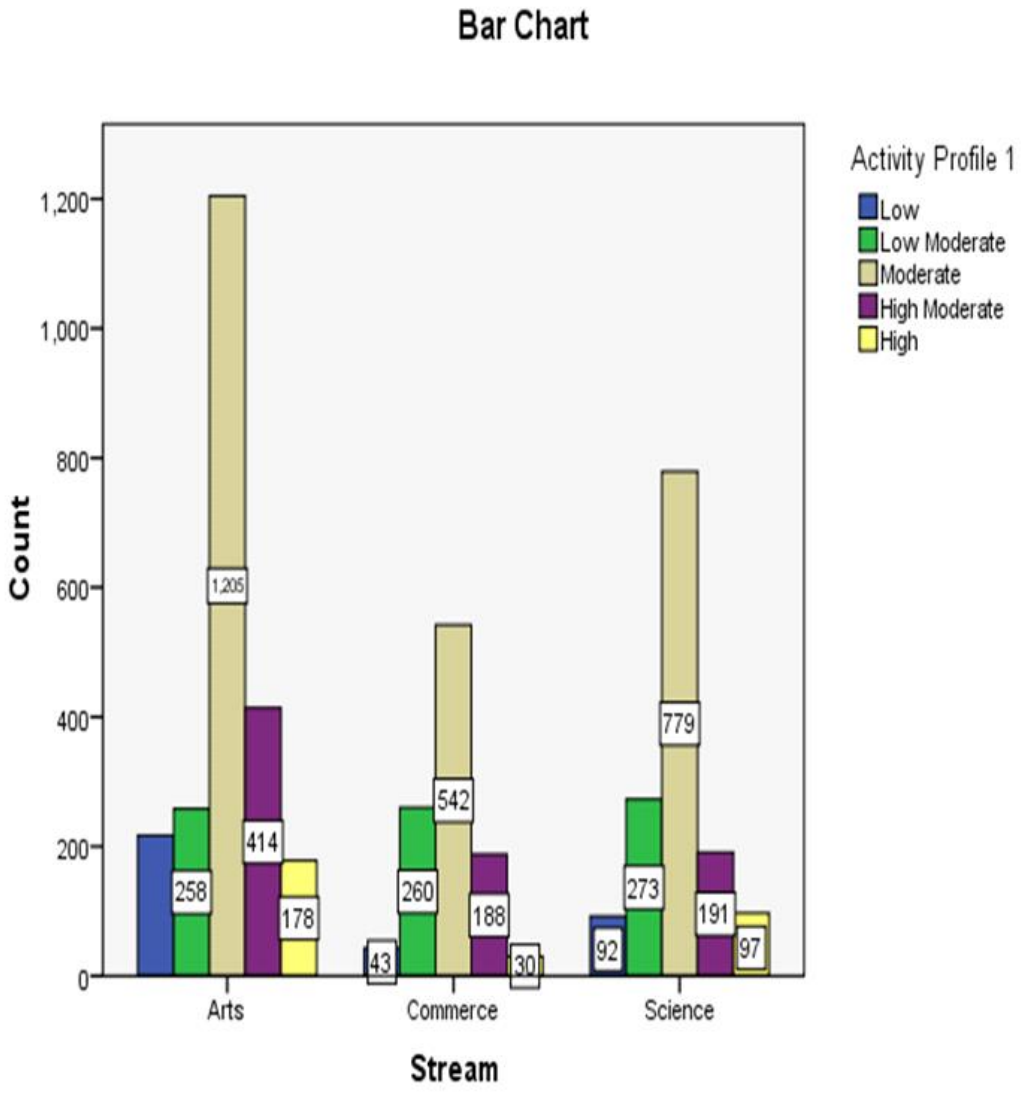

Figure-1.5 shows that the teachers of arts stream were doing low level, high moderate and high level of physical activity at the time of work. Figure further represents that the teachers of commerce stream were doing low moderate level of physical activity at the time of work. Teachers of science stream have shown their interest in moderate level of physical activity at the

TABLE- 2

PHYSICAL ACTIVITY PERFORMED BY SCHOOL TEACHERS OF DIFFERENT STREAMS AT THE TIME OF LEISURE

STREAM	Low	Low moderate	Moderate	High moderate	High	Chi-square	P-value
ARTS (2272)	90 (4.0%)	302 (13.3%)	1138 (50.1%)	589 (25.9%)	153 (6.7%)		
COMMERCE (1063)	8 (.8%)	88 (8.3%)	514 (48.4%)	343 (32.3%)	110 (10.3%)	85.246	.000**
SCIENCE (1432)	32 (2.2%)	135 (9.4%)	791 (55.2%)	349 (24.4%)	125 (8.7%)		

Chi-Square Tabulated value at 8 df =15.50 at 5%, 20.09 at 1%

Highly Significant**(P<0.01)

Table- 2 indicated that 13.3% and 50.1% teachers belong to Arts stream were reported low moderate and moderate level of physical activity at the time of leisure respectively. It is clear from the table that the teachers belong to arts stream were more active than teachers of the commerce stream at these levels of activities. Further table represents that 32.3% and 10.3% teachers of commerce stream were reported high moderate and high level of physical activity at the time of leisure respectively. So teachers of the commerce stream were more active as compare to teachers of arts and science streams. Further table has shown that 55.2% teachers of science stream have shown their interest in moderate type of physical activity at the time of leisure. The chi-square value was 85.246 and P-value was found highly significant.

Figure-2

PHYSICAL ACTIVITY PERFORMED BY SCHOOL TEACHERS OF DIFFERENT STREAMS AT THE TIME OF LEISURE

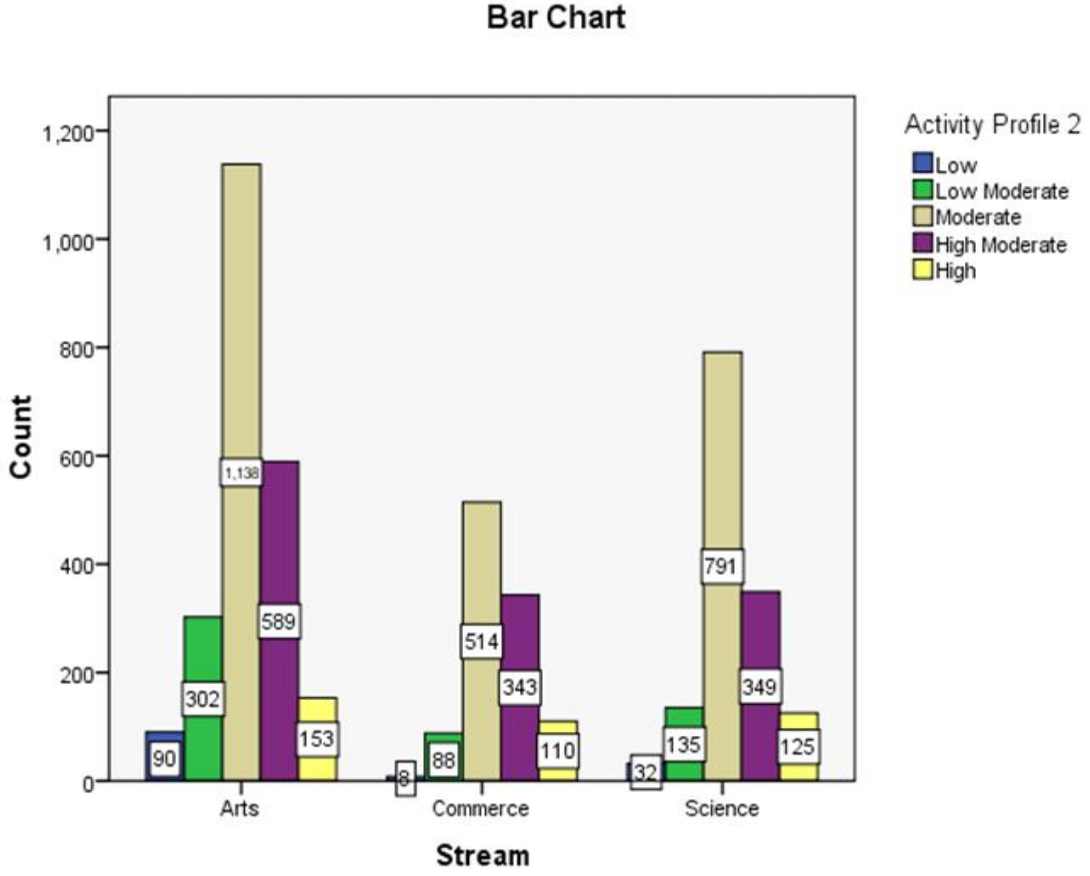

Figure 2 indicated that the teachers of arts stream were more interested in low level of activity and low moderate type activity at the time of leisure as compare to teachers of other streams. Teachers of commerce stream have shown their interest in high moderate and high level of physical activity at the time of leisure. Figure further represents that the teachers of science stream were more interested in moderate type of activity at the time of leisure.

TABLE – 3

CURRENTLY REGULAR EXERCISE PERFORMED BY TEACHERS BELONG TO ARTS, COMMERCE AND SCIENCE STREAM.

Streams	No	Yes	Chi-square value	P value
Arts (2272)	390 (17.2%)	1882 (82.8%)		
Commerce (1063)	118 (11.1%)	945 (88.9%)	20.66	.000**
Science (1432)	217 (15.2%)	1215 (84.8%)		

Chi-Square Tabulated value at 2 d f = 5.99at 5% ,9.21 at 1%
Highly Significant**(P<0.01)

It is clear from the table that the teachers of commerce stream had reported 88.9% exercise regularity. Further table represents that 84.8% and 82.8% teachers of science and arts stream were reported regularity in exercise respectively. It is observed from the table that the teachers of commerce stream were more active in exercise regularity as compare to teachers of arts and science stream. Chi-square was 20.66 and P-value was found highly significant.

Figure - 3

CURRENTLY REGULAR EXERCISE PERFORMED BY TEACHERS BELONG TO ARTS, COMMERCE AND SCIENCE STREAM.

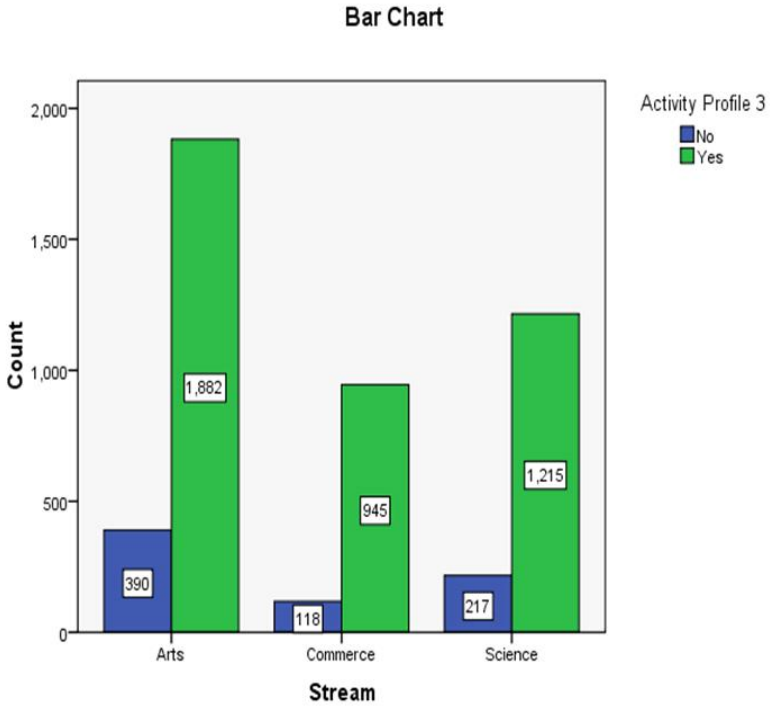

Figure 3 has shown that the teachers of commerce stream were doing maximum exercise regularity as compare to Arts and Science streams

TABLE – 4

EXERCISE PERFORMED IN A WEEK BY SCHOOL TEACHERS OF ARTS, COMMERCE AND SCIENCE STREAMS

Streams	1-2	3-4	5-6	>6	Chi-square value	P value
Arts (2272)	155 (8.2%)	444 (23.6%)	816 (43.4%)	467 (24.8%)		
Commerce (1063)	59 (6.2%)	222 (23.5%)	39 (42.1%)	266 (28.1%)	10.433	.108#
Science (1432)	106 (8.7%)	296 (24.4%)	482 (39.7%)	331 (27.2%)		

Chi-Square Tabulated value at 6 d f =12.59 at5%, 16.81 at 1%
Non-Significant #(P>0.05)

Table-4 indicated that 43.4% teachers belong to arts stream have done exercise 5-6 times in a week. Further table has shown that 28.1% teachers of commerce stream were doing exercise >6 times in a week. It is observed from the table that 8.7% and 24.4% teachers belong to science stream were doing exercise 1-2 times and 3-4 times in a week respectively. It is clear from the table that almost teachers belong to different streams having done exercise 5-6 times in a week. The chi-square value was 10.433 and P-value was found non- significant.

Figure - 4

EXERCISE PERFORMED IN A WEEK BY SCHOOL TEACHERS OF ARTS, COMMERCE AND SCIENCE STREAMS

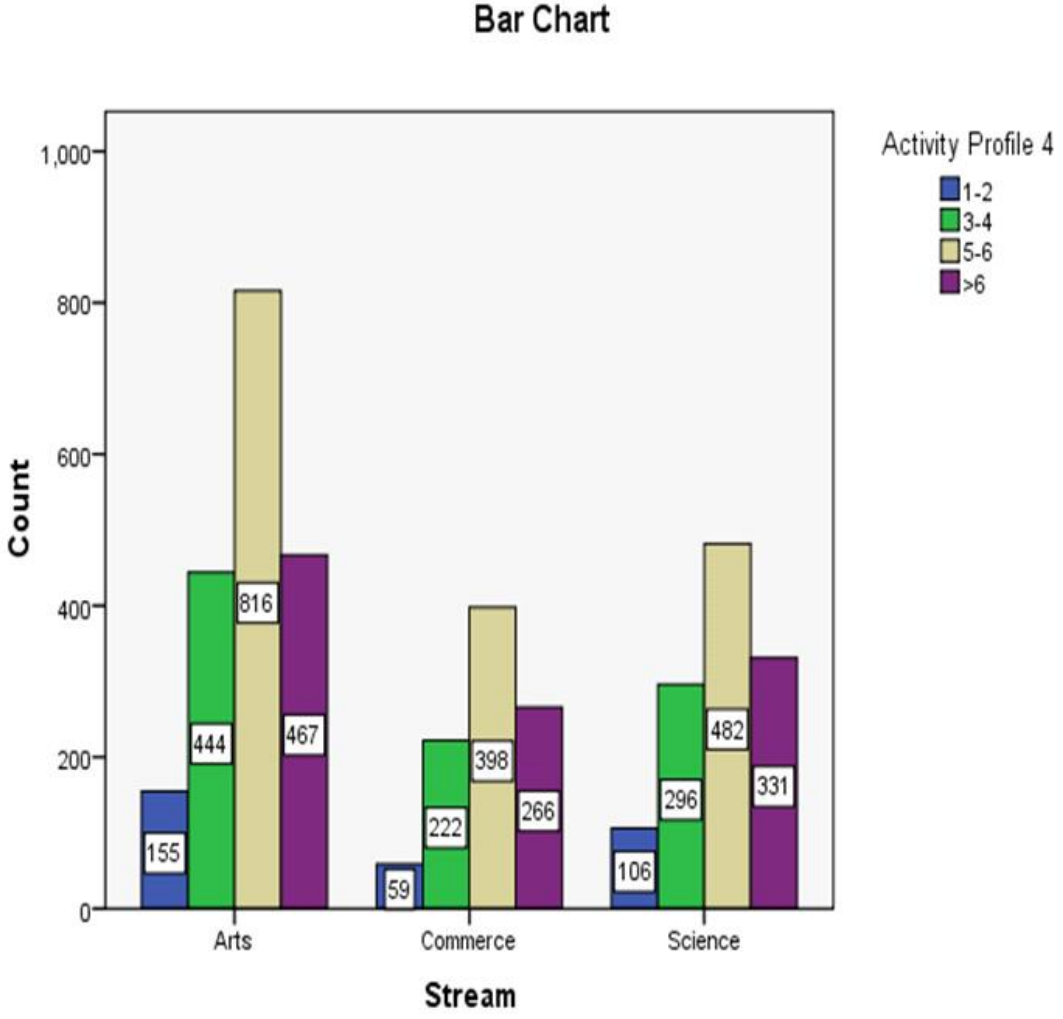

Figure 4 has shown that the teachers of Science stream had shown their more interest in exercise 3-4 times in a week. Further figure represents that the teachers of Commerce stream were doing exercise >6 times in a week .Teachers of Arts stream have shown their interest in exercise 5-6 times in a week.

TABLE – 5

DURATION OF EXERCISE TIME OF SCHOOL TEACHERS BELONG TO ARTS, COMMERCE AND SCIENCE STREAMS

Streams	<15	15-30	30-45	>45	Chi-square value	P value
ARTS (2272)	216 (11.5%)	807 (42.9%)	718 (38.2%)	141 (7.5%)		
COMMERCE (1063)	79 (8.4%)	485 (51.3%)	363 (38.4%)	18 (1.9%)		
SCIENCE (1432)	106 (8.7%)	532 (43.8%)	528 (43.5%)	49 (4.0%)	67.469	.000**

Chi-Square Tabulated value at 6 d f =12.59 at5% ,16.81 at 1%

Highly Significant**(P<0.01)

Table-5 indicated that 11.5% teachers of arts stream were reported exercise time for < 15 minutes duration of exercise. Further table has shown that 7.5% teachers of arts stream have shown their interest in >45 minutes duration of exercise. Further table represents that the teachers of commerce stream have done exercise for 15-30 minutes duration of exercise. Further table indicated that 43.5% teachers of science stream were reported exercise time for 30-45 minute duration of exercise. Majority of the teachers from arts, commerce and science stream were reported their exercise time for 15-30 minutes. The chi-square value was 67.469 and P-value was found highly significant.

Figure - 5

DURATION OF EXERCISE TIME OF SCHOOL TEACHERS BELONG TO ARTS, COMMERCE AND SCIENCE STREAMS

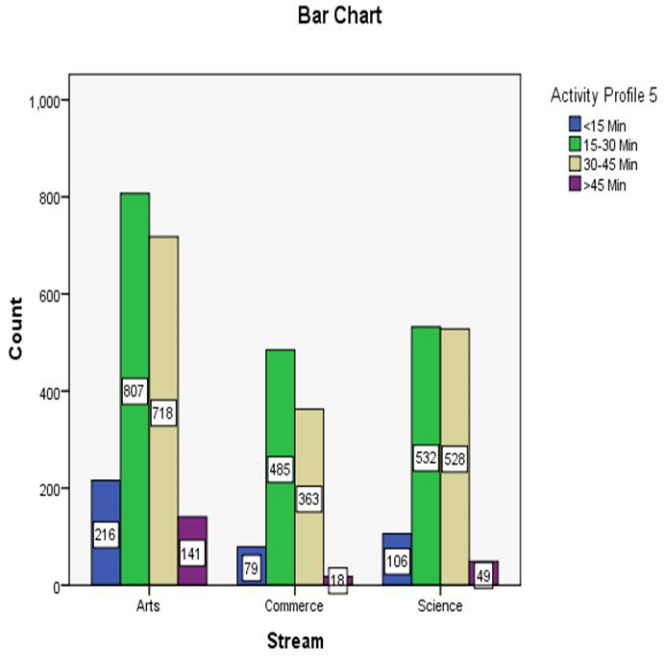

Figure-5 indicated that the few teachers of commerce, arts and science streams were reported exercise time >45 minutes and <15 minutes in a day respectably. Further figure represents that the majority of the teachers belong to different streams have shown their interest in doing exercise for 15-30 minutes in a day.

DISCUSSION :-

Results Further explained that the teachers of arts, commerce and science students were doing moderate level of physical activities at the time of work. But the teachers of arts and commerce were interested in high level of activity. Futher results obsereved that the teachers of arts were doing more activity than the other stream teachers. It is cleared from the results that the teachers of science streamed were showing their more interest in moderate level of physical activityat the time of the leisure. It' obsereved from the results that the teachers of commerce stream were interested in high level of physical activity at the time of leisure.

25% teachers of commerce and science streams were doing exercise more than six times in a week. Teachers of arts steam were doing exercise 5-6 times in a week.it is indicated that the teachers of science stream were doing exercise 30-45 minutes. Teachers of arts and commerce stream were shown their exposure im 30-45 minutes.

CONCLUSION :-

Almost 80% teachers were doing exercise regularly. Teachers of commerce stream were doing more execise regularly as compared to teachers of science and art streams. 9.6% teachers of Arts stream were active at low level of physical activity and 18.2% at high moderate level of physical activity and 7.82% teachers have done at high level of physical activity at the time of work. Further table showed that 24.5% teachers of commerce stream were reported low moderate activity at the time of work. On the other hand the teachers of arts and science stream were less active as compare to teachers of commerce stream. It is also reported from the table that 54.4% teachers of science stream were more active at moderate level activity at the time of work as compare to their counterpart commerce and arts teachers. The chi-square value was 158.481 and P-value was found highly significant.

REFRENCES :-

1. Bounchard C., Shephard R.J., Stephens T.Eds. (1993). Physical activity, Fitness and Health : A consensus of current knowledge Champaigne, I L: Human Kinetics.
2. Bakshi, Vinod K. (2001). "Assessment of health related physical fitness school students belonging to Jammu province". Unpublished Doctoral Thesis Panjab University, Chandigarh.
3. Caseperson' C.J; powell, K.E;Christenson, G.M;(1985) "Physical activity exercise and physical fitness", Public Health Reports;100: 125-131.
4. Chenoweth , H. David (1998) "Worksite health promotion". Human Kinetics 29-32.

5. Chaudhry Ravinder and Zamirullah Khan (1998). Physical Education Book "Occupational Health" Page No.117.
6. Corrigan, A.E (1992) A descriptive analysis of corporate health health promotion activity evaluations. <http://darkwing.uoregon.edu/niishp/>
7. Kaur, Amandeep(2011) "Appraisal of eating disorders, health and physical activity status of Punjab school teachers."
8. Keays J. John, Allison R. Kenneth (1995) "The effects of regular moderate to vigorous physical activity on students outcomes: A reviews".. Canadian Journal of Public Health volume 86
9. Kumar, Ashok (2001) " Assessment of health and physical activity status if Panjab University Employees" Unpublished Master's thesis. Panjab University Chandigarh.
10. Macera C.A and Prat M. public health surveillance of physical activity. 2000 volume 71, No.2, pp.97-103.
11. Paffenbarger R.S; and Hale, R.T; Wing, A.L;Hsieh, C.C; (1986) " Physical activity all causes morality and longevity of college alumni", The New England Journal of Medicine;314:605-613.

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 101-104

आधुनिक समस्याएँ और वेदान्त चिन्तन

डॉ. जोगेन्द्र कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, बी.एल.जे.एस. महाविद्यालय, तोशाम (भिवानी)

वेद भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि हैं। इस वेद रूपी वृक्ष की 'ब्राह्मण' यदि शाखाएँ हैं तो आरण्यक उन शाखाओं के पुष्प हैं। अतः निस्सन्देह उस आरण्यक रूपी पुष्प की सुगन्ध 'उपनिषद्' ही हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि प्राचीन काल में ऋषियों ने जो बीज आरण्यकों में बोया था, वही उपनिषदों में पुष्पित व पल्लवित हुआ है। वेद के अन्तिम भाग होने के कारण इन्हें वेदान्त के नाम से अभिहित किया गया है।

वर्तमान भौतिकवादी संस्कृति की अन्धी दौड़ में मनुष्य अधिक से अधिक धन संग्रह करने की अन्तहीन लालसा के कारण मानवीय मूल्यों एवं नैतिक आदर्शों को भूलता जा रहा है तथा येन केन प्रकारेण धन को प्राप्त करना चाहता है जिसके लिए वह चोरी, डाका, हत्या, अपहरण, रिश्वत, घोटाले आदि से भी नहीं चूकता। परिणामतः भाई– भाई का शत्रु हो गया है। परिवार खण्डित हो रहे हैं। पुत्र पिता का निःसंकोच वध कर रहा है। पति–पत्नी तथा भाई– बहनों का पारस्परिक द्वेष बढ़ रहा है। गुरु– शिष्य के रिश्ते तार– तार हो रहे हैं। त्याग, समर्पण, दया, ममता, प्रेम आदि का स्थान ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, निर्ममता एवं स्वार्थ ने ले लिया है। समाज में चारों ओर भ्रष्टाचार तथा विभिन्न अपराधों को जन्म देने वाली प्रवृत्ति इस कदर बढ़ गई है कि व्यक्ति वैध या अवैध तरीके से अल्प परिश्रम के माध्यम से शीघ्र ही धनवान् बनना चाहता है। इस प्रकार अनेक समस्याएँ अपना विकराल रूप धारण कर मानव को नष्ट कर रही हैं। इस प्रकार की समस्याओं का निदान निस्संदेह वेदान्तों में निहित है। अतः वेदान्त चिन्तन परमाश्यक है। प्रस्तुत शोध– पत्र में इसी प्रकार के कतिपय बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है।

कर्मविहीन अर्थार्जन की भूख एवं लोलुपता :-

आज मनुष्य भौतिक चकाचौंध में इतना अन्धा हो गया कि उसे मन की शान्ति और जीवन की खुशियाँ दिखाई नहीं देती। मनुष्य भौतिक सम्पत्ति प्राप्त कर सुख–शान्ति प्राप्त करना चाहता है किन्तु वह सुख–शान्ति से उतना ही दूर चला जाता है जिससे वह तनाव व अशान्ति का कारण बन जाता है। क्योंकि इस समस्या का समाधान धन सम्पत्ति के पास नहीं है। बृहदारण्यकोपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य मैत्रेयी को उपदेश देते हुए कहते हैं कि धन ऐश्वर्य से जीवन में सुविधा हेतु सामग्री एकत्रित कर लोगे किन्तु मन की शान्ति और आत्मिक आनन्द धन से नहीं मिलेगा।

यथैव उपकरवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यात्– अमृतत्त्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन[1]। इसी सन्दर्भ में कठोपनिषद् में नचिकेता और यम का प्रसंग आता है जिसमें नचिकेता यम से मृत्यु के रहस्य को जानना चाहता

है तो यम उसे भौतिक ऐश्वर्य का प्रलोभन देता हुआ कहता है कि हे बालक नचिकेत! तू संसार का भौगेश्वर्य माँग ले, परन्तु मृत्यु के रहस्य को मत पूछ[2]। यह सुनकर नचिकेता धनैश्वर्य की निस्सारता एवं तुच्छता के बारे में यम से कहता है– हे यमराज! ये संसार के भोग आज हैं, कल नहीं होंगे। भोग भोगने से शरीर शीघ्र ही जीर्ण हो जाता है। यह सारा जीवन भी बहुत थोड़ा ही है। इसलिए यह सब कुछ मुझे नहीं चाहिए[3]। मनुष्य के पास कितना ही धन हो फर भी वह सन्तुष्ट नहीं होता 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः[4]। परिणामतः जिस धनैश्वर्य को पाने के लिए भ्रष्टाचार, अत्याचार, अपहरण, डकैती, पारिवारिक वैमनस्य आदि समस्याएँ उत्पन्न कर रहे हैं उनका समाधान उपनिषद् धन– सम्पत्ति में नहीं बताते। केनोपनिषद् कहता है –'इह चेदवेदीद् अथ सत्यमस्ति न चेदवेदीद् महती विनष्टिः'[5] अर्थात् यहाँ की भौतिक संस्कृति की सारी सुविधाएँ यहीं रह जाएंगी और तुम्हें खाली हाथ जाना पड़ेगा। यह भी नहीं है कि वैदिक संस्कृति धन एकत्र करने का निषेध करती है अपितु सुकर्म से धन संचय का निर्देश भी देती है। वैदिक ऋषि देवताओं से 'वयं भगवन्तः स्याम'[6] कहकर धन की कामना तो करता है किन्तु उसे जीवन का प्राथमिक लक्ष्य नहीं बनाना चाहता। ईशावास्योपनिषद् धन की कामना करता हुआ कहता है 'अग्ने नय सुपथा राये[7]' हे अग्ने! हमें महान् धन–ऐश्वर्य के लिए श्रेष्ठ मार्ग पर ले चल कहकर धनार्जन के लिए सन्मार्ग पर चलने का निर्देश देता है।

वर्तमान भौतिकवादी युग में जब धन की तृष्णा ने सभी पुरुषार्थों को आक्रान्त कर लिया है तब त्यागपूर्वक भोग की उदात्त भावना ही लूटपाट आदि समस्याओं पर अंकुश लगा सकती है। इसी त्याग संस्कृति का निर्देश देता हुआ ईशावास्योपनिषद् 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्'[8] के सिद्धान्त को सर्वोपरि बताता है तथा किसी के धन की इच्छा न करने का निर्देश भी देता है। यदि उपनिषदों के ये वाक्य मनुष्य आत्मसात् कर ले तो वह कभी भी भ्रष्टाचार में लिप्त नहीं हो सकता और न ही लूटपाट आदि किसी जघन्य अपराध में शामिल होता। गलत तरीके से अर्जित धन संकट का कारण होता है। कठोपनिषद् में अशुद्ध धन हेतु कहा गया है कि धन के मोह में उचितानुचित को भूल जाने से लोक और परलोक का ज्ञान नहीं रहता[9]। अतः सदा परिश्रम एवं ईमानदारी से ही धनार्जन करना चाहिए। परिश्रम करके सैकड़ों हाथों से कमा और हजारों हाथों से दान कर की उदात्त भावना अथर्ववेद में मिलती है 'शतहस्त समाहर सहस्र हस्त संकिर'[10] यहाँ हजारों हाथों से दान कर का अभिप्रायः अर्जित धन को हजारों योजनाओं में लगाने का आह्वान करता है ताकि आर्थिक विषमता की समस्या का समाधान भी हो सके। यही सत्य धर्म है। यही ईश्वर की सच्ची उपासना है। लेकिन यह सत्यता मनुष्य को तब तक दृष्टिगोचर नहीं होती जब तक उसकी आत्मा अशुद्ध धनार्जन में लिप्त रहती है वह तभी दिखाई देती है जब वह अपनी आत्मा के ऊपर से स्वर्ण पात्र को अर्थात् धन लोलुपता का आवरण हटा देता है––

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्येपिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।[11]

इस प्रकार वेदान्तों का स्पष्टतः कथन है कि मानव को ऐसे कर्तव्य मार्ग पर चलना चाहिए जो सर्वहितकारी एवं समस्या रहित हो। अतः कर्तव्य पालन के लिए कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए– 'धर्मान्न प्रमदितव्यम्[12] संकट की स्थिति में भी मनुष्य गर्हित कर्म से दूर रहकर श्रेष्ठ कर्म ही अपनाएँ। श्रेष्ठ कर्मों को ही जीवन मानते हुए सौ वर्षों तक जीने की कसमना करता हुआ ईशावास्योपनिषद् कहता है– 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेच्छतं समाः'[13] क्योंकि शुभकर्म ही जीवन को सफल बनाते हैं। अतः मनुष्य जीवन पर्यन्त आलस्य, निराशा

व निष्क्रियता को त्यागकर सौ वर्ष तक कर्मशील एवं पुरुषार्थी बने रहने का सन्देश देता है।

परिवार विघटन की समस्या :-

आज हम प्रतिदिन देखते, सुनते एवं समाचार–पत्रों में पढते हैं कि पति–पत्नी का तलाक हो गया। पुत्र ने पिता को मौत के घाट उतार दिया एवं गुरु–शिष्य के बिगड़ते सम्बन्ध आदि अनेक समस्याएँ समाज में व्याप्त हैं। इन सभी समस्याओं का समाधान कठोपनिषद् के इस मन्त्र में द्रष्टव्य है– 'ध सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवाव है। तेजस्विनावधितमस्तु मा विद्विषावहै'[14] अर्थात् हे परमात्मा हम दोनों की साथ– साथ रक्षा करें। हमारा साथ–साथ पालन करें। हम साथ–साथ विद्या प्राप्त करें। हमारा अध्ययन किया हुआ तेजस्वी हो तथा हम आपस में द्वेष न करें। माता, पिता, गुरु को देवतुल्य मानने का सन्देश देता हुआ तैत्तिरियोपनिषद् का कथन है 'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव'[15]। पुत्र को पिता के अनुकूल होना चाहिए[16]। भाई–भाई से तथा बहन–बहन से कभी द्वेष न करें[17]। परन्तु वर्तमान में ये समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु कठोपनिषद् का उद्घोष है– 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत[18] उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो।

सत्यवादिता एवं समता का अभाव :-

वेदान्त दर्शन जहाँ पुरुषार्थ एवं पारस्परिक प्रेम को महत्त्व देता है वहीं सत्यवादिता को मानव कल्याण के लिए आवश्यक मानता है। आज मनुष्य असत्य का आश्रय लेकर महान् अकरणीय कर्म करता है। सही को गलत और गलत को सही ठहराने के लिए मिथ्या वचन कहने में बिल्कुल नहीं हिचकता। सम्भवतः मुण्डकोपनिषद् का 'सत्यमेव जयते नानृतम्'[19] यह प्रसिद्ध वाक्य उसे स्मरण नहीं रहता। वह नहीं जानता कि ईश्वर प्राप्ति का मार्ग सत्य से ही व्याप्त है 'सत्येन पन्था विततो देवयानः[20]। 'नायमात्मा बल हीनेन लभ्यः[21]। बलहीन को आत्मलाभ नहीं होता। परन्तु जो तप, श्रद्धा आदि साधनों से युक्त सत्यमार्ग पर चलते हैं वे ब्रह्मधाम को प्राप्त करते हैं। यजुर्वेद में प्रार्थना की गई है कि मैं वाणी में सत्य को प्राप्त करूँ[22]। सम्पूर्ण शक्तियाँ मेरी रक्षा करें तथा मुझे सत्य में तत्पर रहने की शान्ति प्रदान करें[23]। बृहदारण्यकोपनिषद् सत्य को ही ब्रह्म कहता है– 'सत्यं ब्रह्म'[24]। परन्तु अद्यत्वे मनुष्य अधिक से अधिक धनाढ्य होने एवं सुख सुविधा के साधन जुटाने में छल–प्रपञ्च, लूट, रिश्वत एवं असत्य का सहारा ले रहा है। अतः मानव धर्म की शिक्षा देता हुआ तैत्तिरीयोपनिषद् कहता है– 'सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः'[25]।

वर्तमान काल में समाज में समत्व की भावना समाप्त प्रायः हो रही है। जिसके कारण व्यभिचार, जातिवाद, पारस्परिक द्वेष की भावना एवं घृणा आदि विषम परिस्थितियां जन्म ले रही हैं जिससे राष्ट्र के विकास में अनेक बाधाएँ उपस्थित हो गई हैं। इनका समाधान समत्व भाव में निहित है। ईशावास्योपनिषद् का यह मन्त्र समत्व भाव को दर्शाता है–

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते[26]।।

अर्थात् जब व्यक्ति सभी प्राणियों को अपने में तथा अपने को सभी प्राणियों में देखता है तब वह किसी से घृणा नहीं करता। इसी प्रकार अन्यत्र कहा गया है कि जिस समय पुरुष के लिए समस्त प्राणी ही अपने हो गए उस समय एकता की अनुभूति रखने वाले उस विद्वान् को मोह और दुःख नहीं सताते।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहरू करू शोक एकत्वमनुपश्यत।।[27]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समाज में व्याप्त समस्याओं का कारण वेदान्तों के प्रति हमारी अज्ञानता ही है। वेदान्तों में निहित शाश्वत व अक्षुण्ण ज्ञान की विमुखता हमारे जीवन को अंधकारमय बना रही है। कर्मप्रधान संस्कृति की बजाए भोग की संस्कृति ने जन्म ले लिया है। उसी का दुष्परिणाम वर्तमान भौतिकवादी समाज भुगत रहा है। अतः आधुनिक समस्याओं के समाधान हेतु वेदान्त चिन्तन अनिवार्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। यदि मानव वेदान्त के सिद्धान्तों को अपने जीवन में समाहित करे तो यह धरा स्वर्गतुल्य हो जाएगी तथा मानव व राष्ट्र का कल्याण होगा।

सन्दर्भ सूची :-

1. बृहदारण्यकोपनिषद् 2.4
2. कठोपनिषद् 1.1.20–25
3. कठोपनिषद् 1.1.26
4. कठोपनिषद् 1.1.27
5. केनोपनिषद् 2.5
6. यजुर्वेद 34.38
7. ईशावास्योपनिषद् 1
8. ईशावास्योपनिषद् 1.2.6
9. कठोपनिषद् 1.2.6
10. अथर्ववेद 3.24.5
11. ईशावास्योपनिषद् 15
12. तैत्ति. उ. 1.1
13. ईशावास्योपनिषद् 2
14. कठोपनिषद् 2.3.19
15. तैत्ति.उ. 1.11.23
16. अणुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमना।
    जाया पत्ये मधुमतीं वदतु शान्तिवाम्।। अथर्ववेद 3.30.2
17. मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
    सम्यञ्च सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।। अथर्ववेद 3.30.3
18. कठोपनिषद् 1.3.14
19. मुण्डकोपनिषद् 3.1.6
20. मुण्डकोपनिषद् 3.1.6
21. मुण्डकोपनिषद् 3.2.4
22. यजुर्वेद 39.4
23. यजुर्वेद 20.11–12
24. बृहदारण्यकोपनिषद् 5.4.1
25. तैत्ति.उ. 1.11.1
26. ईशावास्योपनिषद् 6
27. ईशावास्योपनिषद् 7

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 105-108

AN ANALYSIS OF THE IMPACT OF CHANGE IN TECHNOLOGY AND LABOUR SUPPLYBY USING CLASSICAL FULL EMPLOYMENT MODEL

REENA (M.A., NET, Ph.D.) Dept. Economics
V.P.O. BAGANWALA, Teh.-Tosham (Bhiwani)

INTRODUCTION :-

Though the classical full employment model does not explain fluctuations in economic activity as it assumes quick adjustment of wages and prices to equate demand and supply, it is useful for explaining the effect of changes of in various real factors such as a change in technology, increase in labour supply on labour, product and capital markets, especially in the long run. In the long run wages and prices adjust to balance demand and supply and thereby clear the markets. The study of classical theory is more important to the conditions prevailing in the developing countries and this theory highlight those factors which govern income and employment in these countries. While Keynes theory emphasis the role of effective demand in the determination of income and employment, and classical theory believes that in a free market economy there was always a tendency towards the establishment of full employment of labour and there is sufficient demand for the output produced. Thus, full-employment model makes general equilibrium analysis of the economy. In this paper full employment model is used to explain the effects of change in two things :

- The effect of change in technology (e.g., the introduction of computers in providing various services in the economy,).
- The effect of increase in supply of labour.

Classical theory of employment and output is based on the following two basic notions: say's law and wage-price flexibility.

This implies that every increase in production made possible by the increase in the production capacity or the stock of fixed capital will be sold in the market and there will be no problem of lack of demand. Thus , classical economists rule out the possibility of overproduction, there being no problem in selling the output produced. According to Say's law, greater production automatically leads to a greater money income which creates the market for the greater flow of good produced. Thus, deficiency in demand being no problem, the process of capital accumulation and expansion of

production capacity will continue till all people are employed and there is no reason why the production capacity created remains unutilized or underutilized. According to this theory, the income which is not spent on consumer's goods and thus saved will become investment expenditure.

Wage-price flexibility and full employment :-

According to them, the amount of production which the business firms can supply does not depend only on aggregate demand or expenditure but also on the price of products. When aggregate demand for goods and services declines due to fall in investment, the economy will still remain at full-employment level of output. According to them, this happen because product prices fall quickly so that quantity demanded increases to restore equilibrium at full employment level of output.

In this way, they expressed the view that in spite of the decline in aggregate demand caused by the decline in investment, the real output, income and employment will not fall because the fall in prices of products brings about balance between demand and supply at full employment level of output.

During the period 1929-1933 when there was a great depression in capitalist economies, a renowned neoclassical economists, A.C. Pigou suggested a cut in wage rates in order to remove huge and widespread unemployment prevailing at that time. According to him the cause of depression and unemployment was that the government and trade union of workers were preventing the free working of the capitalist economies and were artificially keeping the wage rate at high levels. He expressed the view that if the wage rate were cut down, demands for labour would increase so that all would get employment. It is important to mention here what has been called Pigou effect. Pigou pointed out that all-round cut in wage will cause price level will fall. The fall in price level will lead to increase the real value of money assets such as stock of money, deposit in banks, bonds of government or private companies held by them. this implies that due to fall in price level, the purchasing power of their money assets will increase. As a result they would feel better off or richer which would lead to their consumption demand for goods and services will prevent the fall in any aggregate demand due to all round cut in wages. However, critics have pointed out that effect of increase in real money balance on consumer's demand for goods and services in quantitatively insignificant and one cannot rely on this to create enough demand to counteract the fall in demand for goods and services as a result of all round cut in wages. He brought about a fundamental change in economics thought regarding the determination of income.

THE EFFECT OF CHANGES IN TECHNOLOGY

- **IMPACT ON REAL WAGES :**

The use of new improved technology, for example, the introduction of use of computers makes the workers more productive and therefore results in increase in their marginal products. This will cause increase in quantity demanded of workers at each real wage rate and bring about a shift in the labour demand curve to the right.

- **IMPACT ON OUTPUT :**

With the introduction of new technology as the productivity of workers increases the short run production function shifts upward. However, the product market equilibrium can be maintained at full employment level if aggregate demand increases sufficiently so that the firms are able to sell this new higher level of output. This can happen only if the real interest rate adjusts to equate savings and investment in the capital market. With this adjustment in real interest rate both investment and saving will increase to reach new equilibrium at full-employment level of output. At each real rate of interest, investment will increase as the introduction of new technology will open up new profitable opportunities for investment. Besides, as full-employment income and real wage rate increase, they will cause rise in both consumption and saving depending upon marginal propensity to consume. As a result, saving curve will shift will shift to the right and in the new equilibrium real interest can either rise, remain the same or fall depending upon the extent of shift in the investment and saving curves. However whatever be the effect on the real interest rate investment will certainly increase.

It explains the current or short-run effects of new technology and investment induced by it. There will be more future effects in the long run of introduction of new technology and as a result of increase in investment. As more plant and equipment come into existence as a result of enhanced investment, this will lead to the increase in future productive capacity which will generate higher economic growth.

EFFECT OF INCREASE IN LABOUR SUPPLY

Labour supply can increase as a result of –natural rate of population growth, increase in labour force participation rate, and immigration of labour to a country. Let us assume that labour force increases due to rise in labour force participation rate. Labour force participation rate has generally increased due to rise in participation of women in labour force.

IMPACT ON LABOUR MARKET AND REAL WAGE

The effect of increase in labour supply due to rise in labour force participation rate or growth of population. For simplifying the analysis in this paper labour supply curve as a vertical straight line. It becomes profitable for the firm to increase the demand for the labour so as to become equal to the new labour supply.

IMPACT ON CAPITAL MARKET

Now, with the increase in output as a result of increase in labour supply incomes of the people will increase leading to the increase in both consumption and saving at each level of real rate of interest. As this will cause the saving curve to shift to the right, it will affect the capital market equilibrium.

REFERENCE :-

1. Shmuel San, (2021), "Labour Supply and Directed Technical Change: Evidence from the Termination of the Bracero Program in 1964".
2. Peter McDonald, Rebecca Kippen, (2001), "Labour Supply Prospects in 16 Developed Countries, 2000-2050".
3. Darvon Acemoglu,.(2000), "Labour And Capital Augmenting Technical Chang", National Bureau of Economic Research.
4. Robert E. Hall, "Labour Demand, Labour Supply, and Employment Volatility", Hoover Institute and Department Of Economics, Standford University And NBER.
5. Ashima Goyal, (2006), "Distant Labour Supply, Skills and Induced Technical Change", Indira Gandhi Institute of Development Research, Mumbai.
6. Daron Acemoglu, (2000) "Technical Change, Inequality and the Labour Market", National Bureau of Economic Research.
7. Alan Manning, (2004), "We Can Work it Out: The Impact of Technological Change on the Demand for Low-Skill Workers", CEP Discussion Paper No 640.
8. H.L. Ahuja, S. Chand, (20th edition), "Macroeconomics Theory and Policy"

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 109-111

माखनलाल चतुर्वेदी - गद्य शैली

सुनिता (एम.ए., पी.एच.डी.), नेट व जे.आर.एफ
गांव बागनवाला, तहसील तोशाम, जिला भिवानी–127040

हिन्दी भाषा के जाने माने नाटककार, पत्रकार, निबंधकार, कहानीकार है माखनलाल चतुर्वेदी जी। इन्होने गद्य साहित्य की कई विधाओ को सर्मद्ध किया है। साहित्य देवता के प्रकाशन में विद्धानों का ध्यान आपके गद्य साहित्य की और आकृष्ट हुआ। आपने इसे निबंध साहित्य व गद्य गीत दोनों की मर्यादा में बांधने की चेष्टा की गयी है। वस्तुतः यह कृति राष्ट्रीय संघर्ष के तेज से मंडित एक भारतीय अस्या का भावोच्छवास है। माखनलाल चतुर्वेदी के पुरे गद्य साहित्य में उनका व्यक्तित्व छाया हुआ है। उनकी गद्य–शैली हिन्दी गद्य का गौरव है। ठाकुर रामअधार सिंह की गद्य शैली पर अपनी सहमती देते हुए, पंडित नन्दुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि 'सच पूछिए तो मैं आपके गद्य को भी काव्य की श्रेणी में रखता हुँ।'[1]

'भारतीय आत्मा' माखनलाल चतुर्वेदी जी प्राय वैसा ही गद्य लिखते है। निस्संदेह माखनलाल जी के गद्य का स्वरूप बहुत कुछ काव्यात्मक है। 'साहित्य देवता' गद्य– साहित्य सा प्रतीत होता है। लेकिन कहानियां की गद्य शैली में आमूल परिवर्तन लक्षित होता है। कहानियों के गद्य में लोक–जीवन की सरलता, सरसता तथा व्यंग्यात्मकता आ गई है। वाक्य भी छोटे–छोटे हो गए है। बीच–बीच में ग्राम्य भाब्दों का सजीव प्रयोग किया गया है। इनमें आवेशमय भावुकता न हाकर सघन वैचारिक अभिव्यंजना –शक्ति आ गयी है। स्वयं माखनलाल चतुर्वेदी ने इस प्रकार की भाषा को साहित्यिक स्वाद के लिए उतम उपयुक्त माना है। उन्होने लिखा है कि 'साहित्य में जहां स्वाद आता है, भाषा जहां अनेकार्यवती होती हैं, वे स्थल है– मुहावरों, पहेलियां, लोकोक्तियों और कहावतो के उपयोग के। भारत में भाशा का यह वैभव हमें कदाचित गावों ने अधिक दिया था।'[2]

चतुर्वेदी की गद्य शैली के इन प्रमुख दो रूपों के अतिरिक्त यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाए, तो व्यक्तिव और स्थिति भेद से उसके अन्य कई रूप भी लक्षित होते है। इनमें प्रमुख है :–

क	कलात्मक गद्य– शैली	ख	लोक–जीवन की गद्य– शैली
ग	भावात्मक गद्य– शैली	घ	व्यंग्यात्मक शैली
ड़	विचारात्मक –शैली	च	भाश्ष्ण–शैली

'साहित्य देवता' में आपकी भावात्मक गद्य–शैली का पूर्ण विकास लक्षित होता है। भाषणों में विचारात्मक गद्य शैली तथा भाषण शैली दोनो ही प्रकार देखे जा सकते है। कहानियों में कलात्मक व्यंग्यात्मक, ग्राम्य तीनों ही प्रकार की शैलियों प्रकट हुई है। आपके कलात्मक गद्य का एक नमूना –

'सडक पर के बाजे ने कहा –

'फूल है, फल है, पती है, सुगंध है, स्वाद है, स्वास्थ्य है, शिव है, सौंदर्य है और सत्य दुकानों पर, मोल–तोल के साथ धुम–धाम से बिक रहा है, नागर है, मन है, मनोज है, मनोहरा है'।[3]

उपर्युक्त पंक्तियों में पद्य का प्रवाह और अनुप्राय की बहार एक साथ देखी जा सकती है।

भावात्मक शैली तो चतुर्वेदी जी की जैसी अपनी सहज शैली बन गयी है। 'साहित्य देवता, के प्रत्येक निंबध में इन शैली को लक्षित किया जा सकता है। समय के पॉव के संस्मरणों में भी यह शैली अपनी सभी मौलिक विशेषताओं के साथ विद्यमान है। कविवर पंत के विशय चतुर्वेदी जी का भावोच्छवास दर्शनीय है।– 'उसके गान में पर्वत का वैभव, निर्झर का शैशव और वन की मस्ती है। उसमें मधु है, शराब नहीं, आकर्षण है, तीव्रता नहीं जिसका अंग–अंग झंकार, जिसका रोम–रोम कम्पन है, जो रूप का स्वर और स्वर का रूप है।'[4]

व्यंग्यात्मक शैली का एक मार्मिक उदाहरण' कच्चा रास्ता' कहानी के अंत में देखा जा सकता है। –तब मैने पूछा तुझे हमारे आने की याद कैसी रहेगी–रामधन आंखों में आसू भरकर अपने मोहना बैल की पीठ पर उस जगह हाथ फेरने लगा, जहां मेरा डंडा पड़ा था। 'मनुष्यता की दृष्टि से साधारण ग्रामीण उनसे कही अच्छा है। इस प्रकार यह पूरी कहानी आधुनिक आडम्बर प्रिय नेताओं के उपर एक करारा व्यंग्य है।

विचारात्मक शैली का एक नमूना देखिए–' पहुंच का दुसरा नाम निर्णय है। चाहे व जगदीश चंन्द्र की हो, चाहे रवीन्द्र की हो चाहे गांधी की। निर्णय, साहित्य का पथ– प्रदर्शन, जीवन का दिशा, दर्शन और सूझ का स्वरूप– दर्शन है निर्णय की तरह की भाषा की जीवन और सूझ दोनो की लाचारी है। इन दोनो को अपने व्यवत करने का दूसरा साधन ही नहीं है।[5]

चतुर्वेदी जी एक कुशल वक्ता है। अतः भाषण शैली का प्रभाव उनके निंबधों में काफी पाया जाता है। उनके गद्य साहित्य का एक बहुत बडा अंश उनके भाषणों का संग्रह है। यह संग्रह 'चिन्तक की लाचारी' नाम से भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा 1965 ई0 को प्रकाशित होकर पाठकों के समक्ष आ गया है। इन भाषणों में भावुक्ता, सूझ, विचार, आवेश, आत्मीयत, ओज तथा प्रवाह सभी कुछ पाया गया है। एक उदाहरण देखिए :–

'क्या हम निर्मित जमाने के बाजी है? क्या हमने सचमूच रूढि के बंधन तोडे? किस रूढि के? बागी वह, जिसमें समय आगे न बढ पाये। चिढकर समय, रूकने के लिए कहे और फिर लाचार अनुगामी बना जिसके पीछे चला जाए। प्रतिकुलता का नाम बगावत नही है।[6]

अनुभव ओर सूझ को अधिक महत्व देने के कारण चतुर्वेदी जी के गद्य में सूक्तियों की भरमार हो गयी है ओर उनके गद्य में सूक्ति–शैली की पृथक स्वरूप ही खड़ा हो गया है। सूक्ति शैली के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से है :–

'रहस्य सोचा अरविन्द ने रहस्य काव्य बनाकर लिखा रवीन्द्र ने और रहस्य अवतरित हुआ तुम्हारे रूप में। लगता है चिन्तन और कृषि हमारें दिमाग और श्रम की ऊॅचाईयों के नाम है।[7]

वस्तुतः माखनलाल जी की शैली उनके विचारों की सच्ची अनुगामिनी है। उनके विचार उनके व्यक्तित्व की प्रतिनिधी है। उनका व्यक्तित्व भारतीय आत्मा का सहज प्रकाश है। अतः उसके किसी पूर्व निश्चित दृष्टि–बिन्दू से देखकर पूर्णतः नही समझा जा सकता। शैली के प्रकारों का उपर्युक्त निदर्शन उनके व्यक्तित्व की मगिमा को समझने का प्रयास मात्र है।

पंडित माखनलाल चतुर्वेदी जी का गद्य–साहित्य उनकी जीवन चेतना का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है।

चतुर्वेदी जी ने राष्ट्रीय–हित को सर्वोपरि महत्व दिया है। स्वतंत्रता संग्राम के समय राष्ट्र की वेदी पर सर्वस्व निच्छावर करने की तीव्र भावाना ने साहित्य–देवता की कल्पना में आसेतू हिमाचल भारत को साकार कर दिया है। भारत की स्वंतत्रता का व्रत ही साहित्यकार की आस्था बनकर चतुर्वेदी की वाणी को माध्यम से मुखरित हुआ है। उन्होने एक संवेदनशील साहित्यिक के रूप में जनता के कराहते जीवन को हीन नेताओं की गर्वोन्नत मुद्रा को एक साथ देखा और तिलमिला कर रह गये। यह वैषम्य उनकी भावना में चुमता गया और उन्होने अपनी गद्य–कृतियों में विविद्य माध्यमों से इस चुमन की अनुभूति की व्यक्त किया। अमीर व गरीब बरादे का फर्क उनकी तीखी अनुभूति का अंग बनकर प्रकट हुआ। उनकी स्मृति में लोकमान्य तिलक का तेज, बाबू का निधन, सुभाष की आग, जवाहर का जौहर, पटेल का गौरव एक साथ साकार हो उठा। इस प्रकार चतुर्वेदी जी की संवेदनशीलता चेतना समय के साथ साहित्य के प्राण तत्व में परिवर्तन का स्वर मुखरित करती रही है। वे एक जीवंत चेतना के कलाकर है। अनुभूति के धनी और सूझ के पुरस्कर्ता है। उन्होने निंबध लिखा किंतु वे गद्य–गीत जैसे हो गये। कहानियॉ लिखी किन्तु वे अनुभूत सत्य की चिगांरियॉ बन गयी। संस्मरण लिखा किन्तु वे कुछ महान आत्माओं के साक्षात्कार बन गये। उनका सहित्य किसी पूर्व निर्धारित मर्यादा में नही बाधा जा सकता। उनकी अलग भंगिया है। उसका स्वंतत्र तन्त्र है। अपनी इन विशेषताओं के लिए चतुर्वेदी जी चिर–अमर रहेगें।[8]

सन्दर्भ :–

1 माटी का फूल, भूमिका।

2 अ0 भ0 हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1943 ई0 के अध्यक्ष पद से दिया गया भाषण।

3 पगडंडी, कहानी से।

4 समय के पांव, पृ0 103।

5 दीक्षात भाषण, 1941, बम्बई हिन्दी विधापीठ।

6 चिंतक की लाचारी, पृ0 13।

7 समय के पांव, पृ0 126।

8 हिन्दी का गद्य साहित्यः डॉ0 रामचन्द्र तिवारी।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 112-116

मुगलों का प्रारंभिक निवास स्थान और राजनीतिक स्थिति

NOOR US SHABA
Research Scholar, VBU Hazaribag

जहीरूद्दीन मोहम्मद जो मध्यकालीन इतिहास में बाबर के नाम से जाना जाता है। अपनी तोपों से दिल्ली सल्तनत को 21 अप्रैल 1526 के ऐतिहासिक युद्ध में समाप्त कर भारत में मुगल शासन की नींव रखी। यह भारतीय मध्यकालीन इतिहास के पन्नों में सर्वाधिक उल्लेखनीय घटना था। इस युद्ध ने पूर्ववर्ती काल के तुर्को और अफगानो से अलग एक नई प्रकार के नायकों और नायिकाओं को एक मंच प्रदान किया। मुगलों की भूमिका संपूर्ण एशिया के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। भारतीय मध्यकालीन इतिहास में मुगल साम्राज्य की स्थापना कोई एकांकी घटना नहीं थी, बल्कि भारतीय इतिहास में मध्य एशिया की घटनाओं तथा परी घटनाओं ने भारत पर गहरा और स्थाई प्रभाव डाला है। 10वीं और 12वीं सदी के मध्य एशिया में घट रही घटनाओं के फल स्वरुप भारत पर गजनबी और गौरी का आक्रमण हुआ और इस प्रकार के पर घटनाओं के फल स्वरुप ही 15वीं और 17वीं सदी के आरंभिक वर्षों में भारत पर एक नया तुर्क आक्रमण हुए जिसका नेतृत्व जहीरूद्दीन मोहम्मद बाबर कर रहा था। यह घटना भारतीय इतिहास में शक्तिशाली मंगोल साम्राज्य की श्रृंखला की एक कड़ी थी जो मध्य युग में एशिया की राजनीतिक और सामाजिक सांस्कृतिक संस्थाओं पर अपनी गहरी छाप छोड़ी। फरगना के छोटे से रियासत के सरदार उमर शेख मिर्जा बाबर के पिता थे। फरगना जो अमीर तैमूर के समय से मध्य एशियाई साम्राज्य का महत्वपूर्ण अंग था। फरगना की राजधानी आंदिजान मैं 14 फरवरी 1483 को बाबर का जन्म हुआ था। वर्तमान में फरगना घाटी का विशाल भूभाग उज्बेकिस्तान में है।

बाबर मध्य एशिया के दो बड़े लोक कंठ को अमीर तैमूर तथा चंगेज खान का योग्य वंशज था। पितृ पक्ष की ओर से तैमूर का पांचवा वंशज और मात्री पक्ष की ओर से चंगेज खां का 14वां वंशज था। उज्बेकिस्तान या उजबेक शब्द बाबर के जन्म स्थल के रूप में हुआ है। तैमूरियों की तरह ही यह उजबेक भी एक खानाबदोश प्रजाति के थे। 'गोल्डन होर्ड' का प्रसिद्ध नेता उजबेक खान जिसकी मृत्यु 1340 ईस्वी में हुआ था उन्हीं के नाम पर इसका नाम पड़ा। उजबेक शब्द का प्रयोग 15वीं शताब्दी के प्रारंभ में उन मुसलमानों के लिए होने लगा जो तुर्की या सामन वादी बौद्ध जनजाति का विरोधी थे। प्रारंभिक मंगोलो तथा तुर्कू प्रमुख शत्रु के रूप में उजबेको का जाना जाता था। 1502 में सार–ए–पुल के युद्ध में उजबेक नेता सैबानी खान ने बाबर को बुरी तरह हराया और फरगना और समरकंद दोनों पैतृक भूमि सदा के लिए बाबर के हाथ से निकल गया।

बाबर को एक शरणार्थी के तरह अफगानिस्तान प्रवर्जित होना पड़ा लेकिन भाग्य ने उसका साथ दिया

और कुछ ही समय में वह काबुल का बादशाह बना। तुर्की और मंगोल जनजातियों पर अधिकार और लगभग सभी तैमूरी राज्यों को उजबेक ओने जीत लिया और उसकी शोहरत पूरे क्षेत्र में फैल गई, इसी क्षेत्र को आज उज्बेकिस्तान के नाम से जाना जाता है। उज़्बेकिस्तान सोवियत रूस के एशियाई गणतंत्रो के मध्य अवस्थित था। इसकी सीमाएँ कजाकिस्तान, गिरगीजिया, ताजिक एस एस आर, तुर्कमान एस आर, अफगानिस्तान अन्य देशों के साथ अंतर्राष्ट्रीय सीमा है।

बाबर एक मिश्रित नस्ल का व्यक्ति था पिता उमर शेख मिर्जा चगताई तुर्क थे जबकि माता कुतलग निगार खानम मंगोल जाति की थी। बाबर हमेशा मंगोलो अपने माता के तरफ से लोगों का ऋणी था बाबर के हर बुरे वक्त में यह उनके साथ खड़ा रहा बाबर के स्वार्थी सगे संबंधियों के विरुद्ध उसके हितों की रक्षा की काबुल तथा दिल्ली की विजय में भी उनका साथ दिया फिर भी बाबर तुर्क और मंगोल दोनों ही जातियों से समृद्ध समाजिक विरासत प्राप्त की थी। बाबर अपने अनुयायियों, अफगान तथा भारतीय प्रजा के द्वारा मुगल कहलाने पर मौन अनुमोदन दे दिया था। चंगेज खान के समय से ही उत्तर के सभी आक्रमणकारियों को अफगानिस्तान एवं भारतीय लोगों के द्वारा मंगोल जाति का नाम दिया गया।

तुर्क और मंगोल अपने अतीत में मध्य एशिया के तातार या तातार खानाबदोश जनजातियों का ही एक अंग था। जो चीन से एड्रियाटिक सागर तक विस्थापित हुए और तेरी वी सदी के आरंभ में अपने सैनिक गतिविधियों के द्वारा इस क्षेत्र के सभी समराज्यों की नींव खिला डाली। चीन के इतिहास तात्तार खानाबदोश की 3 वर्ग बताए गए हैं। गोरे, काले, और जंगली इनका यह वर्गीकरण उनके वर्ण, जन्म, उद्‌भव, या राजनीति गतिविधियों के आधार पर ना कर उनके द्वारा अपनाए गए सभ्यता के आधार पर की गई थी। चीन की दीवार के समीप रहने वाले तातार चीन की सभ्यता से ज्यादा प्रभावित थे। जो गोरे तातार कहलाते थे और इनको दो और उप वर्गों में विभाजित किया गया। तंगुस तथा मंजुस, जंगली तातार गोबी रेगिस्तान के उत्तर पश्चिम में अवस्थित यायावरी सभ्यता के थे जो काले तातार के रूप में जाने जाते थे। इनके भी दो उप श्रेणियाँ थी मंगोल और तुर्क। मन गोलू ने एशिया के मध्य भाग गोबी रेगिस्तान के उत्तरी भाग पर अधिकार जमाया और तुर्को ने गोबी रेगिस्तान के पश्चिमी भाग में स्थित एशियाई भूमि पर निवास किया।

मंगोल शब्द की उत्पत्ति 'मोंग' शब्द से हुई है जिसका अर्थ बहादुर अथवा दुस्साहसही शैतान होता है। 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम' के आधार पर मंगोल शब्द उन सभी लोगों के लिए प्रयोग किया जाने लगा जो उत्तरी चीन के किन राजवंश के विरुद्ध अस्त्र उठाएं। इन शब्द का पहली बार प्रयोग चंगेज खां के द्वारा स्थापित राजवंश तथा राज्य के लिए लोकप्रिय हुआ असंख्य तातार कबीलाओ जो सभ्यता विहीन जनजाति की थी मंगोल के रूप में जाने गए, इन असभ्य जाति के लोगों का कोई स्थाई निवास स्थान नहीं था और वे उत्तरी एशिया के विशाल मैदान में एक लंबे समय से घूमते रहे।

चंगेज खान के द्वारा स्थापित साम्राज्य और मंगोलों के प्रमुख प्रतिनिधि के तौर पर चंगेज खां के उदय के साथ ही मंगोलों का तातारों के बीच शासक जनजाति के रूप में परिवर्तन हो गया और मंगोल शब्द का प्रयोग चंगेज खां के साम्राज्य के उन सभी तातारों के लिए होने लगा। इन मंगोल जनजातियों के द्वारा इस्लाम धर्म को

स्वीकार करने के उपरांत तथा उनके संस्कृति को अपनाने के साथ–साथ मंगोल शब्द 'मुगल' या 'मोगल' के रूप में परिवर्तित हो गया।

चंगेज खान (1162 से 1227 ई.) :-

चंगेज खान का जन्म सिरका के डिलोनेलडक मैं 1162 इसमें में हुआ था। उसका वास्तविक नाम तेमूचिन था। उसके पिता एक छोटे मंगोल सरदार था। 1175 में अपने पिता की मृत्यु के उपरांत तेमूचिन को सत्ता प्राप्त हुआ। 13 वर्ष की आयु में उसने अपनी प्रजा पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित किया। 1203 ईस्वी तक तेमूचिन सभी मंगोलों में 'ग्रैंड खान' के रूप में मशहूर हो गया और उसके गैंजीस (चंगेज खान) की उपाधि धारण की, प्रसिद्धि प्राप्त होते ही उसने अपना साम्राज्य का विस्तार प्रशांत महासागर से पूर्वी यूरोप तक उसने अपने मंगल सैनिक के तलवार के बलबूते हाहाकार मचा दिया।

चंगेज खां, भारत पर आरंभिक मंगोल चढ़ाया :-

चंगेज खान के जीवन काल के दौरान ही मंगोल भारत के संपर्क में आए। ख्वारिज्म का शासक और उसके समय के महानतम मुस्लिम शासकों में से एक अलाउद्दीन मोहम्मद को चंगेज खां का प्रकोप झेलना पड़ा, अलाउद्दीन मोहम्मद कैस्पियन सागर की ओर भाग गया जबकि उसका बेटा जलालुद्दीन मंगबरनी सिंधु घाटी में प्रवेश कर गया और उसने मंगोलों के खिलाफ इल्तुतमिश से मदद मांगी लेकिन इल्तुतमिश ने एक कूटनीतिक पत्र के माध्यम से ख्वारिज्म के राजकुमार जलालुद्दीन की मदद करने से इंकार कर दिया और उसे दिल्ली की ओर बढ़ने से बलपूर्वक रोका। इसके बाद मकबारनी सिंध के रास्ते पारस की ओर बढ़ा और मंगोलों ने भी अपने कदम एशिया की ओर बढ़ाएं, संयोगवश उन्हे भारत में सहन करने की दृष्टि से वहां का वातावरण काफी गर्म प्रतीत हुआ। मंगोल गुलाम वंश के शासन के दौरान भारत की सीमाओं में प्रवेश कर गए और उत्तर पश्चिम सीमांत क्षेत्रों लाहौर के बाहरी हिस्से तक सिंह एवं पंजाब का विध्वंस कर दिया। उन्होंने भारत पर अपनी चढ़ाई या बरकरार रखी तथा चौधरी शताब्दी के प्रथम चतुर्थश तक दिल्ली सल्तनत में भय का वातावरण बनाए रखा। दिल्ली के दो महान सुल्तानों बलबन और अलाउद्दीन खिलजी ने मंगोलों के खिलाफ कड़े कदम उठाए और उनका दमन करने हेतु महत्वपूर्ण प्रयास किया।

1227 में महान मंगोल नेता चंगेज खां के देहांत के उपरांत उसकी विस्तृत साम्राज्य उसके चार बेटे और उसके उत्तराधिकारीयों के मध्य विभाजित हो गया। चगताई खान चंगेज के बेटों में से एक था उसने काशगर, यारकंद, खोटन, ताशकंद, मावरुनहर का संपूर्ण ऑक्सीयान नदी के पार का क्षेत्र, जिनमें बल्ख़ बुखारा, बदखाशा व खुराशान ख्वारिज्म, फरस, कंधार, काबुल और हिंदकुश से सिंधु तक, मध्य एशिया के दूसरे भागों पर नियंत्रण स्थापित कर क्षेत्र का उत्तराधिकारी बना, चुकी मंगोल सबसे शक्तिशाली तथा शासक समूह के रूप में उभर कर आए थे, इसलिए उस स्थान को मंगोलीस्तान या मुगलिस्तान नाम से जाना गया। यह नाम चंगेज खान के सुदूर वंशज बाबर के समय तक प्रचलन में रहा। चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में ही चंगेज खान के मंगोल साम्राज्य के पतन एवं विखंडन के विस्तृत सबूत मिलते हैं। 1321 ईस्वी में मध्य एशिया के चगताई मंगोलों का 'ग्रैंड खानाते' दो राज्यों मंगोलीस्तान और मवारुनाहर में विभाजित हो गया। चगताई खान के आगामी पीढ़ी में 1347 ईस्वी में

मंगोलीस्तान का महान खान के रूप में तुगलक तैमूर खान शासक बना, जिसने 1353 ईस्वी में इस्लाम धर्म को स्वीकार कर इसका प्रचार प्रसार किया। इसी समय से 'मंगोल' शब्द 'मुगल' और मंगोलीस्तान शब्द 'मुगलिस्तान' नहीं परिवर्तित हुआ। चंगेज खान के सबसे बड़े पुत्र जजी के एक वंशज उजबेक खान को एशिया के मंगोलों में इस्लाम का प्रचारक माना जाता है।

अमीर तैमूर :-

एक सेनानायक के रूप में अमीर तैमूर ने चगताई खान राजवंश के मुगलिस्तान पर मवारुनहर कि तुर्की राजवंश का प्रभुत्व स्थापित किया, तैमूर–ए–लंग के तखल्लुस से विख्यात तैमूर का जन्म 1336 ईस्वी में केश मे हुआ था। माता तागीना खातून और पिता आमिर तुर्गे जो चगताई या गुरगन बार्लास तुर्को की एक शाखा का मुखिया था। पिता अमीर तुर्गे की मृत्यु के बाद 1361 में शाखा का मुखिया बना प्रारंभ के 10 वर्षों तक उसे अपने ही परिवार के लोगों तथा सगे संबंधियों से संघर्ष करना पड़ा जब 1370 ईसवी में समरकंद के सिंहासन पर आसीन हुआ और परिस्थितियां परिवर्तित हो गई अपनी क्रूर दमनकारी नीतियों के दम पर आसपास के सभी देशों पर अपना खौफ फैलाया, फारस तथा अफगानिस्तान समेत पूरे मध्य एशिया में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया, 1370 से 1405 ईसवी इन 35 सालों के शासनकाल में उसने किसी भी युद्ध में पराजय का मुख नहीं देखा। उसने चंगेज खान के शाही परिवार के वंशजों मंगोल सरदारों को अपने अधीनता स्वीकार कराने में खुशी मिलती थी। उसने चंगेज खां के राजघराने की दो प्रमुख मंगोल राजकुमारियों से विवाह किया था। उसने चंगेज खान की गरिमा को पुनर्जीवित किया। 1398 में उसने सल्तनत साम्राज्य की राजधानी दिल्ली पर अपना घातक क्रूर दमनकारी आघात पहुंचाया। तैमूर के वंशजों के द्वारा अपने नाम के आगे मिर्जा या अमीर लगाने लगे जो चंगेज के उच्च अधिकारियों के खानो से अलग था।

सुल्तान अबू सैयद मिर्जा :-

अमीर तैमूर के उत्तराधिकारियों के समय तैमूर का साम्राज्य विखंडित होता रहा। तैमूर के बड़े बेटे शाहरुख मिर्जा समरकंद, तीसरे पुत्र मीरानशाह अज़रबैजान सीरिया और ईराक पर नियंत्रण स्थापित किया और राजधानी ताबरेज़ को बनाया। मीरन के उत्तराधिकारी पुत्रो में मोहम्मद मिर्ज़ा शासक बना उसके उपरांत आबू सैद जो एक निपुण सेनानायक तथा महत्वकांक्षी शासक था। उसने मवारुनहर के सुल्तान शाहरुख के पुत्र को हरा कर खुद को संपूर्ण मवारुनहर का सुल्तान घोषित कर दिया। सुल्तान अबू सैद मिर्जा मुगलिस्तान के सबसे महान शासकों में से एक यूनुस खान का समकालीन था। दोनों शासकों के बीच काफी मधुर संबंध थे, और इन संबंधों को और मजबूती प्रदान करने के लिए यूनिस खाने अपने कबीलाई रीति–रिवाजों की परवाह ना करते हुए अपने तीनों पुत्रियों का विवाह अबू सैद मिर्जा कि तीनों पुत्रों के साथ किया। एहसान दौलत से उत्पन्न यूनुस खान के दूसरे पुत्री कुतलग निगार खानम का विवाह आबू सैद मिर्जा के चौथे पुत्र उमर शेख मिर्जा के साथ हुआ। 1469 ईस्वी में आबू सैद के मृत्यु के उपरांत उसके साम्राज्य उसके पुत्रों और सगे संबंधों में विखंडित हो गया। उसके पुत्रों में मोहम्मद मिर्जा कुण्डूज़ तथा बदख्शां पर शासन करने लगा।

अहमद मिर्जा समरकन तथा बुखारा पर, उलूग बेग मिर्जा काबुल का शासक बना तथा उमर शेख मिर्जा

फरगना का शासक बना, उमर शेख मिर्जा अपने पिता के शासनकाल मैं फरगना का गवर्नर रह चुका था। भाइयों में पिता के साम्राज्य को लेकर संघर्ष होता रहा। 38 वर्ष की उम्र में उमर शेख मिर्जा की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई और फरगना का दायित्व उसके 11 वर्ष के कम उम्र के पुत्र बाबर पर आ गया।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. चन्द्र, सतीश. मध्यकालीन भारत सलतनत से मुगलकाल तक (1526 से 1761), नई दिल्ली : जवाहर पब्लिशर्स एवं डिस्टीब्युटर्स, 2013, पृष्ठ–1.
2. मेहता, जे0एले0, मध्यकालीन भारत का वृहत इतिहास, खंड–2, नई दिल्ली : जवाहर पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्युटर्स, 2010, पृष्ठ–1.
3. श्रीवास्तव आशीर्वादीलाल, मुगलकालीन भारत 1526–1803 ईस्वी तक, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा, पृष्ठ 10–12.
4. वर्मा, दीनानाथ, मुगलकालीन भारत, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016 पृष्ठ 10–12.
5. शर्मा, एल पी, मध्यकालीन भारत 1000–1761, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृष्ठ 10–14.
6. चौबे, सौरभ, मध्यकालीन भारत, यूनिवर्सल बुक्स, इलाहाबाद, 2018 पृष्ठ 245–249.
7. अहमद, इम्तियाज, मध्यकालीन भारत का इतिहास 8वीं से 18वीं शताब्दी, जनरल बुक एजेंसी, पटना, पृष्ठ 309–312.

E-mail : noorshaba162@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 117-120

हिन्दी महिला साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य में योगदान

रंजना गुप्ता
शोधार्थी, जैन विश्वविधालय बेगंलूरू।

हिन्दी साहित्य में महिला साहित्यकारों का योगदान, इस विषय पर विचार करे या लिखे तो हम पाते है कि आदिकाल, भक्तिकाल से ही उनका योगदान रहा है परन्तु उनका साहित्य शायद उतना उपलब्ध न हुआ हो। भक्ति काल के मीरा बाई के पदों को नकारा नही जा सकता है। कबीर की पत्नी लोई थी, क्या वह कबीर को कविताये करते देखती होगी तो उन्होंने नहीं लिखा होगा? कहाँ है उनका साहित्य या पुरुष सत्ता के सामने उसे खोजने की कोशिश नहीं की गई। तुलसी दास की पत्नी रत्नावली, तुलसी दास ने रामचरित माऩस लिखा क्या रत्नावली ने इससे प्रभावित होकर कुछ भी न लिखा होगा? यदि पुरुष कवि या साहित्यकार थे तो उनकी पत्नियों ने क्या कुछ भी न लिखा होगा? सहजो बाई उनका साहित्य प्रकाश मे क्यों नहीं आया या उसे खोजा नहीं गया? कितने ही प्रश्न मन मस्तिष्क मे उठते है परन्तु आज वह समय है जब साहित्य के क्षेत्र मे महिलाओं की सशक्त भूमिका या यूँ कहे योगदान है।

भारत मे राजाराम मोहन राय, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले आदि ने स्त्रियों को कैन्द्र मे रखकर आन्दोलनो की शुरुआत की। सावित्री बाई फुले ने 1840 मे पुणे में लड़कियों का पहला स्कूल खोला और सावित्री बाई पहली शिक्षिका बनीं। सावित्री बाई ने कविताएं भी लिखी, नैतिकता, नशाखोरी सम्बन्धी कुछ भाषण भी दिए कृपाबाई सत्यानन्दन ने स्त्री मुद्दो के प्रति जागरूक थी और उन्होंने पत्रिकाओं में लगातार लिखा। कमला और सगुना उनके दो उपन्यास है। आधुनिक हिन्दी की पहली आत्मकथा स्फुरणा देवी ने 'अबलाओं का इंसाफ' रचना लिखी, कन्याओं का उपनयन संस्कार सुभद्रा देवी ने लिखा। 'पत्नी की जिम्मेदारियाँ' लेख सूर्य कुमारी मेहता ने लिखा। नारी पत्रिका जिसकी सम्पादक सुभद्रा कुमारी चौहान थी। 'चांद' पत्रिका जिसमें स्त्री द्वारा सृजित सामग्री को स्थान दिया गया।

फेचेस्का आर्सिनी लिखती है– 'चाँद ने यह काम उन सीमाओं को तोड़ कर दिखाया कि' औरतो को क्या जानना चाहिये तथा औरतों को क्या बोलना चाहिये। 1925 में सरोजनी नायडू कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष चुनी गयी।

नई धारा की कवयित्रियों की बात होती है तो सुमन राजे लिखती है '1900 से लेकर 1925 तक में कवयित्रियों के कई स्वर सुनाई पड़ते है। हाँ यह कहना आवश्यक है, कि बदले हुए रचना केन्द्रो के साथ राज घरानो मे कविता अभी भी हो रही है परन्तु वह लगभग सूख गई धारा है। कविता अब मध्य वर्ग से भी जुड़ने लगी है और राष्ट्रीय स्वर उसका प्रधान स्वर है। हालांकि वे आधुनिक स्त्री कविता की शुरुआत बताते हुए

बुंदेलबाला का नाम याद करती है। साथ ही लिखती है कि 'हिन्दी की काव्य कोकिला' के लेख द्वारा नई धारा की प्रथम कवयित्री राजरानी देवी को माना है क्योंकि वे पहली कवयित्री है जो खुद को स्त्री समुदाय के साथ जोड़ते हुए अपनी साथी स्त्रियो का आहवान करती है।

देवियो क्या पतन अपना देखकर
नेत्र से आँसू निकलते है नहीं?
भाग्यहीना क्या स्वयं को देखकर पाप से कलुषित हृदय जलते नहीं?
क्या न अब कुछ देश का अभिमान है?
खो गई सुखमय सभी स्वाधीनता हो रहा कितना अधिक अपमान है?
समुद्र इसको कौन सकता है बता।

तोरनदेवी शुक्ल 'लली' का नाम भी राष्ट्रीय काव्य धारा के भीतर लिया जाता है। इन्हे जागृति कविता संग्रह पर सेकसरिया, पुरुस्कार से सम्मानित भी किया गया था। गोपाल देवी ने (संवत 1940) 'शशि' नामक बालोपयोगी मासिक पत्रिका का संचालन किया। 'हिन्दी काव्य की कोकिलाएँ मे लेखक लिखते हैं – जिन दिनो हिन्दी साहित्य का स्त्री कवि समाज प्रगतिहीन होकर प्रायः स्तब्ध सा खड़ा था उस समय आपने हिन्दी साहित्य कें रंगमंच को अपनी रचनाओं से सजाया। नवीन युग का स्त्री साहित्य आपकी ही कृतियों से आरम्भ होता है। स्त्री समाज को साहित्य का संदेश–सन्देश सुनाने वाली आप प्रथम आधुनिक महिला है। सरसता, सरलता और स्वाभाविकता आपके काव्य के सहज गुण हैं।

सुभद्राकुमारी चौहान आधुनिक काल में ऐसी सशक्त महिला साहित्यकार है जिनकी इस कविता को हर बच्चे के जुबान ने याद किया है, 'खूब लड़ी मर्दानी वो तो झाँसी वाली रानी थी', 'वीरो का कैसा हो बसंत' और 'जलियाँ वाला बाग' संसार के प्रति करुणा रखने वाली महादेवी का राष्ट्र सेविका स्वरूप हम नहीं भूल सकते।

डॉ. रमासिंह, किरण जैन, कान्ता, अमृता भारती, इन्दु जैन, सुमन राजे, स्नेहमयी चौधरी, सुनीता जैन, मोना गुलाटी और ममता कालिया की साहित्यिक कृतियाँ स्वातंर्त्योत्तर युग में आती है। सुमनराजे 1979 मे चौथा सप्तक की कवयित्री रही, 'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास' लिखने के लिये याद किया जाता है।

बच्चा जब जन्म लेता है तभी से वह माँ द्वारा गाये जाने वाली लोरियो से परिचित होता है, वह पहली लोरी माँ की ही होती है।

स्त्री ने जिस पीड़ा को भोगा उसे शब्दों में पिरोकर साहित्य मे सजाया अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम बनाया। स्त्री चेतना, स्त्रियों में आयी जागरूकता, अपनी सदियों से चली आ रही छवि को तोड़ कर अपनी एक अलग पहचान साहित्य में महिला साहित्यकारों ने स्थापित की है। उनका सशक्त लेखन अनवरत हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रहा है और आगे भविष्य में समृद्ध करेगा।

हमारे लोक गीत भी माध्यम है अपने भावनाओं को अभिव्यक्त करने का। यद्यपि लोक गीत एक स्त्री के दिनचर्या में शामिल रहते है वे अपने दैनिक कार्य करती जाती है और गीत गाती जाती है। लोकगीतो का आरंभिक संग्रह कर्नल टाड, टेसीटरी और सर जार्ज ग्रियर्सन ने किया। रामनरेश त्रिपाठी, देवेन्द्र सत्यार्थी के अलावा कृष्णानन्द गुप्त के बुंदेलखंडी लोक साहित्य का 'ईसुरी की फागें' के नाम से संग्रह किया। श्याम परमार ने मालवीय लोकगीतो का संग्रह किया। श्यामाचरण दुबे की किताब है 'छत्तीसगढ़ी लोक गीतो का परिचय'। पंडित

राम नारायण उपाध्याय की 'निमाड़ी के ग्राम गीत' और राम इकबाल राकेश का संग्रह है 'मैथली लोक गीत'। राहुल सांकृत्यायन ने कौरवी, कुरुप्रदेश के लोकगीतो और कहानियों का संग्रह 'आदि हिन्दी की कहानियाँ' और 'गीत नाम' से प्रकाशित हुआ। लोक गीतो का संग्राहक स्त्रियों को नजर अन्दाज नहीं कर सका है।

हालांकि सुमन राखे अपने आधे इतिहास की शुरुआत मे लिखते हुए तमाम मर्दवादी आलोचको, इतिहासकारो को फटकारते हुये, रामनरेश त्रिपाठी और देवेन्द्र सत्यार्थी जैसे पुरुषो का आभार व्यक्त करती है कि उन्होंने स्त्रियों के गीतों का संकलन किया। स्त्री भाषा की तमाम खूबियाँ इन लोक गीतों में है। इन गीतो का खुला शिल्प और उनका लचीलापन अपने अभिव्यक्ति का अवसर देते है। इन गीतों की अपनी सुन्दरता है और यह एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी को स्थान्तिरित होते हैं। इनकी अपनी उपयोगिता और प्रासंगिगता होती है। ये गीत कभी छंद मे होते है, कभी छंद मुक्त होते हैं। इन गीतों को उधेडबुन कर प्रयोग किये जाते है। इन्हें शास्त्र का कोई भय नही, न इतिहास से कोई अपेक्षा है। इन लोक गीतो में स्त्री जीवन की जड़े बसी है। कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य तो साहित्य है, वह लोक साहित्य हो या साहित्यिक विधाये। स्त्रियों के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। पता नहीं किसने क्या लिखा उसे सुरक्षित नही किया गया। स्त्री लेखन का प्राप्त न होना इसका तात्पर्य है कि उस तरफ ध्यान नहीं दिया गया। परन्तु सूरज की किरणों को उजाला करने से कौन रोक सका है। घने अंधकार के बाद उजाला होता है और अपनी तीव्र प्रखरता के साथ होता है। प्रतिभाऐ दबाई जाती है लेकिन दबती नहीं है वे अपना स्थान बनाती है इतिहास मे दर्ज हो न हो परन्तु किसी भी इमारत की आधार शिला गहरे नींव खोद कर ही रखी जाती है।

इसलिए पूरे विश्वास के साथ हम कह सकते है कि आज जो हिन्दी साहित्य मे महिलाओं का योगदान है और होता रहेगा वह हमारी आधार शिला के कारण है। समय जो बीत गया वह इतिहास बन गया। जो होगा वह भविष्य होगा परन्तु जो वर्तमान है वही इतिहास बनेगा और भविष्य के मार्ग खोलेगा। हमारा वर्तमान समृद्ध है यदि समकालीन महिला साहित्यकारों के विषय पर आये तों समकालीन महिला साहित्यकारो ने अपनी लेखनी के माध्यम से ऐसी रचनाओं का संकलन किया है जिसमे स्त्री की स्थित को बड़ी ही यर्थाथता के साथ व्यक्त किया है। साहित्य मे तत्कालीन समाज के दर्शन होते है। साहित्य समाज के मार्ग को प्रशस्त करता है।

साहित्य में समाज की समस्याओं को महसूस करने की क्षमता होती है, उसी का परिणाम होता है साहित्य का स्रजन। समकालीन साहित्कारो ने आज के जीवन की परिर्वतन शीलता, जीवन मूल्यो, समकालीन परिवेश को अपनी साहित्यिक विधाओं में बुनकर और सजाकर साहित्य को समृद्ध कर रही है। उन्होंने सदियों से चली आ रही है मान्यता का खंडन किया कि महिला घर परिवार तक ही सीमित है। कृष्णा सोबती मन्नू भंडारी, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, उषा प्रिंयवदा, चित्रामुगदल, मैत्रेयी पुष्पा, सुधा अरोड़ा आदि की एक लम्बी भूमिका है जिन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को अपने अनुभव, अपने अभिव्यक्त के माध्यम से साहित्य को पल्लवित किया है। वे अपनी आवाज को बेधडक व्यक्त करती है।

मैत्रिय पुष्पा की कहानी श्फैसलाश नारी आधारित कहानी है। कृष्णा सोबती की कहानी श्सिक्का बदल गयाश। मन्नू भंडारी आज हमारे बीच नहीं है परन्तु उनका साहित्य आज भी हमारे विचारों को प्रभावित करता है। श्हंसश पत्रिका में छपा उनका एक लेख 'सीढियो पर बैठी लडकी' दिल को छूता है, 'गोपाल को किसने मारा' कहानी कितने ही प्रश्नो को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करती है। वे स्त्री मन की चितेरी है। हिन्दी साहित्य के

विस्तृत आकाश में कितने ही सितारे है जो चमक रहे हैं और कितने ही सितारे धीरे धीरे प्रकाशमान हो रहे है। महिला साहित्यकारों की अपनी प्रतिभा की चमक है और उन्होंने साहित्य के पटल पर अपने को अंकित किया है। महिला साहित्यकारो की पंक्ति मे इससे ज्यादा सफल उदाहरण और क्या हो सकता है, जब बुकर पुरुस्कार के लिये एक महिला लेखिका को नामित किया जाता है, वह है गीतांजली श्री। लंदन में बरिष्ठ कथाकार गीतांजली श्री के उपन्यास 'रेत समाधि' को इस वर्ष का अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरुस्कार प्रदान किया गया। वह राब्ट्रीय ही नहीं अन्तराष्ट्रीय स्तर पर भी महिला साहित्यकार की अपनी सुद्रढ पहचान है। वे कलम की सशक्त हस्ताक्षर बन रही है। वरिष्ठ साहित्य कार ममता कालिया को उनके समग्र साहित्य के लिये 'वेदव्यास' सम्मान दिया जायेगा।

उपयोक्त विवेचन से ज्ञात होता है महिला साहित्यकारों का हिन्दी साहित्य ये योगदान।

सन्दर्भ :-

1. आलोचना का स्त्री पक्ष
   लेखिका : सुजाता, राज कमल प्रकाशन।
   हंस पत्रिका

guptaranjana489@gmail.com
Whatsapp: +91 98458 91758

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 121-129

जिला चम्बा के जनजातीय क्षेत्र पांगी में प्रचलित दैविक लोककथाओं का अध्ययन

राज कुमार
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हि.प्र. विश्वविद्यालय, शिमला।

हिमाचल प्रदेश के जिला चम्बा के पांगी क्षेत्र के जनजातीय समाज के धार्मिक जीवन में देवी–देवताओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पांगी घाटी में ऐसा कोई–कोई गाँव नहीं है, जहां किसी देवता का मन्दिर नहीं है। इन देवी–देवताओं की पूजा स्थानीय लोग कुलदेवी या देवता के रूप में करते हैं। गाँव के हर देवी–देवता की स्थापना, विशेषज्ञता, स्वभाव, नामकरण तथा चमत्कारों के पीछे कोई न कोई लोककथा अवश्य प्रचलित है जो धार्मिक संस्कार के रूप में लोगों के जीवन में रच बस गई है। यहां पांगी घाटी के कुछ स्थानीय देवी–देवताओं का विश्लेषण निम्नलिखित हैं–

1. माँ मिन्धलवासिनी की लोककथा :-

पांगी घाटी के मिन्धल गाँव में पंगवाल जनजातीय समाज की अधिष्ठात्री देवी माँ चामुण्डा का मन्दिर स्थित है। मिन्धल गाँव में बसने के कारण पंगवाल लोग माँ चामुण्डा को मिन्धल वासिनी के नाम से भी पुकारते हैं। माँ मिन्धल वासिनी के सम्बन्ध में पंगवाल लोक समाज में प्रचलित लोक कथा निम्नवत रूप से प्रस्तुत है –

'संयांणे बोते मिन्धले भटवास नऊंए ग्रां बारह भट्ट खानदान थिंये। तस भट्ट खानदान अन्तर अख घुघती नऊंए बुढी थीं। तसे सथ क्वे थठा सथ बाऊठी थीं। अख फेर बुढी भयागे उघांणे क्यां पटाह बहारि कहानें लगोथी त तस अख घोड़ उघांणे क्या बहारि दि निसता केऊआ। तनि बौंचे जे से तड़ि दबी छड़ा। लगातार छह सत रोज तस जे तनू भूं। से अप्पु ग्रां बि अहंड़ी बारे बोक लातिथ तठा अप्पु गभरूआ जे बि। सोभ तस पागल समझतेथ। कनी बि तस पुठ विश्वास न क्यां। सतुंए रोज जेखे तसे सोभ क्वे तठा बाऊठी खबल बग बांड़ दि ग्ये तठा से तन्हे दि रोटि बंणाण दि उधांणे क्या पटाह हानें लग्गी त फिरि तस से घोड़ बहारि दि निसथा केई ग्या तनि कड़छी जे तस दबांणे कोशिश कीं पर इस बार से दंबणे जगहि होरा बि खड़ि चड़ा होर उधांण तठा छत चीरी के बहारि येइ ग्या। तस हेरि के बुढिया गयांणी येइ तनि अप्पु चादुर ज्यां डूमणू खोऊ तठा तनि जे अप्पु तालु कोरु। तेखे से चुप्पीं गेइ। से दौड़ती खबल अप्पु गभरूआ के पुजि। तनि सोभ कुछ तन्हे बतऊ। पर तन्हे तस पुठ विश्वास न भुंआ। तन्हे अख चूर पेहला मरि गेथा तेखे से अख चूरे जे बांण लगोथे। तन्हे तस बुढिया दि बोलु तां माता अंसे अख चूरे जे बांणे शक्ति दाती न। बुढी वापस येइ के दौड़ती दौड़ती ग्रां गेइ। कहि मजे जे मंजे पुठ उङोरा थिंया त कहि कतंण लगोथा। कनी बि तस बुढि पुठ विश्वास न क्यां। से निराश भोइ के

वापस अप्पु घ्या पुज्जी। अप्पु भक्तिंणीं जे तसे टबरे तठे ग्राए बर्ताव हेरि के माताइ लेहर ययी। तनि तेखंणी खबल बग बांड़ लगोरे तसे क्वे तठा बाऊठी चूरे समेत घोड़ बंड़ाइ छड़े तठा मिन्धले ग्रां बाड़ियां श्राप दित्ता कि आज पुथ इस ग्रां न त कोइ मंजे पुठ ऊंघता न ही कतंणे कम सफल भूतु। तठा कोई बि दुंई चूरे जे न बाइ सकता। जे बि दोके चूरे जे बाल तसे अख चूर मरि घेता। जेखे माता शांत भुंइ त घुघती बोलु हे माता! मूं बि घोड़ अन्तर शापित कर, अप्पु गभरूआ बगैर अऊं कनु के जीती। माताई बुढी घुघती बि शापित की तठा तस वरदान दित्ता कि आज क्या बाद जे बि माँ दर्शन कन दि याल से जां तुकर तां दर्शन न कराल। तसे मनोकामना न पूरीती।[1]

कथा का हिन्दी रूपान्तर :-

बहुत समय पहले मिन्धल गाँव में 12 भट्ट खानदान के लोग रहते थे। उन्हीं भट्ट परिवारों में एक परिवार वृद्धा घुघती का भी था। वृद्धा घुघती के सात पुत्र तथा सात पुत्र वधुएं थीं। एक बार वृद्धा घुघती प्रातः के समय चूल्हे से आग जलाने से पूर्व राख बाहर निकाल रही थी तो उसे चूल्हे में बाहर की तरफ उभरता एक पत्थर दिखाई दिया, जिसे उसने कड़छी से प्रहार करके चूल्हे में ही दबा दिया। यह क्रम लगातार छः दिन तक चलता रहा। सातवें दिन जब वृद्धा घुघती का पूरा परिवार खबल नामक खेत में खेती करने गया तो उनके लिए भोजन बनाने के चलते सुबह चूल्हे से जब राख बाहर निकालने लगी तो उसे उस दिन भी बाहर की ओर एक पत्थर उभरता हुआ दिखाई दिया। उसने उस दिन भी कड़छी से प्रहार कर उस पत्थर को दबाने की कोशिश की। लेकिन उस दिन वह पत्थर दबने के बजाय चूल्हे तथा उस वृद्धा के घर की छत को चीर कर बाहर निकल गया। वृद्धा यह दृश्य देखकर हतप्रभ रह गई। उसके शरीर में कंपन पैदा हुई, उसने अपनी पहनी हुई ओढ़नी से डुमणू नामक सुई निकालकर जोश में माता का नाम लेकर अपने गाल में सुई से छेद निकाला, तब जाकर उसकी कंपन शाँत हुई।

वह दौड़ती हुई खबल नामक स्थान पर गई, जहां एक बैल से उसका परिवार खेती कर रहा था। उनका दूसरा बैल मर गया था। उसने अपने घर में माँ काली के शिला रूप में प्रकट होने का समाचार अपने बेटों को बताया। उन्होंने अपनी बूढ़ी माता की बातों को मजाक में लिया तथा उन्होंने वृद्धा घुघती से कहा कि क्या तुम्हारी माता हमें एक बैल से खेती करने की शक्ति प्रदान कर सकती है। वृद्धा हार मान कर भागती हुई इस घटना का समाचार गाँव वालों को बताने के लिए गई। गाँव वालों ने भी उसकी बातों को मजाक ही समझा। उस समय कोई चारपाई पर आराम से सोया था, तो कोई कातने–बुनने का काम कर रहा था। अपनी भक्तिन की तौहीन देखकर माता चामुण्डा को गुस्सा आया। उसने उसके बेटों और पुत्र–वधुओं को बैल समेत उसी खेत में शापित कर पाषाण में बदल दिया तथा गाँव वालों को शाप दिया कि आज से इस गाँव में न तो कोई चारपाई पर सोएगा, न ही इस गाँव में कातने–बुनने का उद्योग सफल होगा तथा इस गाँव के लोग अब केवल एक बैल से ही खेती करेंगे। वृद्धा घुघती माता के समक्ष नतमस्तक खड़ी थी। उसने माता से निवेदन किया कि हे माता! मेरा पूरा परिवार पाषाण में बदल गया है। मैं जी कर क्या करूंगी। आप मुझे भी पाषाण में बदल दो। माँ को अपनी भक्तिन पर दया आई। उसने उसे वरदान दिया कि आज के बाद मैं इसी गाँव में वास करूंगी और मेरे दर्शन के लिए आने वाले भक्तों मुझसे पहले तुम्हारे दर्शन करेंगे। माता ने उसके पालन–पोषण की समस्या को ध्यान में रखकर उसे भी पाषाण मूर्ति में बदल दिया। समस्त मिन्धलवासी माता के स्वरूप को देखकर हतप्रभ रह गए। उन्हें अपने किए पर पछतावा हुआ। उन्होंने माता के शाप को वरदान समझकर ग्रहण किया और प्रण किया कि आज के

बाद न तो वह दो बैल से खेती करेंगे, न तो चारपाई पर सोएंगे और न ही कातने–बुनने का काम करेंगे।

अपनी भूल का पछतावा करते हुए माँ चामुण्डा के शाप को वरदान स्वरूप ग्रहण करते हुए पांगी घाटी के मिन्धल गाँव के लोग वर्तमान में भी एक बैल से ही खेती करते हैं। जबकि समस्त पांगी घाटी में दो बैलों से खेती की जाती है। इसके साथ ही मिन्धल गाँव में आज से कुछ ही वर्ष पूर्व तक लोग न तो कातने–बुनने का काम करते थे न ही चारपाई पर सोते थे। हालांकि अब मिन्धल गाँव के लोग चारपाई पर सोने लगे हैं और यातायात की सुविधा तथा स्थानीय स्तर पर उभरते बाजारों की उपलब्धता के कारण कातने–बुनने का उद्योग मिन्धल गाँव ही नहीं, बल्कि समस्त पांगी घाटी में समाप्त होने के कगार पर है।

2. माँ वलीनवासिनी की लोककथा :–

पांगी मुख्यालय किलाड़ के समीप बलवास गाँव में माता वलीन का मन्दिर है। स्थानीय लोग माता वलीन को भीनव दुर्गा का अवतार मानते हैं। माँ वलीनवासनी से सम्बन्धित लोक कथा निम्नवत् रूप से प्रस्तुत है–

'पैगेंइ बलवास नऊंए ग्रां अख नैसर नऊंए महांणु घ्या माता भगवती कुइ रुप अन्तर जमीं। अख रोज तनि कुइए माघे अंचोलु खींणे हठ क्यां। माघे महीने अंचोलु कोठा हतितथ। से कुइ रुठि के बलवास ग्रां क्यां खड़ि टटन नऊंए ग्रां घेइ के विलीन भोइ गेइ। अख रोज राति से अप्पु बबे सुपन येइ। तनि अप्पु बब दि बोलु कि अऊं देवी भा, मैं तां घ्या जन्म नेथा। अबे माँ बख्त पूरीं ग्या। अऊं टटन जगहि बसोरी। अड़ि माँ मन्दिर बंणणा तठा ध्यान थांणा कोइ बि अराख पी के माँ मन्दर न लेटा येरा। तंहड़ा पुथ तसे बब बुढा भूंथ तुकर अप्पु तसे पुजा कतथ। से तस अंचोलु तठा चखरी अंण्डी के भोग दातथ। जेखे से स्वाह बुढा भुंआ त तनि पुजई कम दि अख नौकर थियौआ तठा तस सोभ पूजा पाठ बतई छड़ा। नौकर बि जेखे माताइ भोग दातथ तेखे से पिठ फेरि के बिश्तथ। माता बि भोग खीतिथ। अख रोज से नौकर अराख पी के भोग दांण दि ग्या तठा अप्पु पिठ फेरि के बिश ग्या। तसे दिमाग अन्तर शरारत येइ। तनि सोचु हेरि सचे माता अस भोग खीती न। जना इ माताइ भोग खींणा दि हथ अगरेरा तनि नौकरे तसे हाथ पकड़ना लऊआ। माताइ गुस्से अन्तर लते दिति होर से नौकर नाह फटाइ छड़ा। तठा पटेण चीरी के अख पुज्यारा कहाड़ा तठा तस दि बोलु कि आज क्या बाद तु तठा तां वंश माँ पुजा कन्नी। हां ध्यान थांणा कि कोइ बि अराख पी के माँ मन्दर न ये। अराख पी के हल्ला गुल्ला तठा चालाकी मूं खरी न लगती।[2]

कथा का हिन्दी रूपान्तर :–

बहुत पहले पांगी घाटी के बलवास गाँव में नैसर नामक व्यक्ति के घर में माता भगवती ने एक कन्या के रूप में जन्म लिया। एक दिन उस कन्या ने माघ महीने में अपने पिताजी से अंचोल (स्ट्रौबरी) नामक फल खाने की जिद्द की। माघ महीने में पिताजी के लिए कन्या की इस जिद्द को पूरा करना सम्भव न हुआ। वह कन्या अपने पिताजी से रूठ कर बलवास गाँव से ऊपर टटन नामक स्थान पर जाकर अदृश्य हो गई। उनके वृद्ध पिता जी इस घटना से बड़े दुःखी हुए। उस देवकन्या ने स्वप्न में आकर अपने पिताजी को समझाया कि, "मैं देवी भगवती हूं, जो देवकन्या के रूप में तुम्हारे घर पैदा हुई, लेकिन अब मेरा समय पूरा हो गया है। मैं इस स्थान पर वास करूंगी। तुम मेरी पूजा करना और भोग के रूप में मुझे चकोर के अंडे तथा अंचोल नामक फल चढ़ाना।" उसके पिता ने वृद्धावस्था तक माता की सेवा की। वृद्ध होने पर उसने माता की पूजा हेतु एक नौकर रखा और उसे सारी पूजा विधि बता दी। एक दिन नौकर ने शराब पी रखी थी। इससे पहले वह नौकर माता की भोग की थाली

आगे रखकर स्वयं पीठ फेर कर बैठ जाता था और माता भी आगे हाथ बढ़ाकर भोग ग्रहण करती थी। लेकिन उस दिन शराब के नशे में नौकर को एक शरारत सूझी, जैसे ही माता ने भोग के लिए हाथ आगे बढ़ाया, नौकर ने पीछे फिरकर माँ का हाथ पकड़ने की कोशिश की। माता के क्रोध की सीमा नहीं रही। माता ने उसे धक्का देकर नाले में फेंक दिया। माता ने एक चट्टान चीरकर पुजारी उत्पन्न किया और उसे समझाया कि आज के पश्चात् तेरे वंशज मेरी पूजा करेंगे और कोई भी गाँव का व्यक्ति और पुजारी शराब पीकर न तो मेरे मन्दिर आ सकेगा, न ही मेरी पूजा कर सकेगा। शराब पीकर मेरे मन्दिर में शरारत तथा शोर शराबा मुझे बिल्कुल भी पसन्द नहीं है। तब से उसी ब्राह्मण का कुल माता की पूजा करता है।

पांगी घाटी के टटन गाँव में माता वलीनवासिनी का मन्दिर स्थित है। बलवास गाँव की कन्या के देवत्व को प्राप्त होने के पश्चात् टटन नामक गाँव में विलीन अर्थात अदृश्य रूप में वास करने के कारण माँ भगवती का नाम विलीनवासनी पड़ा। माँ विलीनवासनी शराब सेवन तथा शोरगुल के सख्त खिलाफ है। मान्यता है कि यदि कोई व्यक्ति शराब का सेवन कर मन्दिर में प्रवेश करता है तो उसे माँ के कोप का सामना करना पड़ता है, जिस कारण बलवास तथा टटन गाँव का, यहां तक कि समस्त पांगी घाटी का कोई भी व्यक्ति वर्तमान में भी शराब पीकर मन्दिर में प्रवेश नहीं करता है।

3. माँ मलासनी की लोककथा :-

पांगी घाटी के पुर्थी नामक गाँव में माता मलासनी का मन्दिर स्थित है जिसे स्थानीय लोग माँ भगवती के नौ अवतारों में स्थान देते हैं। 'माता मलासनी की स्थापना से सम्बन्धित लोककथा' का अंश निम्नवत् रूप से प्रस्तुत है –

'पुर्थी ग्रांए अख महाणुं अप्पु बग चिरही कठड़े मूर्ति मिली। तनि से मूर्ति अप्पु घ्या दि नीं। राति जेखे से महांणु ऊंघा त माता तसे सुपन येइ। माताइ बोलु,हे भक्ता, अऊं दुर्गा भा। अऊं इस जगहि बसंणु चाहती। तु मूं दि अख मन्दर बंणा। भयागे खड़ीं के तनि अप्पु सुपने बोक अप्पु टबरे जे लइ तठा पूरे ग्रां बतइ। ग्रां बाड़ियां तसे बोक मनि छड़ि तठा मन्दर बणांण लगि ग्ये। मन्दर बणांण तन्हे सथ रोज लगे। जस महांणु से मूर्ति हतेथी तनि मन्दर बंणथ तुकर से मूर्ति अप्पु मल्लिया पुठ थियेइ। जेखे मन्दर बंणी ग्या त तस मूर्ति तन्हे पुजा पाठ करि के स्थापना कीं।[3]

कथा का हिन्दी रूपान्तर :-

कहते हैं पुर्थी गाँव का एक व्यक्ति अपने खेत में काम कर रहा था। काम करते वक्त उसे खेत में एक मूर्ति मिली। वह मूर्ति चिर (खुमानी) नामक लकड़ी की थी। वह व्यक्ति उस मूर्ति को अपने साथ घर ले आया। रात को जब वह व्यक्ति सो रहा था तो माता ने उसे दर्शन दिए। सपने में आकर माता ने कहा, "हे वत्स, मैं देवी दुर्गा हूं। मैं इस स्थान पर बात करना चाहती हूं। तुम मेरे लिए यहां पर एक मन्दिर का निर्माण करवाओ।" सुबह जब वह व्यक्ति उठा तो उसने सपने की बात अपने परिवार सहित पूरे गाँव को बता दी। गाँव वालों ने उसकी बात पर यकीन कर लिया और मन्दिर निर्माण कार्य आरम्भ कर दिया। मन्दिर बनाने में लगभग सात दिन लग गए। इन सात दिनों तक उस व्यक्ति ने माता को अपनी मल्ली (घुटना) पर आसीन रखा। मन्दिर बन जाने के पश्चात् मूर्ति को मन्दिर के भीतर विधिवत रूप से स्थापित किया गया।

पांगी घाटी का जनजातीय समाज धार्मिक दृष्टि से नाग, शैव तथा शाक्त परम्परा से सम्बन्धित है। माँ

शक्ति के रूप में घाटी में दुर्गा के नौ अवतारों की पूजा की जाती है। शक्ति के विभिन्न रूपों का नामकरण पौराणिक आधार पर न कर स्थानीय स्तर पर माँ की स्थापना की परिस्थितियों तथा स्थान विशेष पर निवास करने के आधार पर हुआ है।

4. दैन्तनाग देवता की लोककथा :–

कहा जाता है कि प्राचीन काल में घाटी में राणा तथा ठाकुरों का शासन हुआ करता था। उस समय ग्वालिनें ही राणा तथा ठाकुरों के पशुओं को चराने का काम किया करती थीं। यह ग्वालिनें नीची जाति से सम्बन्ध रखती थी। बदले में उन्हें अपने परिवार के पालन–पोषण हेतु अनाज तथा रोटियां दे दी जाती थी। इस सन्दर्भ में पांगी घाटी के वर्तमान मुखालय किलाड़ में बसे 'दैन्तनाग देवता की लोक कथा' निम्नवत रूप से प्रस्तुत है–

'पैंगेइ किलाड़ अख तकड़ा तठा धनवान रांणा थिंया। तस के अन्न तठा पशुधने कोइ कमी नौती। तसे गौड़िया अख नीची जाति गवालंण चातिथ। अख रोज रांणा गौड़िया लांण लगा त गौड़ा दुधे न दातथ। तस ग्वालंण पुठ शक भूंआ। तनि ग्वालंण पुछि, भयागे गौड़े दुध दाते पर बेदिया जेखे से चरि के ईते से दुधे न दाते। दिन्ने तु लांती त नु। ग्वालंण दुख भूंआ कि माँ मालिक मूं पुठ शक कन्न लगोरा। होरि दिन चोरे पता लांण दि से पुलाले रजड़ी बंणाती तठा तसे अख मुख गौडी के शिङ से बंधती तठा दोका मुख अप्पु के थाती तठा अप्पु नियोकी बिश्ती। जेखे गौड़े चरते चलते गडि भेण पुजे त तड़ि अख कीड़ा निथा होर से तन्हे दुध पींण लग्गा। ग्वालंण लेहर येइ, अच्छा दुध अ पिता तां, शुंणनी ईती मूं। तनि से पकड़ि छड़ा। से कीड़ा अख सुंदर कोइए वेशी अन्तर येयूआ। तनि बोलु अऊं नाग भा अऊं इस जगहि बसंणु चाहता, तु मूं पिठी करियो अप्पु जे नां तठा जड़ि अऊं गरक्याल तड़ि मूं भी छड़। ग्वालंड़ी बोलु फिरि माँ लच्छ गोरूआं क हेता। तनि बोलु तां लच्च गोरू अप्पु येइ घेंते। तेखे से घोड़े मूर्तियां अन्तर बदलियां। तनि ग्वालंड़ी से पिठी क्यां तठा घ्या दि चलि पड़ि।

बुच बथ तनि नागे बोलु मूं तां कपा क्यां चोपड़े गंध ईंण लगोरी तु मूं उल्टा करि के पीठि कर। तनि से मूर्ति उल्टी कीं, फिरि चलि पड़ि। तेखे से अख रांणे बग पुज्जी तड़ि अराम कन दि तनि से मूर्ति भीं छड़ि। जेखे से अराम करि के तस मूर्तियां पिठी कन लग्गी त से मूर्ति तसे बेलि न उठंई। से समझि गेइ कि नाग इठि बसणु चाहता। पत्ता तसे लच्छ गोरु बि अप्पु पुज्जी ग्ये। तस बग रांणे कुकिड़ बौथी, से कुकड़ी डा देवदारे बुटे बंड़ि ग्ये। नाग ग्वालंड़ी सेवाइ हेरि खुश भुंआ। तनि ग्वालंण दि वर मगणें बोलु। ग्वालड़ी नाग क्यां वर मगे–फुल्याची लच्छ गोरू अप्पु डुगताइ इक्टठे भोरे लेटे ताकि अऊं जाच्च हेरि सकूं। मूं अप्पु कोपली खूंणी लेटि येरी तांकि अऊं अप्पु जूंईया मारि सकूं। नाग देवता तस वर दाता त अप्पु छप्पत भोइ ग्या।[4]

पुराने जमाने में पांगी घाटी के किलाड़ में एक शक्ति शाली तथा धनवान राणा शासन करता था। उसके पास अन्न तथा पशु धन की कोई कमी नहीं थी। निम्न जाति की एक ग्वालिन उसके पशुओं को चराया करती थी। एक दिन राणा शाम के समय अपनी चुरी गाय (गाय तथा याक के मेल से जन्मी गाय) का दूध निकालने लगा, तो चुरी गाय ने दूध नहीं दिया। राणा को शक हुआ कि कहीं ग्वालिन दिन को ही उसकी गाय को दूह तो नहीं देती है। उसने यह बात ग्वालिन से पूछी। ग्वालिन को भी लगा कि उसका मालिक उसकी मेहनत पर शक कर रहा है, उसे बुरा लगा। अगले दिन ग्वालिन ने योजना बनाई कि वह उस चोर को पकड़ लेगी जो राणा की चुरी गाय का दूध पीता था। उसने गेहूं तथा जौ के घास से एक रसी बनाई तथा उस रस्सी के एक किनारे से चुरी गाय के सींग को बांध दिया। रस्सी का दूसरा किनारा ग्वालिन ने अपने हाथ में रखा। जब चुरी

गाय चरते–चरते चन्द्रभागा नदी के किनारे पहुँची तो ग्वालिन भी रस्सी का पीछा करती करती नदी के किनारे पहुँच गई।

नदी के किनारे पहुँचकर ग्वालिन ने देखा कि एक सांप गाय का दूध पी रहा था। ग्वालिन को गुस्सा आया उसने उस सांप को झिड़कते हुए पूछा कि तुम कौन चोर हो, तुम्हारी वजह से मुझे राणा से डांट खानी पड़ती है। वह नाग देवता मनुष्य रूप में प्रकट हुआ, उसने ग्वालिन से कहा, हे ग्वालिन! मुझे माफ करना, मेरी वजह से तुम्हें डांट खानी पड़ी। मेरा नाम दैंतनाग है। मैं यहां बसना चाहता हूं। तुम मुझे अपनी पीठ पर बिठा कर ऊपर गाँव ले चलो। जहां मैं भारी हो जाऊंगा, वहां मुझे नीचे उतार देना। ग्वालिन ने कहा कि अगर मैं तुम्हें ले जाऊंगी तो मेरे पशुओं को घर कौन लेकर आएगा। नाग देवता ने कहा, तुम इनकी फिक्र मत करो। यह तुम्हारे पीछे–पीछे घर पहुँच जाएंगे। इतना कहकर नाग देवता पत्थर की मूर्त में तब्दील हो गया। उस ग्वालिन ने नाग देवता को अपनी पर पीठ पर बिठाया और गाँव की तरफ चल पड़ी। रास्ते में नाग देवता ने ग्वालिन से कहा कि तुमने अपने बालों में माखन लगाया है जिसकी दुर्गंध आ रही है। तुम मुझे उल्टा करके अपनी पीठ पर बिठाओ। ग्वालिन ने ऐसा ही किया। जब वह ऊपर गाँव में राणा के खेत में पहुँची तो उसने आराम करने के लिए वह पत्थर की मूर्ति खेत में रख दी। आराम करने के पश्चात् जब वह दोबारा उस मूर्ति को उठाने लगी तो वह मूर्ति उसे उठाई नहीं गई। ग्वालिन समझ गई कि नाग देवता इसी स्थान पर बात करना चाहते हैं। उस खेत में उस समय राणा ने मक्की बीजी थी जिसके पौधे उसी क्षण नाग देवता के चमत्कार से देवदार के विशाल वृक्षों में बदल गए। उस ग्वालिन के पशु भी उसके पीछे–पीछे घर पहुँच गए। नाग देवता ने ग्वालिन से प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। ग्वालिन ने तीन वर माँगे –

1. पशुओं को चराते वक्त उसके पशु इधर–उधर न भागें।
2. फूल यात्रा के दिन खुले छोड़ने पर भी शाम के समय सभी पशु डूगताइ नामक स्थान पर अपने आप एकत्रित हो जाएं।
3. मुझे अपने सिर का ऊपरी हिस्सा खोलना आ जाए ताकि मैं आराम से बैठ कर अपनी जूं मैं देख सकूं।

नाग देवता ने तीनों वर ग्वालिन को दे दिए और अन्तर्ध्यान हो गए। वर्तमान समय में पांगी घाटी के मुख्यालय किलाड़ के बिल्कुल बीचों–बीच हौंसुण नामक स्थान पर दैंतनाग देवता का मन्दिर स्थित है। हौंसण स्थान पर बसने के कारण नाग देवता हौंसुण नाग देवता के रूप में भी जाने जाते हैं। वर्तमान में भी किलाड़ के लोग फूल यात्रा के दिन अपने पशुओं को बिना चरवाहे के खुला छोड़ देते हैं। कहा जाता है कि आज भी इस अवसर पर सभी पशु एक लट्ठे में चरते हुए डुगताइ नामक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं।

5. जंगो नाग देवता की लोककथा :-

पांगी घाटी के कुलाल नामक गाँव में जंगो नाग देवता का मन्दिर स्थित है जिसके सम्बन्ध में स्थानीय लोगों में लोककथा प्रचलित है –

'बड़ी पेहलकंड़ी बोक अस्ति। जेखे कुलाल होता ग्रां नौतू बसोरु।कुलाल अख लुहे खान थीं। बड़े पेहले जम्मु क्यां कुछ महांणु कुलाल येउए, जे लुहा कहांने कम कतेथ, तनहे धौगरी बोतेथ। से जड़ी लुहे खनन कतेथ। से जगह नाए भेड़ थी। पांणी बेलि लुहे जंग लगतथ। धौघरी के मेहनत पांण घेतिथ। अस समस्याई क्यां निपटण दि तनहे ग्रांए भेड़ देवते स्थापना की। देवते चमत्कारे बेलि खानी भेड़ि नाए पांणी शुखि गयेउ। तनु के जंग लगणा

बंन भुंआ। नागे चमत्कारे बेलि धौगरी खुश भुंए। तन्हे तस नाग नऊं जंगो नाग थियेऊ। तंहड़ा पुथ धौगरी मते साल तस खान क्यां लुहा कहाटे रे। तन्हे बुच कइ वापस नठे तठा कई तड़ि बसि ग्ये। ना शुखंणे बेलि तस ग्रां पांणी कमी भुइ। जंहड़ि बेलि तठणि जिमि खिली भुंइ। तंहड़ि बेलि तस ग्रां नऊं खिलाल पड़ू। जे अबे कुलाल भोइ ग्येऊ[5]।

बहुत समय पहले की बात है। पांगी घाटी का वर्तमान गाँव कुलाल, जो कि उस समय निर्जन क्षेत्र था, में लोहे का भण्डार पाया जाता था। जिससे लोहा निकालने के लिए जम्मू राज्य के पाड्डर क्षेत्र से कुछ मजदूर इस क्षेत्र में आए, जिन्हें धौगरी कहा जाता था। धौगरी जिस स्थान पर लोहा निकालते, वह स्थान नाले के बिल्कुल समीप था, जिस कारण पानी के सम्पर्क में आने से लोहे में जंग लग जाता। धौगरी प्रतिदिन मेहनत करते, लेकिन भारी धातु होने के कारण वे लोहे को पानी के सम्पर्क से नहीं बचा पाते और उनकी मेहनत पर पानी फिर जाता। वे निराश रहने लगे। इस समस्या से निजात पाने के लिए उन्होंने ईश्वर की उपासना की तथा गाँव के समीप मूर्ति की स्थापना की। ईश्वर के चमत्कार स्वरूप क्षेत्र के समीप वाले नाले सूख गये। अब लोहे की खान पानी के सम्पर्क से दूर हो गयी। चूंकि लोहा और पानी एक दूसरे के प्रतिकूल माने जाते हैं, इसलिए देवता ने पानी से लोहे को दूर कर जंग लगने की समस्या से निजात दिलायी और जंगो नाग देवता (लोहे के संरक्षक देवता) के रूप में प्रचलित हुए।

धौगरी कई वर्षों तक इस स्थान से लोहा निकालते रहे और अंततः उनमें से कुछ इसी स्थान पर बस गए, लेकिन नाले सूख जाने के कारण यहां पानी की समस्या हो गई। पानी की कमी के कारण यहां की जमीन खिल (बंजर) हो गई और यह क्षेत्र खिलाल नाम से जाना गया। कालान्तर में खिलाल शब्द बिगड़कर कुलाल हो गया है। अब यह गाँव कुलाल नाम से जाना जाता है।

इस लोककथा को चरितार्थ करने वाली लोक उक्ति आज भी इस गाँव में इस प्रकार प्रचलित है – "हैंई नाग देवता लुहे खनक शुंणता, पर पांणी शणक न शुंणता।" अर्थात् हमारा नाग देवता लोहे की खनक (खन–खन की आवाज) सुनना पसन्द करता है, लेकिन पानी की छनक (छन–छन की आवाज) सुनना पसन्द नही करता[6]।

6. त्रिलोकीनाथ की लोककथा :-

वर्तमान लाहौल–स्पीति जिले में त्रिलोकीनाथ का मन्दिर स्थित है, जो समस्त पंगवाल समुदाय के लिए भी आस्था का केन्द्र है। भगवान त्रिलोकीनाथ से सम्बन्धित लोककथा निम्नवत रूप से प्रस्तुत है –

'पुराणे जमाने लहुए तुंदाह नऊंए ग्रां अख राणा राज कतथ। तस के रजि लच्छ गोरु थिंये। जन्हे चान दि राणे पुहाल था थेतथ। तुंदाह राणे पुहाल नऊं ठिंडणु थिंयु। अख रोज जेखे ठिंडणु हिंणसेरी धार रांणे गोरूंआ चान लगोथा त तस धार सथ शिवलिंग निसतेथ त से राणे गौडीं के दुध पी छटेथ। बेदिया जेखे राणा गौड़ियां लातेथ त गौड़े दुध न दातेथ। मते रोज भुंए गौड़ियां बेदी बख्त दुध न दितु। राणे ठिंडणु पुहाले पुठ शक भुंआ। तनि ठिंडणु पुहाल बुलऊआ तठा तस पुछंण लग्गा। ठिंडणु पुहाले राजे छन्ने क्यें कि मूं अख मौका द अऊं पता लाता। होरि रोज ठिंडणु गौड़िया चान दि ग्या त से अप्पु नियोकी के गौड़ियां हेन दि बिठा। तेखे से शिवलिंग निथे त गौड़ी के दुध पींण लग्गे। ठिंडणु लेहरि अन्तर सहाम्णें येयूआ तनि अप्पु डंडे जे अख–अख करि के छः शिवलिंग पुठ दित्ति। छहियो शिवलिंग छपत भोइ ग्ये। जेखे से सतवा शिवलिंग पुठ लठि जे दांण लग्गा त भगवान शिव तसे सहाम्णे येयूआ। शिव भगवान हेरि के ठिंडणु पुहाल हक्का बक्का भोइ ग्या। तनि भगवान शिव क्यां माफी

मगी। भगवान शिवे बोलु तु मूं पीठि करिके अप्पु जे साते नां जड़ि अऊं गरकीं घ्याल तड़ि मूं भीं छड़। पुहाले तन्नू क्यों। जेखे से पुहाल तुंदाह पुज्जा त से शिवलिंग गरकीं ग्या। तनि से तड़ि भीं छड़ा त अप्पु दौड़ि के रांणे के पुज्जा। रांणा तसे बोक शुंणी के हक्का बक्का रहि ग्या। राणा दौड़ता पधरे पुजा तठा शिवलिंग अग्गर नतमस्तक भुंआ। बाद में राणे तड़ि मन्दर बंणौआ[7]।

कथा का हिन्दी रूपान्तर :-

कहा जाता है कि प्राचीन काल में वर्तमान लाहौल–स्पीति जिले के तुंदाह क्षेत्र में एक राणा शासन करता था, जिसके पास भेड़–बकरियां तथा गोधन की कोई कमी नहीं थी। उस राणा की गायों को चराने का काम ठिंडणु नामक पुहाल करता था। ठिंडणु पुहाल हिणसेरी नामक धार (चारागाह) में जब राणा के पशुओं को चराता तो उस धार में सात शिवलिंग प्रकट होकर राणा की गायों का दूध पी जाते। राणा जब शाम के वक्त दूध निकालने जाता तो उसकी गाय दूध ही नहीं देती। यह क्रम कई दिनों तक चलता रहा। राणा को ठिंडणु पुहाल पर शक हुआ कि कहीं ठिंडणु पुहाल दिन को ही तो उसकी गायों का दूध नहीं निकाल देता। उसने एक दिन ठिंडणु पुहाल को अपने समक्ष प्रस्तुत किया और उससे गायों द्वारा दूध न देने का कारण पूछा। ठिंडणु पुहाल ने कहा महाराज मुझे कुछ नहीं पता, मुझे एक मौका दो। मैं कारण पता लगा लूंगा। अगले दिन ठिंडणु पुहाल उसी चारागाह में गया और खुद छुपकर गायों को चरते हुए देखने बैठ गया। तभी उसने देखा कि सात शिवलिंग प्रकट हुए हैं जो उन गायों का दूध पी रहे है। वह सामने आकर एक–एक करके उन शिवलिंग के ऊपर लाठी का प्रहार करता है। लाठी के प्रहार के पश्चात् क्रमशः छः शिवलिंग अदृश्य हो जाते हैं। जब वह सातवे शिवलिंग पर प्रहार करने लगता है तो भगवान् शिव सामने प्रकट होते हैं। यह देखकर ठिंडणु पुहाल शर्म से झुक जाता है और उसकी आंखों से पानी बहने लगता है। वह भगवान् शिव से क्षमा याचना करने लगता है। भगवान् शिव ठिंडणु पुहाल से कहता है कि मैं इस स्थान पर बसना चाहता हूं। तुम मुझे पीठ पर उठाकर अपने साथ ले चलना और जहां मैं भारी हो जाऊँ, मुझे उसी स्थान पर नीचे उतार देना। ठिंडणु पुहाल ने ऐसा ही किया। वह शिवलिंग तुंदाह नामक स्थान पर पहुँचकर भारी हो जाता है। ठिंडणु पुहाल भगवान शंकर के मार्गदर्शन अनुसार पीठ से उतारकर शिवलिंग को उसी स्थान पर रख देता है और राणा के पास जाकर सारा वृत्तान्त उसे सुनाता है। यह सुनकर राणा भाव–विह्वल हो जाते हैं और भगवान् शिव के सेवार्थ मन्दिर का निर्माण करवा कर विधिवत् रूप से शिवलिंग की स्थापना करते हैं।

भगवान शिव के नाम से निर्मित यह मन्दिर वर्तमान समय में लाहौल–स्पीति जिले के उदयपुर खण्ड के तुंदाह क्षेत्र में है। लाहौल–स्पीति जिला बनने से पूर्व यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही चम्बा का अभिन्न हिस्सा रहा है जिसे चम्बा लाहौल के नाम से भी जाना जाता था। पांगी घाटी तथा वर्तमान लाहौल–स्पीति जिले में हिन्दू तथा बौद्ध दोनों धर्मों के लोग रहते हैं तथा दोनों धार्मिक समुदायों की भगवान शिव में गहरी आस्था है। यह मन्दिर दोनों धर्मों के मध्य सौहार्द की मिसाल पेश करता है। यहां तक कि इस मन्दिर के पुजारी कोई हिन्दू न होकर बौद्ध लामा (पुजारी) होता है।

पंगवाल जनजातीय समाज की देवी–देवता के प्रति अगाध श्रद्धा है। पंगवाल जनजातीय समाज में धर्म के नाम पर किए जाने वाले क्रियाकलापों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पांगी घाटी में प्रचलित धार्मिक लोक कथाओं में इन धार्मिक लोक विश्वासों के सन्दर्भ स्पष्ट तौर पर देखे जा सकते हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पांगी घाटी की अधिकांश जनता हिन्दू है, लेकिन पांगी घाटी में बौद्ध धर्म के लोग भी रहते हैं। पांगी घाटी का हिन्दू समाज पौराणिक देवी–देवताओं के साथ–साथ स्थानीय देवी–देवताओं को भी अपने आराध्य के रूप में पूजता है। हिन्दू समाज की भांति बौद्ध समाज भी नाग–नागिन की कल्पना पानी के शेत के रूप में करता है जिस कारण नाग–नागिन बौद्ध समाज में भी पूजनीय है। पंगवाल जनजातीय समाज धरती को माता तथा भगवान् विष्णु को जगत पिता के रूप में पूजता है। प्राचीन काल में पांगी घाटी का जनजीवन अत्यंत दुष्कर था जिस कारण खाद्य सामग्री के अभाव में भूखमरी, अकाल जैसे संकट आना सहज स्वाभाविक था। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव में प्राचीन काल में चन्द्र ग्रहण सूर्य ग्रहण जैसी प्राकृतिक घटनाओं को जनजातीय समाज धार्मिक लोकविश्वासों के रूप में देखता है। पांगी घाटी के स्थानीय देवी देवता अपने–अपने क्षेत्रों के विशेषज्ञ हैं। कोई पशुपालक देवता है तो कोई खनिज का संरक्षक देवता तथा कोई देवता नशे, शोर–शराबे के खिलाफ है। धार्मिक दृष्टिकोण के चलते पंगवाल जनजातीय समाज पुनर्जन्म, कर्म फल, झाड़–फूंक, तन्त्र–मन्त्र तथा जादू टोने में विश्वास रखता है। हालांकि वर्तमान में यातायात की सुविधा तथा शिक्षा के प्रसार ने लोगों के भीतर वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित किया है, लेकिन फिर भी पांगी घाटी के लोगों में धार्मिक कर्मकाण्डों तथा धार्मिक लोक विश्वासों के प्रति विश्वास बना हुआ है। धार्मिक दृष्टि से घाटी में प्रचलित लोक कथाओं का विश्लेषण कर धार्मिक लोक विश्वासों को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

सहायक सन्दर्भ :-

1. लोकविद् श्रीराम (साक्षात्कार माध्यम से संकलित सामग्री) गाँव व डाक. मिन्धल, तह. पांगी, जिला चम्बा, हि.प्र.
2. लोकविद् श्री मानचन्द (साक्षात्कार माध्यम से संकलित सामग्री) गाँव बलवास, डाक. करियास, तह. पांगी, जिला चम्बा, हि.प्र.।
3. लोकविद् श्रीकंठ (साक्षात्कार माध्यम से संकलित सामग्री) गाँव व डाक. पुर्थी, तह. पांगी, जिला चम्बा, हि.प्र.।
4. लोकविद् श्री महातम चन्द (साक्षात्कार माध्यम से संकलित सामग्री) गाँव क्वास, डाक. किलाड़, तह. पांगी, जिला चम्बा, हि.प्र.।
5. लोकविद् श्री भगवान सिंह (साक्षात्कार माध्यम से संकलित सामग्री) गाँव कुलाल, डाक. मिन्धल, तह. पांगी, जिला चम्बा, हि.प्र.।
6. वही।
7. लोकविद् श्री रत्न चन्द (साक्षात्कार माध्यम से संकलित सामग्री) गाँव शौर, डाक. पुर्थी, तह. पांगी, जिला चम्बा, हि.प्र.।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 130-132

राष्ट्र एकता में भाषाओं की भूमिका

Dr. S. Swarnalatha
Assoc. Prof & Head Dept of Hindi, Nehru Arts & Science College, Coimbatore.
Dr Sajitha J
Asst. Professor of Hindi, Sri Ramakrishna College of Arts & Science, Coimbatore.

परिचय :-

राष्ट्रीय एकता एक देश के नागरिकों के बीच एक आम पहचान की जागरूकता है। इसका मतलब यह है कि यद्यपि व्यक्ति विभिन्न समुदायों, जातियों, धर्मों, संस्कृतियों और क्षेत्रों से संबंधित हैं और विभिन्न भाषाएं बोलते हैं, वे सभी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि वे एक हैं।

राष्ट्रीय एकता का महत्व :-

राष्ट्रीय एकता देश की स्थिरता को बनाए रखने में मदद करती है और विकास में मदद करती है। यह सांप्रदायिक सद्भाव का पोषण करता है और जातिवाद, क्षेत्रवाद और भाषाई मतभेदों से लड़ता है। यह राष्ट्र के प्रति वफादारी की भावना को बढ़ाता है और लोगों को एकजुट करने का लक्ष्य रखता है।

भारत में राष्ट्रीय एकता का महत्व :-

राष्ट्रीय एकता प्रत्येक नागरिक को समान अवसर प्रदान करता है। यह सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास के मामले में एक समान मंच भी प्रदान करता है। राष्ट्रीय एकता अल्पसंख्यकों को एकजुट करने में भी मदद करती है साथ ही उन्हें बिना किसी हस्तक्षेप के अपने तरीके से जीवन जीने की आजादी देती है।

राष्ट्रीय एकता का नारा :-

राष्ट्रीय एकता लोगों को सशक्त बनाती है। राष्ट्रीय एकता शांति और सद्भाव को बढ़ावा देती है। राष्ट्रीय एकीकरण राष्ट्र को शक्ति और ताकत देता है। राष्ट्रीय एकता राष्ट्र को मजबूत बनाती है।

भाषा का महत्व :-

भाषा रोजमर्रा की जिंदगी का एक बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसका उपयोग हर पहलू में संवाद करने के लिए किया जाता है। ईमेल, वार्तालाप, संकेत और प्रतीक, दूसरों के साथ संवाद करने के हमारे तरीके के कुछ उदाहरण हैं, और भाषा के बिना यह संभव नहीं होगा। भाषा संचार और अंतःक्रिया का एक महत्वपूर्ण साधन है। भाषा न केवल तथ्यों और टिप्पणियों को दर्शाती और व्यक्त करती है, बल्कि यह दृष्टिकोण और व्यवहार को भी प्रभावित करती है। इस प्रकार यह सामाजिक विकास के अंतर्निहित सांस्कृतिक पूर्वापेक्षाओं का एक महत्वपूर्ण घटक है।

राष्ट्रभाषा का महत्व :–

एक राष्ट्रीय भाषा एक आम भाषा है जो एक निश्चित देश में सभी जातीय समूहों द्वारा बोली जाती है। राष्ट्रीय भाषाएं लोगों को जोड़ती हैं। इसी तरह, विभिन्न जातीय समूहों के लोग एकजुट नहीं हो सकते यदि वे एक दूसरे को समझने में सक्षम नहीं हो सकते हैं, इसलिए देश के लिए एक राष्ट्रभाषा होना जरूरी है। राष्ट्रभाषा राष्ट्र के लोगों की एकता के पीछे एक प्रेरक शक्ति है, और उन्हें अन्य राष्ट्रों से अलग बनाती है – बशर्ते आप अपनी भाषा को सम्मान दें। अपनी राष्ट्रभाषा को सम्मान देने का अर्थ है कि यह किसी की प्राथमिक भाषा होने के साथ–साथ हर स्तर पर संचार का पसंदीदा स्रोत होना चाहिए। एक साझा, आधिकारिक भाषा लोगों को जोड़ती है। हर कोई एक–दूसरे को समझने में सक्षम है, यहां तक कि प्राथमिक स्तर पर भी, छोटे–मोटे झगड़ों को रोकने और मतभेदों को दूर करने में मदद मिल सकती है। और संचार के एक सामान्य साधन का मतलब सुरक्षित सड़कें और अधिक सटीक चिकित्सा निदान हो सकता है।

राष्ट्र के विकास में भाषा की भूमिका :–

भाषा राष्ट्रीय विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि यह एक राष्ट्र का गठन करने वाले विभिन्न जातीय और सामाजिक समूहों के विभिन्न सदस्यों के बीच समझ, एकता और अपनेपन की भावना को बढ़ावा देती है। यह भाषा के माध्यम से है कि हम दुनिया के साथ संवाद करते हैं, अपनी पहचान को परिभाषित करते हैं, अपने इतिहास और संस्कृति को व्यक्त करते हैं, सीखते हैं, अपने मानवाधिकारों की रक्षा करते हैं और समाज के सभी पहलुओं में भाग लेते हैं।

भाषा और राष्ट्रीय विकास :–

स्वदेशी भाषा, या कोई भी भाषा, राष्ट्र निर्माण की आधारशिला मानी जाती है। यह सबसे महत्वपूर्ण उपकरण है जिसके साथ समाजों को संगठित किया जाता है, और जिस भाषा के साथ लोग अपने विचार तैयार करते हैं, उसे शामिल किए बिना राष्ट्रीय विकास की बात करना शायद ही संभव है।

भाषा के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय विकास :–

मानव संसाधन, आर्थिक संसाधन, सांस्कृतिक (पर्यटन) संसाधन, राजनीतिक संसाधन और यहां तक कि भाषा संसाधन (भाषा नियोजन) का विकास करना, भाषा इन संसाधनों को पूरा करने का निर्धारण उपकरण है। भाषा के बिना अंतर राष्ट्रीय विकास कभी हासिल नहीं किया जा सकता, विशेष रूप से एक आम भाषा के बिना।

एक राष्ट्र, एक भाषा का सिद्धांत :–

एक राष्ट्र, एक भाषा का सिद्धांत भारत में काम नहीं करेगा क्योंकि कई श्मातृभाषाएँश हैं जिन्हें उनके बोलने वाले अधिक महत्व देते हैं। भाषा केवल संचार का माध्यम नहीं है, बल्कि यह आत्मा या भावना है कि वक्ता सहस्राब्दियों से विरासत में मिली अपनी भावनाओं और भावनाओं को व्यक्त करते हैं। यह उनकी संस्कृति और राष्ट्रीय दृष्टिकोण है जो उन्हें नस्ल, धर्म और स्थिति में अंतर के बावजूद एकजुट करता है।

निष्कर्ष :–

यह भारत में एकता के रास्ते में खड़ी एक भाषा की कमी नहीं है, बल्कि यह शैतानी जाति व्यवस्था, गहरी जड़ वाले पूर्वाग्रह, भेदभाव, अस्पृश्यता, आर्थिक और सामाजिक असमानता और भ्रष्टाचार है जो आजादी के 73 साल बाद भी भारत को विभाजित करता है। इसलिए हमें सबसे पहले अपने घर को व्यवस्थित करना चाहिए,

और किसी विशेष भाषा को केवल इसलिए पेश नहीं करना चाहिए क्योंकि यह कई लोगों द्वारा बोली जाती है। भारत में एक नागरिक के लिए अपनी 'मातृभाषा' या स्थानीय भाषा, अंग्रेजी और हिंदी जानना अच्छा है। भाषा सीखना अनायास और स्वेच्छा से आना चाहिए – मजबूरी से नहीं, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. हिंदी पत्रकारिता और राष्ट्रीय एकता – डॉ. हरिमोहन, डॉ. जयंत शुक्ल।
2. राष्ट्रीय अखंडता –देवेंद्र स्वरूप।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 133-137

चिकित्सा पर्यटन की दिशा में अग्रसित होता माधव गौ-विज्ञान अनुसंधान संस्थान

अभिषेक श्रीवास्तव, शोधार्थी एवं सहायक आचार्य,
डॉ० लोकेश कुमार त्रिपाठी, सहायक आचार्य,
संगम विश्वविद्यालय, भीलवाड़ा (राज०)

शोध सार :-

एक ओर जहाँ कृषि मानव जीवन का आधार है तो वहीं दूसरी ओर गौवंश कृषि का आधार है। भागवत पुराण, विष्णु पुराण एवं महाभारत ग्रंथों में वर्णित कथाओं के अनुसार गौवंश की उत्पत्ति देवों एवं असुरों द्वारा किए गए समुद्र मंथन से प्राप्त उत्पाद के रूप में हुई है। सनातन युग से ही भारतीय संस्कृति गौवंश की कृपा से पोषित होती रही है। भारतीय संस्कृति के हृदय में गोपाल भगवान श्री कृष्ण विराजित हैं। हमारे देश में गौपालन के कार्य को प्रतिष्ठा एवं सुख-समृद्धि का परिचायक माना जाता है। बावजूद इसके हम इस कटु सत्य को भी नकार नहीं सकते कि गौपालक देश भारतवंश में ही गायों को कत्लखानों में बड़ी ही निर्ममता से काटा जा रहा है। इतना ही नहीं गौ-उत्पादों की तस्करी भी की जा रही है। गौवंश को संरक्षित करने तथा गौ-उत्पादों के चिकित्सकीय उपयोग करने के प्रयोजन से गौवंश पर आधारित चिकित्सा पर्यटन का कार्य भीलवाड़ा जिले के गाडरमाला के नौगावाँ में स्थित माधव गौ-विज्ञान अनुसंधान संस्थान में विगत 20 वर्षों से अनवरत चलायमान है। शोधार्थी की ओर से प्रस्तावित शोधपत्र में इस बात पर बल दिया गया है कि वैचारिक मंथन तथा शोध कार्य द्वारा गौपालन से अनेक आर्थिक प्रयोजनों को एक साथ साधा जा सकता है जिनमें मुख्य है, चिकित्सा पर्यटन।

मुख्य शब्द :- चिकित्सा पर्यटन, गौवंश, औषधियाँ, चिकित्सा, भीलवाड़ा।

भारत की जलवायविक दशाओं ने यहाँ मिश्रित कृषि को फलीभूत किया है। दरअसल वह कृषि पद्धति जिसमें फसलोत्पादन एवं पशुपालन का साहचर्य पाया जाता है, मिश्रित कृषि कहलाती है। इस परिप्रेक्ष्य में राजस्थान की स्थिति कुछ भिन्न प्रतीत होती है। यहाँ क्षेत्रफल की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा राज्य होने तथा समुद्र से दूर स्थित होने के कारण असमकारी जलवायु पाई जाती है। राज्य का दो-तिहाई भाग मरूस्थलीकृत है। राज्य में केवल पूर्वी एवं दक्षिण-पूर्वी भाग पर ही फसलोत्पादन का कार्य किया जाता है। शेष भू-भाग शुष्कता के प्रभाव से ग्रसित है। इस प्रकार राज्य के दो-तिहाई से अधिक भू-भाग में फसलोत्पादन की बजाए पशुपालन के कार्य को अधिक प्रायिकता प्रदान की जाती है। राजस्थान सरकार से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर उपर्युक्त कथन की पुष्टि की जा सकती है। राजस्थान के सकल घरेलू उत्पाद (जी० डी० पी०) में पशुधन क्षेत्र का 13.

89 प्रतिशत योगदान है वहीं फसली क्षेत्र का 12.61 प्रतिशत योगदान है। इस प्रकार राज्य में कृषि के अंतर्गत संचालित विभिन्न प्रकार की गतिविधियों में पशुपालन का कार्य ही केन्द्र बिन्दु पर है। गौरतलब है कि यदि चिकित्सा के साथ–साथ पर्यटन के प्रयोजन से भी गौपालन के कार्य को किया जाए तो राजस्थान की अर्थव्यवस्था में इसके योगदान को और अधिक बढ़ाया जा सकता है।

हालाँकि चिकित्सा पर्यटन एक नवीन अवधारणा है किन्तु फिर भी भीलवाड़ा जिले के गाडरमाला के नौगावाँ में स्थित माधव गौ–विज्ञान अनुसंधान संस्थान चिकित्सा पर्यटन के क्षेत्र में एक मार्गदर्शक की भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

माधव गौ-विज्ञान अनुसंधान संस्थान (ग्राम नौगाँवा, गाडरमाला, जिला भीलवाड़ा) :-

वर्ष 2002 में स्थापित यह संस्थान देशी नस्ल की गायों के संरक्षण, संवर्द्धन एवं नस्ल सुधार तथा उनके माध्यम से चिकित्सकीय सेवाएँ प्रदान करने संबन्धी कार्य का संपादन करता है। भीलवाड़ा से राजसमन्द को जाने वाले राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या–758 पर स्थापित इस संस्थान की स्थापना राष्ट्रीय स्वयं सेवक के सह संघचालक श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर के नाम पर की गई थी। श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर के अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप गौहत्या निषेध संबन्धी एक मांग–पत्र को लगभग दो करोड़ से अधिक लोगों द्वारा हस्ताक्षरित कर तत्कालीन भारत के राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी के सम्मुख प्रस्तुत किया जाना संभव हो सका था।

गौवंश के गोबर व गौमूत्र के प्रयोग द्वारा संस्थान में आने वाले पर्यटकों को चिकित्सकीय एवं स्वास्थ्य संबन्धी परामर्श सेवाएँ प्रदान किया जाना लक्ष्य घोषित किया गया था। आवारा पशु की भाँति गायों को खुले में न छोड़ा जाए तथा उन्हें कत्लखानों तक न ले जाया जाए, इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इस संस्थान में चिकित्सा पर्यटन संबन्धी अनेक गतिविधियों का संचालन किया जा रहा है। गौमाता तथा उनके बछड़ों को निकट से निहारने, चारा व पानी देकर उनकी सेवा करने, उनके प्राप्त उत्पादों से चिकित्सकीय लाभ लेने तथा विशेषज्ञों से स्वास्थ्य संबन्धी परामर्श लेने के उद्देश्य से यहाँ पर्यटकों की आवाजाही बनी रहती है। माधव गौ–विज्ञान अनुसंधान संस्थान में पर्यटकों के लिए मुख्य आकर्षण अग्रवर्णित हैं।

श्री साँवलिया सेठ मंदिर :-

भगवान श्रीकृष्ण को गाय अतिप्रिय है यही कारण है कि माधव गौ–विज्ञान अनुसंधान संस्थान के प्रवेश द्वार पर श्री साँवलिया सेठ का एक भव्य मंदिर बनाया गया है। हरितिमा के मध्य पीले बलुआ पत्थर से निर्मित उतुंग शिखर युक्त इस मंदिर के गर्भगृह में श्रीकृष्ण के बालस्वरूप श्री साँवलिया सेठ की शृंगारयुक्त मनभावन प्रतिमा विराजित है। मंदिर की दीवारों पर की गई बारीक नक्काशी यहाँ आने वाले पर्यटकों को अपनी ओर सहसा आकृष्ट करती है।

गौवंश की विविधता :-

माधव गौ–विज्ञान अनुसंधान संस्थान में गौवंश की विभिन्न प्रकार की नस्लों का पालन किया जाता है जिनमें प्रमुख हैं–राठी, गिर, थारपारकर एवं साहीवाल। अधिक मात्रा में एवं गुणवत्तायुक्त दूध देना इन सभी नस्लों की प्रमुख विशेषता है। यहाँ गौवंश का प्राकृतिक प्रजनन करवाया जाता है। इसके लिए वैदिकयुगीन पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। वैदिकयुगीन पद्धति के अंतर्गत यहाँ स्थापित गौवंश विचरण स्थलों में संसर्ग हेतु तैयार गाय को उसी नस्ल के बैल के साथ विचरण हेतु छोड़ दिया जाता है। संस्थान में स्थापित किसान प्रशिक्षण केन्द्र

में स्थानीय पशुपालकों को गौवंश के बेहतर रख–रखाव का निःशुल्क एवं नियमित प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

सप्तगौमाता एवं सप्तनन्दी स्थल :–

शास्त्रों में वर्णित है कि गौमाता की कृपा से ही महिलाओं को गर्भवती होने का सौभाग्य प्राप्त होता है। इस हेतु गर्भवती महिलाओं के लिए गौमाता को चारा व अन्न खिलाकर उनकी सेवा करना एक आवश्यक कार्य माना गया है। यहाँ सप्तगौमाता एवं सप्तनन्दी परिक्रमा स्थलों की स्थापना की गई है जहाँ निःसंतान दंपती गौमाता एवं नंदी की परिक्रमा कर उनका आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

गोबर गैस (बायो गैस) संयन्त्र :–

गौवंश से उत्सर्जित अपशिष्ट पदार्थों को उपयोग करने के उद्देश्य से यहाँ क्रमशः 03, 45 व 65 घन मीटर आयतन वाले गोबर गैस संयन्त्र स्थापित किए गए हैं। संस्थान के कार्मिकों के लिए भोजन तथा गौवंश के लिए पशु आहार का निर्माण इन्हीं संयन्त्रों द्वारा उत्सर्जित गोबर गैस (बायो गैस) के प्रयोग से किया जाता है। गोबर गैस संयन्त्रों के निकट ही यहाँ 3, 5 एवं 20 हॉर्स पॉवर के विद्युत् जनरेटर्स स्थापित किए गए हैं जो कि संयन्त्रों से प्राप्त गोबर गैस से विद्युत् उत्पादन करते हैं। इस संस्थान को अपनी जरूरत की ऊर्जा इसी उत्पादित विद्युत् से प्राप्त होती है।

जैविक कृषि एवं संधृत विकास :–

हमारे देश की वर्तमान पीढ़ी जैव सांद्रण की समस्या से त्रस्त है। जैव सांद्रण अथवा बायोमैग्निफिकेशन का अभिप्राय है खेतों में प्रयुक्त रासायनिक उर्वरकों का फसलों के माध्यम से मानवों में संकेन्द्रित होते जाना। इस प्रकार संचित रसायन मानव स्वास्थ्य को बड़ा नुकसान पहुँचाते हैं। जैविक कृषि का अधिकाधिक उपयोग इस समस्या का सर्वाधिक व्यावहारिक निदान है। जैविक कृषि का अभिप्राय है रसायन मुक्त कृषि जिसके अंतर्गत प्राकृतिक खाद–बीज आदि का प्रयोग किया जाता है। जैविक कृषि को बढ़ावा देने के लिए संस्थान में स्थापित विशाल टाँकों में एज़ोला का उत्पादन किया जा रहा है। एज़ोलायुक्त चारा पशुओं को दिए जाने से उनमें दूध की मात्रा बढ़ जाती है। संस्थान में वर्मी कंपोस्ट खाद उत्पादन केन्द्र भी स्थापित किया गया है। इतना ही नहीं निकटवर्ती खेतों में खाद के रूप में प्रयुक्त किए जाने के लिए संस्थान की ओर से गोबर गैस संयन्त्रों से उत्सर्जित व्यर्थ पदार्थ (स्लरी) का निःशुल्क वितरण भी किया जाता है।

औषधि निर्माण केन्द्र :–

अनुसंधान संस्थान में स्थापित औषधि निर्माण केन्द्र में गाय के गोबर एवं गौमूत्र से विभिन्न प्रकार के असाध्य रोगों के लिए कारगर औषधियों का निर्माण किया जाता है। यहाँ नियुक्त कुशल एवं अनुभवी आयुर्वेदाचार्यों द्वारा दूध, दही, घी, गौमूत्र एवं गोबर के प्रयोग से पंचगव्य औषधियों का उत्पादन किया जाता है।

चिकित्सा एवं परामर्श सेवा केन्द्र :–

माधव गौ–विज्ञान अनुसंधान संस्थान में आने वाले स्वास्थ्य के प्रति सजग पर्यटकों को यहाँ नियुक्त प्रशिक्षित एवं अनुभवी आयुर्वेदाचार्यों एवं वैद्यों द्वारा उपचार एवं परामर्श संबन्धी सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। पर्यटकों को यहाँ उत्पादित च्यवन प्राशावलेह, हरड़ चूर्ण, दाड़ीमाष्टक चूर्ण, आँवला चूर्ण, अश्वगंधा चूर्ण, तरूणीकुसुमाकर चूर्ण, त्रिफला चूर्ण, अर्जुनत्वक चूर्ण, तालीसादी चूर्ण, हिंग्वाष्टक चूर्ण, संजीवनी वटी, चंद्रप्रभा वटी, वातनाशक तेल, नारायण तेल, महाभृंगराज तेल आदि औषधियाँ प्रदान की जाती हैं।

संस्थान की ओर से संचालित अन्य सेवाएँ :-

– यहाँ आने वाले पर्यटकों को संस्थान की ओर से उत्पादित धूपबत्ती, हवन सामग्री, गुलकन्द, दंत मंजन आदि का वितरण किया जाता है।

– संस्थान की ओर से भीलवाड़ा शहर के चुनिन्दा क्षेत्रों में दुग्ध, घी, दही, छाछ आदि वितरित किए जाते हैं।

– गौवंश संरक्षण के प्रति जन–जागरूकता लाने के लिए संस्थान द्वारा सरकारी व गैर–सरकारी विद्यालयों में गौ–विज्ञान एवं सामान्य ज्ञान परीक्षा का वार्षिक आयोजन करवाया जाता है।

– बच्छ बारस एवं गौवर्द्धन पूजा जैसे महत्त्वपूर्ण दिवसों पर संस्थान की ओर से संस्थान परिसर तथा निकटवर्ती क्षेत्र में लोकानुरंजक खेल प्रतियोगिताओं जैसे बैल पूजन, बैल सज्जा एवं बैल दौड़ प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है।

– संस्थान की ओर से सामयिक वृक्षारोपण अभियानों का संचालन किया जाता है।

– संस्थान की ओर से गौसेवा प्रशिक्षण कार्यक्रमों एवं गौसेवा संगोष्ठियों का आयोजन भी किया जाता है जिनमें देश के विभिन्न भागों से समाजसेवक, संतजन, कार्यकर्त्ता, प्रशिक्षक, शोधार्थी एवं विचारक आमंत्रित किए जाते हैं।

समस्या एवं सुझाव :-

राष्ट्रीय राजमार्ग को माधव गौ–विज्ञान अनुसंधान संस्थान से जोड़ने वाली सड़क जीर्ण–शीर्ण हो चुकी है जिससे गर्मियों में धूल उड़ती है जबकि बारिश में इनमें जल भराव हो जाने से दुर्घटना की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। स्थानीय प्रशासकों को इस समस्या के निदान हेतु आवश्यक कदम उठाने चाहिए।

माधव गौ–विज्ञान अनुसंधान संस्थान के बारे में जानकारी प्रदायक लिखित एवं मुद्रित सामग्री के सीमित मात्रा में उपलब्ध होने के कारण जिले के बाहर निवासित लोगों को इसके बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती। यदि पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों एवं समाचार पत्रों में जानकारी प्रदायक सामग्री को प्रकाशित करवा दिया जाए तो यहाँ पर्यटकों आवाजाही में वृद्धि लाई जा सकती है। शोधार्थी द्वारा लिखित यह शोध–पत्र इस दिशा में किया गया एक प्रयास है।

संस्थान में पर्यटकों को फिलहाल सामान्य प्राकृतिक चिकित्सा (नैचुरोपैथी) की सेवा ही प्रदान की जा रही है। यहाँ अन्य प्रकार की प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों जैसे–मड थैरेपी, हाइड्रो थैरेपी, एक्यूप्रेशर, मैग्नेट थैरेपी आदि की समुचित व्यवस्था की जा सकती है। ऐसा किए जाने से यहाँ पर्यटकों की संख्या में इजाफा होना संभव प्रतीत होता है।

संस्थान में संचालित वैज्ञानिक एवं नवाचारी गतिविधियों के आधार पर यह संभव प्रतीत होता है कि निकट भविष्य में यहाँ पशुपालन संबन्धी एक शैक्षणिक संस्थान की स्थापना की जा सकती है। जिला प्रशासन एवं राज्य सरकार की ओर से इस बारे में विचार किया जाना अपेक्षित है।

सार रूप में कहा जा सकता है कि माधव गौ–विज्ञान अनुसंधान संस्थान ''आम के आम और गुठलियों के दाम'' वाली कहावत का सत्यापन करता है। गौवंश संरक्षण, संधृत विकास एवं चिकित्सा पर्यटन के क्षेत्र में संस्थान द्वारा मार्गदर्शक की भूमिका का निर्वहन किया जा रहा है। फिलहाल यह एक दैनिक पर्यटन स्थल के

रूप में विद्यमान है जहाँ 3–4 घण्टों के लिए पर्यटक आते हैं किन्तु जैसे–जैसे यहाँ सुविधाओं एवं सेवाओं की बढ़ौतरी होगी, पर्यटकों का अधिक दिवसों के लिए ठहराव भी बढ़ता दिखाई देने लगेगा।

संदर्भ सूची :-

1. Profile and Progress, 2020-21, The Rajasthan State Cooperative Bank Ltd., Jaipur, P. 02
2. आर्थिक समीक्षा 2021–22, आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय, सांख्यिकी विभाग, राजस्थान सरकार, पृ० सं० 16
3. माधव गौ–विज्ञान अनुसंधान संस्थान से प्राप्त एक दस्तावेज के अनुसार।
4. दिनांक 01 अगस्त 2021, दिन रविवार, दोपहर 2:00 बजे माधव गौ–विज्ञान अनुसंधान संस्थान के प्रबंधक महोदय से लिया गया साक्षात्कार।
5. दिनांक 01 अगस्त 2021, 07 अगस्त 2021 एवं 23 जुलाई 2022 के शोधार्थी की ओर से किया गया सर्वेक्षण।
6. दिनांक 07 अगस्त 2021, दिन रविवार, प्रातः 11:30 बजे माधव गौ–विज्ञान अनुसंधान संस्थान में नियुक्त कृषि वैज्ञानिक से लिया गया साक्षात्कार।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 138-143

मेवाड़ के महाराणा कुम्भा : महान् निर्माता

डॉ. महेश आमेटा
शोध सहायक, संस्कृत विभाग, साहित्य संस्थान,
जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड–टू–बी–युनिवर्सिटी), उदयपुर

महाराणा कुम्भा :–

कला और संस्कृति के महान् उन्नायक, उद्रक साहित्यिक प्रतिभा के धनी, हिन्दु धर्म के तेजस्वी रक्षक, अपराजित योद्धा स्थापत्य की अनुपम कृतियों से पुरी मेवाड़ भूमि के अलंकर्ता, युद्व, धर्म, दान ओर दया इन चतुर्विद वीर्य से अलंकृत, शस्त्र और शास्त्र, शोर्य ओर ओदार्य, वीर्य और धैर्य, पराक्रम और कला साधना, शास्त्र–ओज, ब्रह्मप्रसाद ओर रसिकजनोचित माधुर्य के उदात्त प्रतिक, महाप्राण, माहशील, माहशूर, महाराणा कुम्भकर्ण (कुंभा) अप्रतिम संगीत शास्त्रीय संगीत एवं कुशल वीणा वादक थे।

महाराणा कुम्भा का वंश :–

महाराणा मोकल के ज्येष्ठ पुत्र महाराणा कुम्भा थे, इनकी माता का नाम सौभाग्य देवी और वह जैतमल सांखला की बेटी थी। महाराणा कुम्भा के राज्यारोहण की तिथी विवादास्पद होने से इनकी जन्म तिथि भी विवादास्पद है, महाराणा कुम्भा के लघुभ्राता केसर कुंवर सोलंकणी के पुत्र खेमा का जन्मकाल वि.सं. 1476 (ई. 1419) निशचित है। अतः खेमा के ज्येष्ठभ्राता महाराणा कुम्भा का जन्म इनसे कुछ पूर्व ही होना चाहिये। मेवाड़ के राज्य परिवार से संम्बन्धित महाराणा कुम्भा का एक प्राचीन चित्र भी उपलब्ध हुआ है, जिसमे महाराणा कुम्भा का जन्म समय वि.सं. 1474 (ई.1417) बताया गया है। कुम्भा के जन्म के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हैं।

महाराणा कुम्भा के जन्मस्थान और नामकरण के सम्बन्ध मे बताया गया है कि कुम्भा का जन्म दिर्घकालिन गर्भावस्था के उपरान्त भी नहीं हुआ था परन्तु ''राजरत्नाकर'' के कर्ता सदाशिव नागर के अनुसार यही साम्य ''कुंभकर्ण नाम'' का आधार बना।

राजस्थान के प्रसिद्व लोकदेवता बाबा रामदेवजी (वि.सं.1461–1516) के अनुयायी महात्मा आकर ठहरे। इन महात्मा को जब गर्भस्थ शिशु के जन्म न लेने की बात पता चली, तो इन्होंने 101 मिट्टी के घड़े जल से भरे हुए मंगवाए और ढोल–पठाकों की आवाज के साथ इन्हें बारी–बारी जमीन पर गिराते हुए उच्चारण किया–''कुम्भ फुटै, ''कुंभो जन्मै।'' तब 101 घड़े फुटने के बाद कुम्भा का जन्म हुआ तथा महात्मा के वचनानुसार महाराणा मोकल के युवराज का नाम ''कुंभा'' रखा गया''।

महाराणा कुम्भा मेवाड़ राजवंश के देदिप्यमान नक्षत्र थे। महाराणा कुम्भा के मेवाड़ राजवंश के संस्थापक

गुहिल थे, जिनका समय छठी शताब्दी (वि.स. 623 ई. 566) बताया गया है। गुहिल के कारण ही मेवाड़ का राजवंश गुहिलोत के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इसी गुहिलवंशीय धारा उज्ज्वल नक्षत्र में महाराणा कुम्भा हुए थे।[1]

महाराणा कुम्भा वि.सं. 1490 (हि. 836 ई. 1433) में अपने पिता महाराणा मोकल की जगह पाट पर बेठे। कर्नल टॉड ने और बड़वा भाटों ने इनकी गद्दी पर विराजने का समय वि.सं. 1475 (हि. 821–1418) लिखा है, परन्तु वह गलत है, लेकिन चित्तौड़ की महासतियों में किले की पश्चिमी दीवार पर महाराणा मोकल का बनाया हुआ समीद्धेश्वर महादेव का मन्दिर मौजूद है, जिसकी प्रशस्ति के 74 वें श्लोक में साफ लिखा है कि विक्रम संवत 1485 में महाराणा मोकल ने इसकी प्रतिष्ठा अपने हाथों से की। अतः इस श्लोक अर्थ से जाहिर होता है कि उस समय महाराणाा मोकल विद्यमान थे। इसी तरह महाराणा अव्वल अमरसिंह के समय के बने हुए अमर काव्य नामी ग्रंथ में भी महाराणा कुम्भा का गद्दी पर बैठना विक्रम संवत 1490 लिखा है।[2]

महाराणा कुम्भा की वंशावली

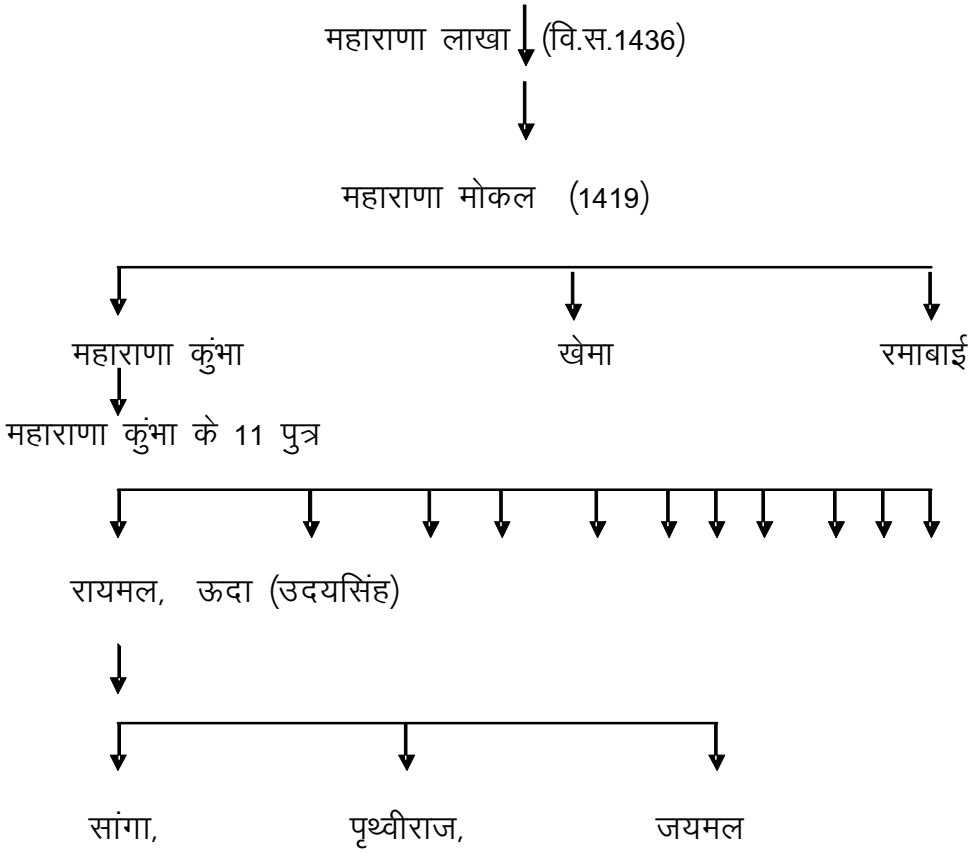

विवाह एवं संतान :-

महाराणा कुम्भा की 1600 सौ रानियों क उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है। अनके ग्रंथो एवं प्रशस्तियों में कुम्भा की पत्नि कुंभलदैवी एवं अपूर्व देवी रानियों का नामोल्लेख एवं 11 पुत्रों एवं 1 पुत्री रमाबाई का वर्णन मिलता है। कुम्भा के शारिरीक सौष्ठव यथा–शृंगार विश्म्भरो, हृष्ट शरीर शालीना आदि साथ ही कंभा सुदर्शन एवं बलिष्ठ थे।[3]

महाराणा कंभा का राज्याभिषेक :-

मेवाड़ की शिसोदीया शाखा नक्षत्रावली के ज्योतिपुंज महाराणा कुम्भा वि.सं. 1490, ई 1433 में चित्तौड़ के

राजसिंहासन् पर बैठे परन्तु महाराणा कुम्भा के राज्याभिषेक का समय भी विवादास्पद है किन्तु कुम्भा का प्रथम ज्ञात शिलालेख पदराड़ा गांव वि.सं. 1490 का है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि वि.सं. 1490 में महाराणा कुम्भा का राज्याभिषेक हो चुका था।[4]

महारणा कुंभा की मृत्यु :-

महाराणा कुम्भा को अंतिम समय में उन्माद रोग हो गया था। एक दिन वह कुभलगढ़ के मामादेव के मंदिर के निकटवर्ती जलाशय के तट पर बेठे हुए थे, तभी उनके राज्यलोभी पुत्र ऊदा (उदयसिंह) ने कटार से उन्हें अचानक मार दिया। विक्रम संवत 1525 (ई. 1468) में महाराणा कुम्भा की मृत्यु हो गई। इस प्रकार महाराणा कुम्भा का समृद्धीशाली युग इतिहास की अमर धरोहर बन कर रह गया। जिसे उनके पौत्र सांगा और प्रताप ने पल्लवित किया।

महाराणा कुम्भा एवं उनकी सामरिक उपलब्धियॉ :-

महाराणा कुम्भा निर्माण कार्यो में अभिरूचि रखने वाले शासक थे। कुम्भा की सृजनशीलता प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप मेवाड़ के 84 किलों में से 32 किलों का निर्माण व अनेक मन्दिर एवं जलाशयों का निर्माण महाराणा कुम्भा ने अपने कार्यकाल में करवाया। इनका उल्लेख शिलालेखों में भी मिलता हैं। चित्तौड़गढ़ स्थित ''कीर्तिस्तम्भ'' कुम्भा की निर्माण कला के क्षेत्र में विशेष देन है। चित्तौड़गढ़ के किले में बुर्जों का निर्माण, रथमार्ग, रामपोल आदि अनेक द्वारों का निर्माण कुम्भा द्वारा करवाया गया तथा कुम्भा श्याम मन्दिर, जलाशय एवं बाग का निर्माण भी कुम्भा ने करवाया। कुम्भा ने एकलिंगजी के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया एवं सिरोही में बसंतपुर को पुनः बसाया।

आबू में अचलेश्वर के पास अचलगढ़ दूर्ग का निर्माण कार्य कुम्भा की सृजनशील रूची का प्रतीक है। महाराणा कुम्भा की निर्माण विषयक अभिरूचि एवं प्रोत्साहन से उस काल में स्वतन्त्र रूप से भी अन्य लोगों द्वारा पर्याप्त निर्माण कार्य किये गये। जिनमें राणकपुर का जैन मन्दिर अपने निर्माण कार्य की जटिलता, कलात्मक बारीकी एवं सौन्दर्य की दृष्टि से विश्व प्रसिद्ध है। महाराणा कुम्भा ने शोर्य और साहस के साथ अपनी राजनैतिक दुरदर्शिता एवं कूटनीति का परिचय देते हुए मेवाड़ राज्य को विस्तार तथा दृढ़ता दोनों प्रदान की। महाराणा कुम्भा की प्रमुख विजय राज्यविस्तार सम्बन्धी घटनाओं में–''आबू विजय'' प्रमुख है, जिसे कुम्भा ने सिरोही के स्वामी सैंसमल के समय डोडिया नरसिंह की अध्यक्षता में प्राप्त की।

राणकपुर के जैन मन्दिर वि.सं. 1496 के शिलालेख में महाराणा कुम्भा के राज्य की प्रथम सात वर्षो की विजय का उल्लेख, कुभलगढ़ शिलालेख वि.सं. 1517 में कुम्भा की हाड़ोती विजय का उल्लेख मिलता है। नागौर में मुसलमानो द्वारा गौवध करने पर पुनः कुम्भा द्वारा किला फतह किया गया। कुम्भा के इन प्रमुख विजय अभियानो के अतिरिक्त शिलालेखों में नारदीय नगर, शोध्यानगरी, हमीरपुर, धान्य नगर, जनकाचल, चम्पावती, मलारण, सीहार, रणाथम्भोर, आंबेर, आदि विजयो का भी उल्लेख मिलता है। महाराणा कुंभा द्वारा निर्मित मन्दिर–

The Sun Temple, Ranakpur-

From among the other temples of Ranakpur, the sun temple, which was constructed to the wishes of maharana Kumbha, is also an interesting monument. In respect of different types and desings of Hindu temples of India, The Sun temple of Ranakpur represent the type known as 'Varun Vrittayat Manik" in Indian traditions. It stands on a rectangular base, yet with an elliptical socle. In its vertical form, the temple contains all those parts which, accrding to indian traditions, have been felt necessary to be constructed in a first-rate divine dwelling. Its outer walls are studded with masterly worked out Hindu sculptures and motifs, particularly notable are the sixty images of the sun Good.[5]

कुम्भा श्याम मन्दिर :-

A - A front view of Kumbh- Shayam Temple, Chittorgarh. 15-16 Centuries AD.

राणा कुम्भा द्वारा दो धार्मिक स्थल बने हुए है। कुम्भा श्याम जो आबू पर्वत पर स्थित है। अन्यत्र होने पर यह लोगों का पर्याप्त ध्यान आकर्षित करता है। यहां अधिक रोचक वस्तुओं के कारण भीड़ से महत्त्व कम हो गया है। दुसरा भारत के सर्वाधिक विशाल भवनों में से एक है। यह एक मिलियन स्टर्लिंग से अधिक लागत से निर्मित हुआ है। कुम्भा ने इसके निर्माण में अस्सी हजार पाउंड का योगदान दिया था। यह मेवाड़ की समुच्य भूमि के पश्चिम के उतार पर स्थित सादड़ी के दर्रे में बना हुआ है, यह ऋषभदेव को समर्पित हैं।

महाराणा कुम्भा द्वारा दूर्ग निर्माण :-

मेवाड़ में रक्षा हेतु निर्मित 84 दूर्गों में से 32 का निर्माण राणा कुम्भा ने करवाया था। उन्होंने कुम्भलमेर के विशाल और अजेय दूर्ग का निर्माण करवाया। जिसका स्थान चित्तौड़ के दूर्ग के पश्चात आता है। जब महाराणा कुम्भा ने नागौर विजय प्राप्त की तब वे वहां से नगर के दरवाजे उठवा लाये, जिसमे हनुमान की मूर्ति लगी हुई थी। जो उनके संरक्षक देवता थे। आज भी दरवाजे का नाम हनुमान के नाम से है। उन्हौने आबू की चोटी पर प्राचीन प्रमारों के किले के अन्दर एक नया दूर्ग बनवाया, जहां वे बहुधा रहा करते थे।

पश्चिमी सीमान्त और आबू के मध्य के दर्रो की राणा ने सैन्य–दृष्टि से मजबूती बढ़ाई तथा वर्तमान सिरोही के निकट वासन्ती नामक दूर्ग का निर्माण कराया। साथ ही अरावली के मेड़ों से देवगढ़ और शेरोनाला

की रक्षा करने के लिये माचीन का दूर्ग बनवाया। झारोल और पनारवा के भूमिया झीलों को नियंत्रण में रखने के लिए उन्होंने आहोर तथा अन्य छोटे दुर्गो को पुनः व्यवस्थित किया। मेवाड़ तथा मारवाड़ की सीमा का निर्धारण भी राणा कुम्भा ने करवाया।[6]

कुम्भा महल, चित्तौड़

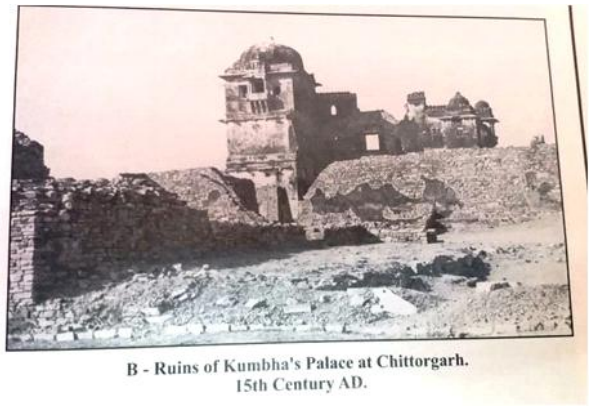

B - Ruins of Kumbha's Palace at Chittorgarh.
15th Century AD.

कुम्भा महल

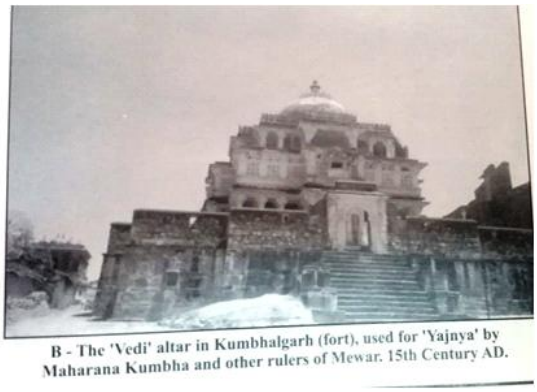

B - The 'Vedi' altar in Kumbhalgarh (fort), used for 'Yajnya' by Maharana Kumbha and other rulers of Mewar. 15th Century AD.

रामपोळ, चित्तौड़

रामपोल

कुम्भलगढ़

विजयस्तम्भ, चितौड़ :–

जब पृथ्वी को हिलाते हुए गुर्जर खंड ओर मालवा के राजा समुद्र के समान विशाल सेना लेकर मेड़पत पर आक्रमण करने आये उस घटना के 11 वर्ष बाद कुम्भा इस स्तम्भ की नींव रखी, जो 10 वर्षो में बनकर पुरी हुई यह 10 वर्ष की अवधी इस स्तम्भ को मेवाड़ में स्थिर करने के लिये निश्चय ही बहुत कम थी जिस अलंकृति के कारण चितौड़ मेरू पर्वत को भी उपहास की दृष्टि से देखा जा सकता था।

महाराणा कुम्भा परमवीर, युद्धकोशल महान् निर्माता, संगीत आदि कलाओ के मर्मज्ञ, महान् विद्वान और बहुमुखी प्रतिभा से युक्त व्यक्तित्व के स्वामी थे। महाराणा कुंभा ने मेदपाट की मर्यादा और मानस सम्मान को ऐसी चमक प्रदान की, जिससे इस महिमामई मैदिनी का इतिहास सारे देश का इतिहास बनकर रह गया। इसी कारण मेवाड़ के

महाराणा कुम्भा एक आदर्श निर्माता थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. वीर विनोद मेवाड़ का इतिहास–प्रथम भाग–लेखक –सामलदास, प्रकाशक–मोतीलाल बनारसी दास, प्रथम मुद्रण 1886 पृ.सं. 317
2. वीर विनोद मेवाड़ का इतिहास–प्रथम भाग–लेखक –सामलदास, प्रकाशक–मोतीलाल बनारसी दास, प्रथम मुद्रण, 1886 पृ.सं. 318
3. महाराणा कुम्भा की भारतीय संगीत को देन, लेखक–डॉ. श्रीमती सीमा राठौड़, प्रकाशक–राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण–2001, पृ. सं. 8–10
4. महाराणा कुम्भा की भारतीय संगीत को देन, लेखक–डॉ. श्रीमती सीमा राठौड़, प्रकाशक–राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण– 2001, पृ. सं. 12–14
5. Architectural Glories of Mewar-Dr. Raj Shekhar Vyas-Published Raj book enterprises, Jaipur- First Edition-2004, p.no.86
6. राजस्थान का पुरातत्व एवं इतिहास – संपादक – विलियम क्रुक – प्रकाशन – राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर प्रथम संस्करण 2015 प.सं. 301–10

मोबाईल नं. 9571470288

maheshameta99@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 144-148

CONTRIBUTION OF INDIAN LANGUAGES IN MASS MEDIA DURING INDIA'S INDEPENDENCE

In context of Gujarati, Bengali and Marathi

DEVANSHI MEHTA, Student
B.A. Hons. (Film & Media) (Advertising & Digital Marketing),
Annapurna College of Film & Media, Hyderabad, Telangana.

ABSTRACT :-

The following research article looks at the contribution of Indian regional languages in the mass media during India's freedom struggle. The paper advocates the role of three main regional languages – Gujarati, Marathi and Bengali. The article begins with explaining mass media in simple terms and then goes on to talk about the contribution of each language individually. It majorly deals with the role of the Print media- Newspapers and Magazines and then, cinema and theatre play as a catalyst in arousing nationalist sentiments among the Indians. All these modes of mass media in the regional languages have been indispensable in spreading awareness about the then current political situation and unrest, inculcating the feeling of patriotism and educating the people about the tyranny of the colonial rule. Since English wasn't a language understood by the Indians, the only way to communicate a message to the masses and bring about religious and social unity was to use Hindi or the states' regional languages. Since all the three states, i.e., Gujarat, Maharashtra and West Bengal were the epicenter of political unrest and were quite active in the freedom struggle, the regional languages here, have played a crucial role in bringing political awakening.

The paper doesn't throw light on all the forms of Broadcast Media, because television in India hadn't emerged by then and over the radio it was only All India Radio (AIR) that was broadcasted in Hindi.

KEY WORDS :-

Print Media, Newspapers, Magazines, Theatre plays, Cinema, Bombay Samachar, Navjivan, Yugantar, Anandabazar Patrika, Nildarpan, Jatra, Kesari, Bal Gangadhar Tilak, Rabindranath Tagore.

INTRODUCTION :-

Mass media refers to the diverse tools or means of communicating to the masses or large number of people in a short span of time using a variety of media. While the traditional and one of the

oldest forms of media includes theatre plays, puppet shows, dance, etc., broadcast media includes, films, television and radio and the print media includes newspaper, magazines and books. Digital media includes both internet and mobile. The rudimentary factor in any mass media is language. During the pre-independence era, since a large chunk of Indian population wasn't educated, there wasn't a common language to communicate with the masses. The fact that, the people could make a better connect to the message, if it was conveyed in their regional languages, aroused the significance of regional languages in mass media. Its role in augmenting freedom struggle became more pronounced after Mahatma Gandhi became a central figure of the struggle.

GUJARATI :

Print Media

Since Gujarat was the birthplace of Gandhi and the inception of multiple nationalist movements, the press there was highly inclined towards nationalist causes. The regional language newspapers gave a fillip to the movement for independence which found its echo in every nook and corner of the country. Several regional dailies also raised and highlighted region-specific issues.

It all began with the publication of the first Gujarati newspaper, Bombay Samachar by Fardunjee Marzban in 1822. Known for its honest and unbiased reporting and critical analysis of the events, the Mumbai Samachar played a crucial role during the freedom struggle. It was an important tool in reaching out to the Gujarati community including the Parsees. The events reported mainly revolved around Government, Court, arrival and departure of ships, London news, etc. It was in 1915 that Gujarati journalism started getting influenced by the ongoing independence movement. Mahatma Gandhi had introduced Navjivan newspaper, right after he stepped into Indian politics in 1919. The paper was later renamed Harijan Bandhu. The sole motto behind launching it was to promote the principles and ideology of Gandhi regarding the freedom movement and fostering Jawaharlal Nehru's idea of modern India. It also stressed upon the ongoing political, moral, religious, social and economic issues of the country, The newspaper helped mobilize the masses and introduce them to concepts of justice, social reforms, democracy, liberalization, social harmony. It was launched to give voice to the efforts of the influential leaders and activists. Another Gujarati weekly launched in 1921 is Saurashtra Weekly, later renamed as Phulchhab. Sandesh was another Gujarat daily, founded by Nandlal Bodiwala, started immediately after the Non-cooperation movement to promote the Gandhian movements across Gujarat. Gujarat Samachar was launched in 1932 in the heat of the Civil Disobedience Movement.

Cinema and Theatre :

The first Gujarati talkie, Narsinh Mehta was produced in 1932. It was directed by Nanubhai Vakil. It is important to pay attention to the fact that, until independence only 12 Gujarati films were produced. The rapid upsurge in production happened only in 1940s, and the film plots mainly focused on saints, dacoit and revolved around folklore and mythology.

The love for Gujarati drama has been existent since the time Gujarati theatre first evolved. It was a firm pillar of communication in the pre-independent India. Mahatma Gandhi himself was highly influenced by the Gujarati play 'Harishchandra'.

BENGALI :

Print Media

West Bengal being the epicenter of revolutionary nationalism, enjoys eminence for its vast contribution to the freedom struggle. The Swadeshi Movement was the outrageous aftermath of the partition of the Bengal province. Well, as it is said, the pen is mightier than the sword; Jugantar Patrika was one such potent newspaper founded in 1906 that explained and justified the violence against the Britishers as a tool for independence, and condemned the legitimacy of the British rule. It also censured the Indian National Congress for aiding the Raj. It preached the people to revolt against the British and quite openly instigated them to destruct the colonial rule. There were articles like 'The truth about revolution', 'Building up of public opinion', 'Collection of funds', 'Welcome Unrest', etc., all published with one larger motive. Anandabazar Patrika, the Bengal evening daily, contributed in shaping the opinions of the citizens of the state, during Independence. Other journalistic publications like Tattwabadhini Patrika, Somprakash, etc., were published to bring social and educational reforms with regards to the women, that gave the larger social base to the freedom movement.

Theatre and Cinema :-

In the wake of the Swadeshi Movement, the Bengali theatre started focusing the past than ever before. They spoke about religious unity with a desire for independence. Dinabanadhu Mitra's swadeshi play, Nildarpan highlighted the brutal torture faced by the indigo plantation workers in the rural Bengal and the horrific atrocities against the peasants. Concurrently, Tagore didn't hold back from exploring themes of spirituality and collective vision of nationalism through his plays- Chitrangada in 1892, Raja in 1910, Dakghar in 1913 and Raktakarabi in 1924. Post the colonial restrictions on performances of any seditious and defamatory plays, the playwrights started shielding nationalist messages indirectly, via mythological plays. This gave rise to plays like Padmini by Kishore Prasad Vidyavinode, Dwijendra Lal Roy's Rana Pratap Singha, Amritalal Basu's Shabash Bangali, Girish Ghosh's Siraj-ud-daula, etc. Moreover, Jatra, a form of folk theatre also started swaying with patriotic fervor. The role of Bengali cinema was equally robust in reflecting the country's freedom struggle. From the 1920s Bengali cinema started producing socially relevant films. In fact, the Indian leaders started considering and realizing cinema as a tool of propaganda. Sushil mazumdar was one such figure to make an attempt to make films on contemporary politics weaved along with social issues. Hence movies like Mukti Snan in 1937 and Pratisodh in 1941 were made.

MARATHI :

Print Media

To begin with, Bombay Darpan, a bilingual fortnightly magazine, published in Marathi and

English was started by Bal Shastri Jambhekar that highlighted the ongoing events. Bal Gangadhar Tilak was an important political figure from Maharashtra to keep the revolt ablaze. He started Kesari in 1881 along with Gopal Ganesh Agarkar. The editorials section distinctly spoke about the suffering of the people and was critical of the ongoing events, asking people to raise their voice in favour of their rights. The whole purpose was to awaken the citizens and ignite the huger for freedom. Vartahar, a Marathi weekly was also started to throw light on the brutal acts of the British and other Europeans. In 1890 cartoons and caricatures in newspapers like Bhoot became the representative of political and social issues. Shivarampant writings in Marathi took the form of patriotism with a touch of irony and sarcasm. They were all published in the Marathi weekly, Kaal in 1898. Later he started another weekly publication, Swarajya.

Theatre and Cinema :-

Marathi theatre became an important medium of self-expression during the colonial rule and was highly influenced by the radical leader, Bal Gangadhar Tilak. The protagonists of almost all theatre plays were based on Tilak, or their scripts advocated his political ideology. The scripts, more often than not, portrayed Tilak as the hero and the British officers as the antagonists. Social reformers and leaders like Jyotiba Phule, Gopal Ganesh Agarkar, Vinayak Savarkar were aware of the power of regional theatre and hence used it aptly. Marathi theatre too, took the support of religious incidents to educated the people about the anti-imperialist struggle. One of the plays was based on the Kichaka Vadh, that taught masses about the harassment of Indians by British. Kalicha Narad and Bhasmasur by Madhavrao Patkar were provocative nationalist plays. The play Sita Swayamwar showcased Tilak's leadership against the British and to showcase the chaos and mess that took place during the Surat Congress. Other revolutionary Marathi plays include Sundopsund by Achutrao Kolhatka, Chandrasena by Anant Barve. Both these talk about the political assertiveness of Tilak. Hence, Tilak and Marathi rangbhoomi have been complementary to each other. Marathi cinema on the other hand wasn't as politically active as the performing arts. Poona Par Hallo, released in 1924, was based on the Maratha historical incident of Aurangzeb's attack on Pune followed by the battle with Shivaji. The subtextual message of independence was powerful in the film.

Hence, the regional languages have played a major role in propagating the concept of patriotism, democracy and freedom mass media in the colonial India.

REFERENCES :-

- https://www.thehindubusinessline.com/news/variety/the-theatre-still-in-play/article20617499.ece1
- http://www.sriaurobindoinstitute.org/saioc/Sri_Aurobindo/yugantar_newspaper
- Swarali Paranjape, Tools of Satire: Marathi Theatre in Colonial India, South-Asia Chronicle
- Dr.Geetali Tilak, Theatre and Lokmanya Bal Gangadhar Tilak, International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI), 2020

- Moloy Rakshit, Communication Through Public Stage: A Study In 19th Century Bengali Theatre, Global Media Journal-Indian Edition, 2013
- Arani Basu, History of Media in Bengal: A Chronological Overview
- https://www.deccanherald.com/national/how-the-press-participated-in-indias-freedom-struggle-873361.html
- https://www.medianews4u.com/newspapers-that-announced-indias-freedom-anandabazaar-patrika/
- https://en.wikipedia.org/wiki/Media_in_Gujarati_language

devanshimehta09@gmail.com
+917993462321

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 149-153

संस्कृत साहित्य में निहित नारीधर्म एवं उसकी महता

डॉ. कैलाश चन्द्र बुनकर
प्राचार्य, राजकीय लक्ष्मीनाथ शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय, चीथवाड़ी (जयपुर) राजस्थान–303505

सारांश :-

संस्कृत साहित्य के समग्रावलोकन से यह स्पष्ट होता है कि जीवन के समस्तक्षेत्रों में नारियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। भारतीय ऋषियों द्वारा स्त्रियों का समाज में उच्च स्थान बताया गया है। भारतीय समाज में कालचक्रानुसार स्त्रियों की स्थिति परिवर्तनशील रही है। जिसका विभिन्नकालों में समाज ने व्यवस्थानुसार अनुशीलन किया गया है। चाहे विद्याव्यसन हो अथवा युद्ध कौशल। गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, लोपामुद्रा, कैकेयी आदि पौराणिक नारियाँ एक अभूतपूर्व उदाहरण उपस्थित करती हुई दृष्टिगोचर होती है। प्राचीन भारतीय नारियॉ परिवार के निर्माण से लेकर समाज के निर्माण तक अपना योगदान देती हुई दृष्टिगत होती है। संस्कृत साहित्य में वैदिक काल से ही नारी का विशेष स्थान व नारी शब्द का उपयोग विवाहकाल में कन्यादन, पाणिग्रहण के पश्चात् लाजाहोम में कन्या आपने श्रीमुख से सबसे पहले प्रयोग करती है। होवें। पतिमती स्त्रियाँ सधवा कहलाती हैं। सरस्वती देवी पतितपावनी धनदायिनी सत्य की ओर प्रेरित करने वाली, शिक्षिका और ज्ञानदात्री मानी गई है। स्त्रियाँ संगीतादि में भी निपुण होती थी। पति के साथ स्त्रियाँ भी युद्ध में जाती थी। ऋग्वेद के अनुशीलन से जान पडता है कि आर्यों में स्त्री शिक्षा का यथेष्ट प्रचार था। स्त्रियाँ वेदाध्ययन करती और कविताऍ भी बनाती थी। वे अपनी त्याग तपस्या से ऋषिभाव को भी प्राप्त होती थी। मन्त्रोचार करती थी। आर्य लोग विवाह के समय वर और कन्या को विविध वस्त्राभूषणों से विभूषित कर बहुत सम्मान करते थे। लोग स्त्री रक्षा व मार्यादा बाबत भारी से भारी कष्ट सहन करने से भी पीछे नहीं हटते थे।

महत्वपूर्ण शब्द :- नारी, स्त्री, समाज, पतिमती, सधवा, सम्मान, अतुलनीय, आर्य कन्या, पुरुषार्थ, सोपान, अबला, सबला, प्रमदा, ललना, आलिरू, विरखता, पालिता, सुवासिनी, गृहत्यागिनी, प्रियतम, लीलामयी, ह्रदयकली।

वन्दनीया हि नारी :–

क्षेत्रे कार्यं विधत्ते कृषिपशुविषयं गोमयैर्गेहशुद्धिं
रागैश्चित्रं विचित्रं रचयति रूचिरं मायतीयं सुगीतम्।
लग्ना वाक्कीलकार्ये वदति बहुविधिं न्यायशास्त्रानुकूलं
सा राष्ट्रोत्थानकर्त्री सकलगुणवती वन्दनीया हि नारी ।।

नारी नराणां खनिः–

ब्रह्माणीव समस्तलोकजननी पद्येव या पालिका

रूद्राणीव समस्तसृष्टिशमनी बाणीव या शिक्षिका।
सावित्री सती विशुद्धचरिता सीतेव या पद्मिनी
पूज्या सा सुरलोकवन्द्यचरणा नारी नराणां खनिः।।

संस्कृत साहित्य के समग्रावलोकन से यह स्पष्ट होता है कि जीवन के समस्त क्षेत्रों में नारियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः '' इस स्मृति वाक्य द्वारा आचार्य मनु ने अनद्यतन काल से ही नारी के स्वरूप और वैशिष्ट्य की चर्चा की है। प्राचीन काल में भारतीय समाज में नारी का गौरवपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय ऋषियों द्वारा स्त्रियों का समाज में उच्च स्थान बताया गया है। भारतीय समाज में कालचक्रानुसार स्त्रियों की स्थिति परिवर्तनशील रही है। जिसका विभिन्नकालों में समाज ने व्यवस्थानुसार अनुशीलन किया गया है। गृहस्थाश्रम में वह अपने परिजनों की हृदय साम्राज्ञी बनकर प्रेम,आदर एवं सम्मान करती आयी है, वहाँ मातृत्व स्नेह का अभूतपूर्व कोश होने के कारण या सहानुभूति, प्रेम सौहार्द, त्याग और साहचर्य धर्म का निर्वहन करते हुए समाज के उत्कृष्ट निर्माण में पूर्ण सहयोग प्रदन करती रही है। चाहे विद्याव्यसन हो अथवा युद्ध कौशल। गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, लोपामुद्रा, कैकेयी आदि पौराणिक नारियाँ एक अभूतपूर्व उदाहरण उपस्थित करती हुई दृष्टिगोचर होती है।

प्राचीन भारतीय नारियाँ परिवार के निर्माण से लेकर समाज के निर्माण तक अपना योगदान देती हुई दृष्टिगत होती है। कवियों की दृष्टि में नारी माया जैसी दुर्बोध प्रकृति साथ ही सहानुभूति नारी माया जैसी बहुमुखी, साथ ही सहानुभूति जैसी सरल रही है। इन्हीं विभिन्न बदलते हुए स्वरूपों के कारण ही उसे रहस्यमयी कोटि में डाल दिया गया है। परन्तु यदि शब्दों के विकास के साथ–साथ मानव सभ्यता के विकास का अध्ययन किया जाये तो पता चलेगा कि नारी उतने अंश में रहस्यमयी है, जितने अंश से संसार की कोई भी वस्तु। संस्कृत साहित्य में वैदिक काल से ही नारी का विशेष स्थान व नारी शब्द का उपयोग विवाहकाल में कन्यादन, पाणिग्रहण के पश्चात् लाजाहोम में कन्या आपने श्रीमुख से सबसे पहले प्रयोग करती है। क्योंकि इससे पहले उसका नर सम्बन्ध नहीं रहा है। 'नारीत्व' को प्राप्त करते ही वह दो प्रधान आदर्श अपने सामने अपने ही वचन में जीवन के लिए रखती है–

1. **आयुष्मानस्तु मे पति** :– अर्थात मेरा पति आयुष सम्पन्न हो/नारी होने के बाद ही इसे सौभाग्य की प्राप्ति होती है।
2. **एधन्तां ज्ञातयो मम** :– मेरे परिवार वाले वृद्धि को प्राप्त होवें। पतिमती स्त्रियाँ सधवा कहलाती हैं। सरस्वती देवी पतितपावनी धनदायिनी सत्य की ओर प्रेरित करने वाली, शिक्षिका और ज्ञानदात्री मानी गई है। इसी प्रकार भारती होला,सरण्यू, सिनीवाली, राका, गुग्डू असु तथा श्रद्धा आदि देवियों की महिमाका भी यथा स्थान वर्णन है। पृश्नि, अरण्यानी, वरूणानी तथा अग्रायी प्रभृति देवियों का भी स्तवन किया गया है। सृष्टि रचना से ही विदित होता है कि आर्य लोग नारियों का बडा सम्मान करते थे। वे घर को नहीं नारी को ही घर मानते थे और गृहस्थ धर्म के पालन में नारी के बिना गृह का अस्तित्व ही कहाँ है और गृह के बिना गृहस्थ धर्म का सम्पादन ही कैसे हो सकता है। इस धारणा के अनुसार गृहस्थ धर्म की प्रतिष्ठा एकमात्र गृहिणी पर निर्भर थी। इस धारणा के अनुसार गृहस्थ धर्म की प्रतिष्ठा एक मात्र गृहिणी पर ही निर्भर थी। सन्तान के रूप में पुत्र पुत्री दोनो उन्हें समान रूप से प्रिय थे। पशुरक्षिणो और वीरप्रसविनी नारी का उस समय विशेष आदर था। ऐसी नारी प्राप्ति के

लिए देवताओं से प्रार्थना की जाती थी। अतः आर्य जाति में प्राचीन काल से ही नारी का सदा समादर होता आया है। अन्य जातियों के प्राचीन इतिहास में यह बात नही पायी जाती। ऋग्वेद के अनुशीलन से जान पड़ता है कि आर्यों में स्त्री शिक्षा का यथेष्ट प्रचार था। स्त्रियाँ वेदाध्ययन करती और कविताएँ भी बनाती थी। वे अपनी त्याग तपस्या से ऋषिभाव को भी प्राप्त होती थी। मन्त्रोचार करती थी। आर्य लोग विवाह के समय वर और कन्या को विविध वस्त्राभूषणों से विभूषित कर बहुत सम्मान करते थे। लोग स्त्री रक्षा व मर्यादा बाबत भारी से भारी कष्ट सहन करने से भी पीछे नहीं हटते थे। स्त्रियों के विषय में आज भी निम्नांकित मन्त्र पढकर सिन्दूर एवं सौभाग्य वर्धक आर्शीवाद अर्पण किया जाता है।

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत् पश्येत्।
सौभाग्यमस्यै दत्वा यायास्तं विपरेतन्।।

उस समय स्त्रियाँ संगीतादि में भी निपुण होती थी। पति के साथ स्त्रियाँ भी युद्ध में जाती थी। विश्पला अपने पति के साथ युद्ध में गयी थी और वहाँ उसकी जाँघ टूट गई थी। जिसे अश्विनी कुमारों ने ठीक किया था। वृत्रासुर के साथ उसकी माता दनु भी युद्ध में गयी थी। जो इन्द्र के द्वारा मारी गई थी। वैदिक साहित्य के अनुशीलन से ही यह भी सिद्ध होता है कि पहले स्त्रियाँ वेद पढती थी और यज्ञोपवीत भी धारण करती थी। सुलमा, मैत्रेयी और गार्गी आदि की विद्वता प्रसिद्ध है। वाल्मिकि रामायण (5/15/48) के अनुसार सीताजी वैदिक प्रार्थना करती थी। कौशल्या के विषय में भी ऐसा आया है कि वे मन्त्र पाठ पूर्वक अग्निहोत्र करती थी। वीरमित्रोदय के संस्कार प्रकाश में स्त्रियों के दो भेद किये गये हैं, एक ब्रह्मवादिनी और दूसरी सद्योद्वाहा। ब्रह्मवादिनी स्त्रियों को यह अधिकार है कि वे अग्निहोत्र, वेदाध्ययन तथा अपने घर में शिक्षा ग्रहण करें। धर्मस्मृति में कहा गया है– पूर्णकाल में कुमारियों का उपनयन, वेदारम्भ तथा गायत्री उपदेश होता था। हमारे पुराण तथा स्मृति ग्रन्थों में नारी का ऊँचा स्थान दिया गया है। पुराणों में स्थान–स्थान पर नारी जाति का बड़ा महत्व घोषित किया गया है। जहाँ चराचरानायक भगवान विष्णु भी मोहनी अवतार लेते है। मनु बड़े आग्रह के साथ आज्ञा देते है कि 'पूजनीयाः प्रयत्नतः' समाज द्वारा प्रयत्न करके भी नारी की पूर्ण पूजा करनी चाहिए दोषदर्शी पुरूषों की तरफ से दिये गये नारियों के प्रति दोषों की शंकाओ के हटाते हुए वे कहते है–

स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कर्हिचित्।
मासि मासि रजो यासां दुस्कृतान्यपकर्षति।।

भगवान् श्री कृष्ण के सम्बन्ध में भी कहा गया है कि –

सम्पन्नमणी शीलसम्पन्नरमणीं बिना।
इत्यूढवान्नरमणी रमणों रूक्मिणीं हरिः।।

अतः स्पष्ट होता है कि भारतीय नारी को विविध रूपों में वर्णित किया गया है। कन्या के रूप में नारी चित्रण हमें कालिदास के साहित्य में उपलब्ध होता है। उन्होंने आर्यकन्या को आदर्श 'पार्वती' के रूप में अभिव्यक्त किया है। आर्यकन्या को अदम्य, अजेय तथा जितेन्द्रिय बनने का मुख्यसाधन तपस्या ही है। कालिदास ने पार्वती के तप का रहस्य विशेष रूप से प्रकट किया है–

इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपतां समाधिमास्थय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यया द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः।।

(कुमारसम्भवम् 5/12)

नारी पत्नी रूप में :- संस्कृत साहित्य में कवियों ने पत्नी रूप में नारी का बहुत ही सुन्दर तरीके से वर्णन किया है, वाल्मिकी, व्यास, कालिदास और भवभूति इन महामान्य कवियों ने भारतीयों की मनोदशा, रूप छटादि का वर्णन बड़ी सुन्दर भाषा में किया है। भगवती जनकनन्दिनी के शील सौन्दर्य की ज्योत्सना किस व्यक्ति के हृदय को उपशम तथा शान्ति प्रदान नहीं करती है। जानकी भारतीय पत्नियों के महान् प्रसंग इस कथा के प्राण भूत है। रावण के द्वारा बारम्बार प्रार्थना करने पर भी सीताजी के जो अवहेलना सूचक वचन है, जो भारतीय नारी का गौरव सदा उद्घोषित करते रहेंगे। वह कहती कि इस निशाचर रावण से प्रेम करने की बात तो दूर रही मैं तो इसे अपने पैर से न ही, बायें पैर से भी न हीं छू सकती–

चरणेनापि सत्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्।। (वा.रा.सु.)

नारी का दुर्बल अंश है उसका नारीत्व, स्त्रीत्व और सबल अंश है पत्नीत्व और पतिव्रत। आप मनुष्य में श्रेष्ठ है। परन्तु क्रोधावेश में आकर आपका यह कथन साधारणजन के समान है। मैं आपकी हृदय से भक्ति करती हूँ। मेरा स्वभाव निष्छल और पवित्र है। आश्चर्य है कि आप जैसे नरशार्दूल ने मेरे स्वभाग को मेरी भक्ति को पाणिग्रहण को पीछे धकेल दिया है। मेरा उपहास करने के लिए मेरे स्त्रीत्व को आगे रखा है।

सीताजी के शब्दानुसार –

त्वया तु नरशार्दूल क्रोधमेवानुवर्तता
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्।
न प्रामाणीकृतः पाणिर्बाल्यो बलेन पीडितः
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वतः पृष्ठतः कृतम्।।

संस्कृत वाड्.मय में नारी को अनेकानेक नामों से सम्बोधित किया गया है और जिन नामों से सम्बोधित किया उनमें वैसा गुणधर्म पाया जाता है । ''यथानाम तथा गुण''

1. वाम–अर्थात प्रत्युत्तर में सदा विपरीत (उलटा) जबाब देने वाली।

वामं विरूद्धरूपं तु विपरीतं तु गीयते।
वामेन सुखदा देवी वामा तेन मता बुधैः।। देवीपुराण अध्याय 16

2. आलिः (आलयति भूषयतीति णिच् स्त्री) अर्थात जो अपनी सखी को विभूषित करती है।
3. सखीः (समानं रूपायते जनैः इति इण् डि.त् समानस्थ डीष् च स्त्री जो स्त्री समान रूप वय वाली है।
4. अबला– पुरूष की अपेक्षा कम शक्तिशाली
5. प्रमदा– प्रमद का भाव हर्ष, हर्षित होने पुलकित होने के स्वभाव वाली।
6. ललना –जिस स्त्री में लालसा अधिक होती है, उसके ललना शब्द से सम्बोधित किया गया है।
7. महिलाः–मह धातु पूजा अर्थ में +इलच्+टाप महिला जो पूजनीय स्त्री हो।
8. जायाः– पतिर्भार्या संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते।
जयायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः।। 9/8 मनुस्मृति

पत्नी या स्त्री को साथ ही रहते हुए पुरूष तीनों पुरूषार्थो धर्म, अर्थ काम की पूर्ति करता है एवं मोक्ष रूप परम् पुरूषार्थ की प्राप्ति भी करता है। जो स्त्रियाँ मन वचन कर्म से पति का अनुसारण करती है, वे साधु–सती

रूप में मानी गई है।

कन्या सुवासिनी स्त्री, माता, गृहत्यागिनी, विरक्ता आदि अनेक रूपों में पूजनीया रही है। जैसे अभिज्ञानशाकुन्तलम् में महर्षि कण्व अपनी पालिता पुत्री को पतिगृह में समस्त गुरूजनो की सेवा का उपदेश देते हैं:–

यथा– शुश्रूशस्व गुरून् कुरू प्रियसखी वृत्तिं सपत्नीजने।
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मात्स्म प्रतीपं गमः।।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी।
यान्त्येव गृहिणीपदं युवतो वामाः कुलस्याधयः।। (4/17)

मातृ रूपेण नारी का विशिष्ट स्थान ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा है :–

यथा– जनको जन्मदातृत्वात् पालनाच्च पिता स्मृतः।
गरीयान् जन्मदातुश्च योऽन्नदाता पिता मुने।।
तयो शतगुणा माता पूज्य मान्या च वन्दिता।
गर्भधारणपोषाभ्यां सा च ताभ्यां गरीयसी।।

नारी गार्हस्थ जीवन में – हमारा गार्हस्थ जीवन भगवत् प्राप्ति का एक सोपान् मात्र है। भगवान की प्राप्ति अनुराग से सुलभ है। भक्ति ही उस प्रियतम को पाने के लिए एक सुगम राजमार्ग है।

अद्वेतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु यद।
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत् प्राप्यते।। (महाकवि भवभूति)

इस प्रेम को भगवद्दर्पण कीजिए प्रभु अवश्यक मिलेंगे। अपने भक्तों को अपने क्रोड में रखने तथा उसके संग में आनन्द मनाने के लिए वह लीलामय सदा तत्पर रहता है। जीव को भगवान् की ओर अनुरक्त करने का साधन है।

उपसंहार :– इस प्रकार संस्कृत साहित्य में नारी का चित्रण–चरित्र विशेष के रूप में अभिव्यक्त किया गया है, वह शक्ति की मूर्ति है प्रेम का अवतार है, अनुराग की वाटिका है, रस का उत्कर्ष है। हृदयकली को विकसित करने वाले प्रभात् वायु का हिलोरा है, मानस में आनन्द लहरी उठाने वाला मन्द मन्द प्रवाहित पवन है। संस्कृत साहित्य ने नारी शक्ति पहचानी है और उसे उचित रूप से अभिव्यक्त भी किया है।

धन्या पतिव्रता नारी, पूज्या मान्या विशेषता।
पावनी सर्वलोकानां, सर्व पापौघनाशिनी।।

संन्दर्भ :–

1. मनुस्मृति / 9/8
2. वाल्मिकी रामायण 5/15/
3. यम स्मृति
4. कुलासम्भव– 5/12
5. वा. रा. सु.
6. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 4/17
7. महाकवि भवभूति।

मो0 नं0– 9828546213

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 154-160

A COMPARATIVE STUDY OF MARITAL ADJUSTMENT OF WORKING WOMEN OF GOVERNMENT AND PRIVATE SECTOR

Dr. Goldy Gupta
Assistant Professor, Department of Education, BPS Mahila Vishwavidyalaya, Khanpur Kalan (Hry.)

ABSTRACT :-

Indian working woman belongs to the middle class or lower middle class of the society. Upper-class women do not work for a living. Their purpose behind doing work is to spend time. While they have no role to play in the household chores, the household chores are unknown to them. Apart from this, she also has to fulfil the domestic responsibilities. Due to spending so much time in the office, her domestic life also gets disturbed. She is not able to do her household chores properly. She has to get up early in the morning to prepare food, prepare children for school, prepare tiffin for husband and do cleaning etc. After completing all these tasks, she is ready to go to the office. The condition of the Indian working woman has become like a tune stuck in two halves. Unlike the western countries, in India, husbands do not share the hands of the wife with the household chores. On returning home tired from office, she has to look after the needs of children, husband. She has to meet the requirements of both office and home. If she is unable to establish a balance between the two, she has to face heavy condemnation. The present research paper aimed to do comparative study of marital adjustment of working women of government and private sector. The sample of the study consisted of 400 working women from Churu and Jaipur district of Rajasthan state. Out of which 200 were working in private sector and other 200 were from government sector. Marital Adjustment Inventory was used for the collection of data. Mean, S.D. and t-test were calculated for the analysis of data. The results indicated that there is significant difference exists between marital adjustment of working women of private and government sector.

Keywords : Working women, Marital adjustment, Family, Government, Private etc.

INTRODUCTION :-

There is a complete hierarchy of relations with social life. This orderliness, comprehensiveness and effectiveness cannot be understood by logic alone. Those sentiments operating at their core, which are made of reverence, faith, love, respect and relationships supported by kindness, compassion

and cooperation, have to be taken care of with a healthy mind-set. This care of the relationship takes place only through mutual social relations. Social relations make the individual and the society strong. There is hardly any society and culture in the wider field of building social relations that we have! The proof of this is the diversity of our social interactions which find continuity and permanence through our socio-cultural celebrations. Our celebrations become a vehicle for building, sustaining and vitalizing social relationships. Every festival of Indian society is a festival passing through the divine experience of obligations that strengthen social relations. With each of our festivals and celebrations, there is a tradition of promotion and protection of social relations. The matrimonial relations lay emphasis on homogeneous and cadre insistence, keeping in view the fulfilment of these traditions.

Every person is tied in some relationship. It has its own specific designation, importance. Every relationship has its own set rules, obligations and rights. A matrimonial relationship serves to germinate many new social relationships. Marital relations have been the initial basis of society. In India, it has been the centre of the preservation of caste and the growth of lineage and of caste life. The extension of marriage creates the family which is the central source of social prestige in the role of a vigilant watchdog from the formation of the culture of the environment of socio-economic security to its transfer. Love, sociality and sexual desire have been prominent in the life of man. In all biological, social, psychological and moral aspects, the attitude of love has been the most affecting the central consciousness of man. The creation and development of society is the result of efforts to nurture, nurture and refine these human tendencies. Marriage is a universal and universally recognized social institution in the society for the due refinement and promotion of basic human instincts.

Today's life is in the grip of competition. Everyone is engaged in a race. At every step in life, the sequence of events continues, due to which it is natural to create tension. Married life is also in the grip of tremendous stress, so marital relations are getting weak. An important social institution like marriage is getting eroded in its appearance due to many pressures and stresses; particularly engaged in severing social relations. The result is visible in the weakening of the society. Individualism is on the rise. Relationships are losing their impact. Social intervention is on the decline. Selfishness and greediness are destroying the warmth of mutual relations. It is necessary to understand this serious crisis. In order to lead a happy married life, it is necessary to identify the factors which are responsible for the stressful situations in them. For a happy married life, it is important for every person to have the skills to address the stress.

MARITALADJUSTMENT :-

After marriage, husband and wife work according to each other's nature, chit and feelings, it is called a happy married life. If there is no harmony in the married life, then mutual time can be spent, but when husband and wife spend the life with sacrifice and cooperation, it creates marital adjustment. **Sinha and Mukerjee (1990)** defined marital adjustment as "the condition in which there is an overall

feeling of happiness and satisfaction in husband and wife with their marriage and to each other". There is a need for love, sympathy, trust and cooperation in married life, which husband and wife follow as their duty, but sometimes some inequality comes in this life and the family gets scattered. Following are the some reasons for disharmony in married life: emotional imbalance, financial crisis, joint families, unmatched marriage etc. Cooperation, fulfilment of obligations, loving behaviour, unwavering faith, favourite cow companions and religious beliefs are the main elements in marital adjustment. If after marriage, both husband and wife do job for fulfilment of responsibilities, then both discharge their responsibilities towards their family consciously. This maintains marital harmony.

REVIEW OF THE RELATED LITERATURE :-

Rao, S. L. (2017) explored the relationship between marital adjustment and depression among couples. Sample of the study consisted of 26 couples. Their age ranged between 25 to 50 years. Results indicated highly significant relationship between marital adjustment and depression. The findings of the results also showed that both, women and men have to face more problems in their married life.

Nisha Paul. N. (2017) studied the marital adjustment and marital relationship among Indian merchant seamen. The results showed that 56 i.e. more than half of the merchant seamen has good marital adjustment while only 26 i.e. just above one fourth has very good marital adjustment. It was also found that the seamen are quitting the job just for the sake of family life because as the number of years in marital life increases, the number of job quitting merchant seamen also increases.

Lavalekar (2007) explored and compared the marital satisfaction and emotional intelligence of people between age group ranges 25-65. The analysis indicated a significant gender difference on certain dimensions of emotional intelligence which are openness to criticism, self-management and empathy. It is also noted that a significant gender difference exists in two areas of marital satisfaction which are sexual relationship and sharing household responsibilities, which can be followed to the socio-cultural influences. It has assisted in understanding the relationship of gender to core traits of an individual's emotionality, which influence the marital relationship.

Myers & Madathil (2005) administered Marital satisfaction and wellness questionnaire on 45 individuals (22 couples and 1 widowed person) living in arranged marriages in India. The data were compared with existing data on individuals in the United States living in marriages of choice. Differences were found in importance of marital characteristics, but no differences in satisfaction were found. Differences were also found in 9 of 19 wellness scales between the two groups.

Alder (2010) conducted study to determine whether there is a relationship exists between marital satisfaction and the independent variables of age, level of education and courtship length. Total 60 respondents were completed online surveys related to their experiences in their marriages. Results indicated that there was not a significant relationship between marital satisfaction, age,

educational level and courtship length. However, there was a negative correlation was revealed between post-engagement courtship and dyadic adjustment, which shows that as the length of engagement increases, marital adjustment decreases.

OBJECTIVES :-

(i) To assess the marital adjustment of working women.

(ii) To compare the marital adjustment of working women of private and government sector.

HYPOTHESES :-

(i) There is no significant difference exists between marital adjustment of working women of private and government sector.

METHODOLOGY :-

Sample

The sample of the study consisted of 400 working women that were selected randomly from Churu and Jaipur District in Rajasthan state. Out of 400 working women, 200 women were working in govt. sector and 200 were working in private sector.

Tool Used :-

To collect the data for the present study, a standardized psychological tool was used.

Marital adjustment Questionnaire developed by Dr. Pramod Kumar and Dr. Kanchana Rohatgi.

Procedure for Data Collection :-

Iin order to arrive at meaningful generalizations, the researcher selected the representative sample of 400 from the population under study i.e. Churu and Jaipur district of Rajasthan. The working women were approached personally. Informed consent was taken from them in order to seek their voluntary participation and only those women were included who agreed to take part in this study. Then, the investigator administered the selected tool for measuring marital adjustment of working women. The investigator approached the subjects and explained them the instructions provided in the manuals. The investigator after establishing rapport with the subjects administered the above mentioned tool. The responses to items of the tool were scored as per the method recommended by the constructor of the test.

Statistical Techniques Used :-

The information/responses collected from the respondents were subjected to various statistical treatments. The data was analysed by using statistical techniques. Statistical techniques used for analyzing data were Mean, S.D. and t-test was used to study the significant difference in job satisfaction of working women on the basis of type of job i.e. govt. and private.

ANALYSIS AND INTERPRETATION OF DATA :-

Objective 1- To study the marital adjustment of working women.

Table 1

Marital Adjustment of Working Women

S.No.	Level of Marital Adjustment	No. of Working Women (N=400)		
		Govt.	Private	Total
1.	Above Average	97	90	187
2.	Average	24	6	30
3.	Below Average	79	104	183

Table 1 shows that out of 400 working women, 187 women are at above average level, only 30 are at average level and 183 are at below average level of marital adjustment. While, out of total 200 working women of Govt. sector only 97 are at above average level, 24 working women are average, while 79 are at below average level of marital adjustment. It clearly indicates that majority of working women from Govt. sector lie at above average level of marital adjustment.

Table also indicates that out of 200 working women of private sector, only 90 working women are at above average level of marital adjustment. Only 6 working women are at average, while 104 are at below average level of marital adjustment. Mostly working women of private sector are maritally below average adjusted.

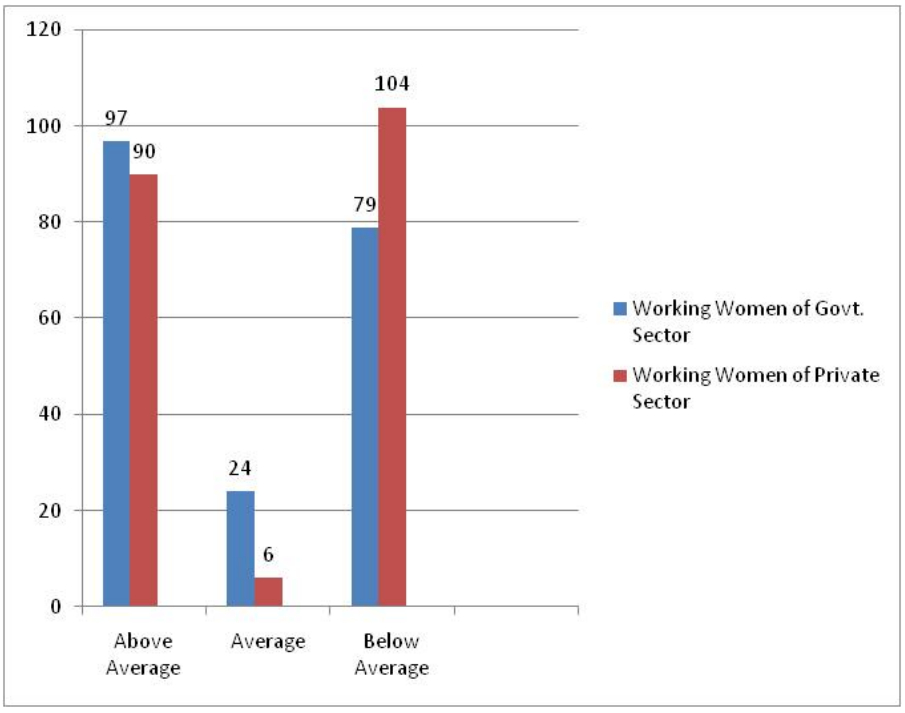

Figure 1

Marital Adjustment of Working Women

Objective 2- To compare the marital adjustment of working women of private and government

sector.

Hypothesis - There is no significant difference exists between marital adjustment of working women of private and government sector.

To verify this hypothesis, t-test was applied and the comparison was done with respect to nature of job. The t-value for it is given in table-2.

Table 2

Mean, Standard Deviation and t-value of Marital Adjustment of Working Women

Nature of Job	N	Mean	S.D.	df	t-value
Government	200	18.04	3.404	398	14.308**
Private	200	12.59	4.174		

**Significant at 0.01 level of significance

From the above table 22, it is found that the mean score of marital adjustment of working women of government sector is 18.04 and score of marital adjustment of working women of private sector is 12.59. Computed value of standard deviation (S.D) of working women of government sector and private sector are 3.404 and 4.174 respectively. Degree of freedom was found to be 398. From the above table, the obtained t-value is 14.308. When compared with the table value, the obtained t-value is found to be significant at 0.01 level of significance.

Hence, the null hypothesis stating "There is no significant difference exists between marital adjustment of working women of private and government sector" is not accepted. The graphical representation of marital adjustment of working women is given below.

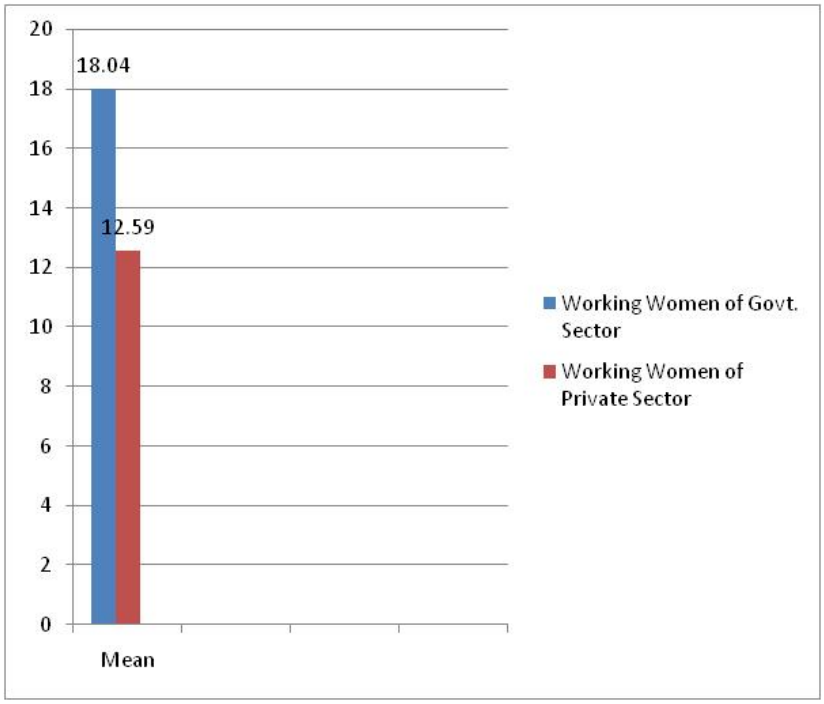

Figure 2

Mean Score of Marital Adjustment of Working Women of Government and Private Sector

RESULT :-

The mean score of marital adjustment of working women of government sector was found to be significantly higher than the mean score of working women of private sector. It shows that the marital adjustment of working women of government sector is significantly higher than the marital adjustment of working women of private sector. There is significant difference exists between marital adjustment of working women of private and government sector. It means that there is a difference in their marital adjustment.

REFERENCES :-

1. Alder, E. S. (2010). Age, Education Level, and Length of Courtship in Relation to Marital Satisfaction (Master's thesis, Pacific University, 2010). Retrieved from http://commons.pacificu.edu/spp/145.
2. Lavalekar, A. (2007). Gender-Wise Comparison on Emotional Intelligence and Marital Satisfaction. Gender and Behaviour,5 (2), 1388-1405.
3. Manju (2016). Marital adjustment and depression. The International Journal of IndianPsychology, 3(4), 59, 44-51. ISSN: 2349-3429.
4. Myers, J. E., & Madathil, J. (2005). Marriage satisfaction and wellness in India and the United States: a preliminary comparison of arranged marriages and marriages of choice. Journal of Counseling & Development, 83(2), 183-190.
5. Paul, Nisha (2017). Marital adjustment and marital relationship among Indian merchant seamen. Journal of Social Work Education and Practice, 2(1), 31-38 ISSN: 2456-2068. Retrieved from www.jswep.in.
6. Ramcharan, (2008). Is late marriage advisable? - Ask or Answer Agony Aunt Question. Retrieved from http://sawaal.ibibo.com/agony-aunt/late-marriage-advisable 440079. Html.
7. Rao, S. L. (2017). Marital adjustment and depression among couples. The international Journal of Indian Psychology. 4(2), No. 87, 34-42. ISSN 2348-5396, DIP: 18.01.045/20170402 .

e-mail: goldyalwar16@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 161-164

नई शिक्षा नीति 2020

समृद्ध विषयवस्तु, अन्वेषक दृष्टिकोण

डॉ. पंकजा सोनवलकर
सहायक प्राध्यापक, सरस्वती शिक्षा महाविद्यालय, उज्जैन।

सारांश :-

शिक्षा एक कला है, एक विज्ञान है वहीं यह एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया भी है। व्यक्तित्व का समन्वित एवं संतुलित विकास, विचार शक्ति का विकास तथा स्वस्थ सामाजिक दृष्टिकोण का विकास शिक्षा के सर्वकालिक कार्य है। नित नवीन वनती परिस्थितियों में शिक्षा में, शिक्षा की व्यवस्था में समय–समय पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये जाते रहे है। शिक्षा को पूर्व से अधिक सहज, सरल सार्वभौमिक, प्रभावी एवं सार्थक बनाने की दृष्टि से इसे नियंत्रित करने वाले सभी सिद्धांतों एवं नियम–कानूनों को शिक्षा नीति के रूप में समुचित आकार दिया जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी इसी क्रम का नियम कानूनों ओर सिद्धांतों का एक समुच्चय है। यह स्वतंत्र भारत की तीसरी शिक्षा नीति है। यह शिक्षा नीति विद्यार्थियों में रचनात्मकता, सृजनात्मकता, नवाचारी सोच के साथ स्वयं द्वारा ज्ञान सृजन के अवसरों के निर्माण पर बल देती है।

प्रस्तावना :-

शिक्षा एक पूर्नदर्शित लक्ष्य है जो मानव के संपूर्ण व्यवहार को निर्मित करती है। शिक्षा व्यक्ति के जीवन तथा समाज के आदर्शो से घनिष्ठता से जुड़ी होती है।

व्यक्तित्व का संतुलित विकास, विचार शक्ति का विकास तथा स्वस्थ सामाजिक दृष्टिकोण का विकास शिक्षा के सर्वकालिक कार्य है।

समाज और राष्ट्र की बदलती हुई आवश्यकताओं एवं आदर्शों को दृष्टि में रखते हुए समय–समय पर शिक्षा की व्यवस्था में परिवर्तन किये जाते रहे हैं।

शिक्षण पद्धतियों को प्रयोग, संसाधनों का चयन मूल्यांकन पद्धतियों, उचित पाठ्यक्रम रचना जैसे शिक्षा के महत्वपूर्ण आयामों में नवीनता लाकर उन्हें अधिकाधिक प्रभावी एवं उपादेय बनाने का हर संभव प्रयास किया जाता रहा है। प्रत्येक कालक्रम में शिक्षा की उपादेयता ओर उसकी सार्थक उत्पादकता के लिये शिक्षा प्रणाली को नियंत्रित करने वाले सभी सिद्धांतो नियम कानूनों के समुच्चय को आकार दिया जाता रहा है जिसे शिक्षा नीति (Education Policy) कहते हैं।

नई शिक्षा नीति 2020 :-

नई शिक्षा या राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 स्वतंत्र भारत की तीसरी शिक्षा नीति है जो विद्यार्थियों में

रचनात्मकता, सृजनात्मकता, तार्किक निर्णय लेने की योग्यता तथा नवाचारी सोच को स्थापित एवं विकसित करने पर बल देती है।

5+3+3+4 शैक्षणिक संरचना वाली यह नई शिक्षा नीति अपने उद्देश्यों के अनुरूप स्कूल और उच्च शिक्षा में परिवर्तनकारी सुधारों का मार्ग–प्रशस्त करने की दृष्टि देती है।

सैद्धांतिक रूप से नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत भाषाई विविधता के संरक्षण के महत्व को रेखांकित किया है वहीं अनेकानेक व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को स्कूली एवं उच्च शिक्षा के स्तर पर सम्मिलित किये जाने को अनुशंसित किया है। विषयों के चयन में लचीलापन, शारीरिक शिक्षा, कला, संगीत, शिल्पकलाओं जैसे विषयों को व्यावसायिक कौशल के विषयों के रूप में रखे जाने की महत्ता को समझा है। नई शिक्षा नीति में भारत की पुरातन, महान ज्ञान–परंपराओं तथा चिरअर्जित वैज्ञानिक एवं बौद्धिक परंपराओं की निधि को वैज्ञानिक पद्धति से सिखाये जाने पर बल दिया है। आधुनिकतम विज्ञान एवं तकनीकी द्वारा पुरातन भारतीय ज्ञान (स्थानीय एवं स्वदेशी ज्ञान) को सीखने एवं उसका अनुप्रयोग करने की परिकल्पना को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 आलोचनात्मक क्रियात्मक एवं मूलचिंतन द्वारा वैज्ञानिक पद्धति से विषयों की समझ विकसित करने पर बल देती है। विषयों की समझ विकसित करना, सीखने की स्थितियों या अधिगम अनुभव के वातावरण निर्मित करना शिक्षण प्रणाली का सबसे महत्वपूर्ण एंव चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। चूंकि नवीन ज्ञान की समझ उसकी स्वीकारोक्ति पर निर्भर होती है। स्वीकारोक्ति अर्थात भावात्मक पक्ष का विकास भी शिक्षा व्यवस्था की सफलता का एक महत्वपूर्ण पड़ाव या सोपान होता है।

पढ़ने–सीखने की प्रक्रिया जितनी अधिक व्यावहारिक होती है, जितनी अधिक क्रियात्मक होती है, सीखने में उतने ही अधिक वातावरण निर्मित होते हैं। समझ की स्वतंत्रता भी उतनी अधिक होती है, और इस प्रकार शिक्षा एवं शिक्षण की गुणवत्ता और इसके मानकों का निर्धारण संभव होता है।

शिक्षण, सीखने ओर सिखाने की प्रक्रिया की गुणवत्ता अर्थात् संपूर्ण शिक्षा की गुणवत्ता का निर्धारण करने वाले सभी तत्वों का समुचित समन्वय शिक्षा की वास्तविक स्वरूप में गुणवत्ता को प्रमाणित करता है।

नई शिक्षा नीति 2020 शिक्षा की गुणवत्ता को तय करने वाले ऐसे सभी तत्वों की उपलब्धता और सुनिश्चित करने की चिंता करती है।

नई शिक्षा नीति क्रियाशील एवं कल्पनाशील नागरिकों के उत्पादन को केन्द्र में रखती है।

क्रियाशीलता, कल्पनाशीलता और नवीन ज्ञान के सृजन के अवसर उत्पन्न करना इस शिक्षा नीति के मुख्य तत्व है और ये तत्व प्रत्येक शिक्षा व्यवस्था की सफलता के निर्धारक हैं।

पाठ्यक्रम हस्तांरण द्वारा मात्र तथ्यों का आदान प्रदान होना सीखने जैसी जटिल मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का विकास नहीं करती। शिक्षण में अनुदेशनात्मक शैली के स्थान पर सृजनात्मक शैली का प्रयोग कर सीखने के अवसरों को उत्पन्न करना इस नई शिक्षा नीति का ध्येय है। विद्यार्थी स्वयं अपने सीखने या सृजन के प्रति संवेदनशील और जागरूक हो, उनकी अपनी समझ विकसित हो इस दृष्टि से नई शिक्षा नीति निसंदेह अपने प्रयत्नों को रेखांकित करती है। किंतु–शिक्षण के सभी स्तरों पर सीखने या सफल एवं प्रभावी अधिगम के लिये आवश्यक सभी तत्वों को जुटाना और उन्हें समन्वित कर उनकी असमानता को दूर करना नई शिक्षा नीति 2020 के लिये चुनौतीपूर्ण होना स्वाभाविक है।

नई शिक्षा नीति 2020 चुनौतियाँ :-

नई शिक्षा नीति शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शैक्षणिक उपलब्धियों के साथ–साथ विद्यार्थियों में जीवन कौशल विकसित करने पर बल देती है। विद्यार्थियों में जीवन कौशलों का विकास करना अर्थात् उन्हे सीधे–सीधे स्वाभाविक तरीके से अपने परिवेश (सामाजिक परिवेश, सांस्कृतिक परिवेश जिसमें वे रहते हैं) से जोड़ना ओर इस परिवेश को सीखने के संसाधन के रूप में प्रयुक्त करने का समय विकसित करना है।

विद्यार्थी को अपने परिवेश को संसाधन के रूप में समझने की दृष्टि देना जिससे वह सीखने की परिस्थितियों को पहचान तथा तार्किक विश्लेषण कर स्वयं अपने ज्ञान का सृजन कर सके, यह किसी भी शिक्षा व्यवस्था के लिये सरल नहीं हो सकता।

नई शिक्षा नीति 2020 के समक्ष भी इसके निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में व्यावहारिक स्तर पर कई प्रतिकूलताएँ होंगी ही। स्थानीय और क्षेत्रीय स्तर पर विभिन्न विधाओं में समाहित ज्ञान विद्यार्थी प्राप्त कर सकें और आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उसके महत्व की स्वीकारोक्ति हो सके निःसंदेह नई शिक्षा नीति के लिये चुनौती पूर्ण होगा।

नई शिक्षा नीति 2020 का ढ़ाँचा, इसकी संरचना अपने उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा के अनुरूप तैयार दिखाई देता है। शिक्षा की गुणवत्ता को निर्धारित करने वाले सभी तत्व गुणवत्ता पूर्ण हों इसके यथासंभव प्रयत्न परिलक्षित होते हैं। गैरपारंपरिक शिक्षण विधियाँ, प्रयोगात्मक शिक्षण, एकीकृत एवं व्यवहारिक पाठ्यक्रम, विषयों के चयन में स्वतंत्रता आदि जैसे महत्वपूर्ण आयामों पर यह शिक्षा नीति प्रमुखता से चिंता करती है। शिक्षा, शिक्षण विधियाँ, प्रयोगात्मक कार्य आदि द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति का पथ विषय वस्तु से होकर तय होता है। विषय वस्तु शिक्षा व्यवस्था की सार्थकता का एक अति महत्वपूर्ण पक्ष है।

नई शिक्षा नीति 2020 में शिक्षा के सभी स्तरों के विषयों के पाठ्यक्रमों में विषय वस्तु की गुणवत्ता या कहें गुणवत्तापूर्ण विषय वस्तु के निर्माण को प्रमुखता से उल्लेखित किया है। गुणवत्तापूर्ण विषय वस्तु से तात्पर्य उच्चस्तर की विषय वस्तु से कदापि नहीं होता। गुणवत्तापूर्ण विषय वस्तु की व्यापक सूक्ष्मता व दैनिक जीवन से सम्बद्धता, जीवन कौशलों का विकास, उच्च जीवन मूल्यों की प्रतिस्थापना है। अर्थात् विषय वस्तु द्वारा सूक्ष्मतम दृष्टिकोण विकसित होकर ज्ञान सृजित करने की दृष्टि यानि अंर्तदृष्टि विकसित करना है। इस प्रकार की विषय वस्तु गुणवत्ता पूर्ण विषय वस्तु के साथ–साथ समृद्ध विषय वस्तु कहलाती है। समृद्ध विषय वस्तु अन्वेषक दृष्टिकोण को विकसित करती है। नई शिक्षा नीति के निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु समृद्ध विषय वस्तु का होना और समृद्ध विषय वस्तु द्वारा अन्वेषक दृष्टिकोण अर्थात् खोजपूर्ण विश्लेषणात्मक वृत्ति का विकसित होना अत्यंत आवश्यक है।

समृद्ध विषय वस्तु एवं अन्वेषक दृष्टिकोण :-

प्रत्येक की अपनी योग्यता अपनी सोच के अनुरूप समवाय पद्धति से विविध विषयों की आपसी निर्भरता की आवश्यकता को समझकर अन्वेषक की भाँति नये ज्ञान को अर्जित करने के स्वतंत्र अवसर देने वाली विषय वस्तु, समृद्ध विषय वस्तु होती है।

समृद्ध विषय वस्तु नई सूचनाओं गैर पारंपरिक स्त्रोतों, विधियों, और पद्धतियों की ओर उन्मुख करती है। वे विद्यार्थी को जिज्ञासु, कल्पनाशील बनाकर उन्हे अनुसंधान की ओर प्रेरित करती है।

समृद्ध विषय वस्तु में विषय वस्तु द्वारा :–

– विद्यार्थियों की सुनने की क्षमता में वृद्धि करना होती है।
– स्मरण भाक्ति, कल्पना शक्ति में वृद्धि करना होती है।
– आलोचनात्मक दृष्टिकोण विकसित कर करना होता है।
– ज्ञान, सृजनात्मकता एवं उपयोग दक्षता का महत्व समझाना होता है।

जिससे कि विद्यार्थियों में विषय की अवधारणाओं का संवर्धन किया जाता है।

इसके लिए विषय वस्तु जीवन के प्रत्येक पहलू उपलब्धि, सफलता, असफलता, प्रगतिवादी दृष्टिकोण विकसित करने सें, विवेकपूर्ण चिंतन में तथा अभिव्यक्ति के नित नये मौलिक आयामों, मौलिक प्रयोगों को प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति विकसित करने वाली होनी चाहिये। विषय वस्तु को पूछताछ आधारित ओर चर्चा आधारित करने से अन्वेषक दृष्टिकोण का विकास होता है।

सीधे, प्रत्यक्ष जीवन से संबंध जोड़ने वाली, जीवन को गुणवत्तापूर्ण बनाने वाली विषय वस्तु समृद्ध विषय वस्तु होती है। वह उत्तरदायित्व का बोध करवाती है। वैज्ञानिक चिंतन देती है–वह नया ढूढ़ने को प्रेरित करती है वह नवनिर्माण की नई संकल्पनाएं देती है। इस प्रकार समृद्ध विषय वस्तु से विशय संवर्धन और ज्ञान का संवर्धन होता है।

समृद्ध विषय वस्तु में सम्मिलित अनेकानेक संवर्धित गतिविधियों द्वारा विद्यार्थी नवीन अनुप्रयोगों की ओर अभिमुख होते हैं। संबंधित समस्यात्मक पस्थितियों की पहचान करने के गुण विकसित होते हैं तथा समस्या समाधान का वृत्ति विकसित होती है जिससे विद्यार्थी एक अन्वेषक की भाँति ज्ञान के विकास एवं विस्तार में सक्रिय भागीदार होता है।

इस प्रकार समृद्ध विषय वस्तु के वास्तविक एवं व्यावहारिक स्वरूप को समझकर इसे संवर्धित कर नई शिक्षा नीति 2020 के निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति का पथ प्रशस्त कर समृद्ध सर्जनशील एवं नैतिक जवाबदेह नागरिकों का निर्माण किया जाना संभव है।

नई शिक्षा नीति आधुनिकतम तकनीकियों द्वारा पुरातन भारतीय शिक्षण व्यवस्था की पहुंच वैश्विक स्तर पर सुनिश्चित करने में विश्वास करती है। विद्यार्थी गैरपारंपरिक विधियों, पद्धतियों द्वारा एकीकृत पाठ्यक्रम व्यवस्था से प्रत्येक विषय को समग्र स्वरूप में समझे, सीखे तथा सीखे गये ज्ञान को अपने जीवन से संबंधित कर जीवन कौशलों का विकास करें। इसके लिये पढ़ने–सीखने की प्रक्रिया का अधिकाधिक व्यावहारिक और क्रियात्मक होना आवश्यक है। वर्तमान प्ररिप्रेक्ष्य में सीखने सीखाने की प्रक्रिया की आधारभूत संरचना, विषय वस्तु का गुणवत्तापूर्ण संवर्धन आवश्यक है। समृद्ध विषय वस्तु वह होती है जिसके द्वारा सूक्ष्मतम दृष्टिकोण विकसित कर पाने का, विषयों की आपसी निर्भरता के महत्व को समझ पाने का तथा खोजपूर्ण, प्रवृत्ति का विकास कर स्वयं अन्वेषण कर नये ज्ञान के सृजन की योग्यता विकसित करने की क्षमता होना आवश्यक है। जीवन को गुणवत्तापूर्ण बनाने में, जीवन में संबंधित कौशलों के विकास में मौलिक ज्ञान से समृद्ध सृजनशील एंव नैतिक जवाबदारी के बोध से ओतप्रोत नागरिकों के निर्माण में (नई शिक्षा नीति 2020 के अनुसार) समृद्ध विषय वस्तु को सही स्वरूप में निर्मित करना तथा विद्यार्थी में खोज पूर्ण, चर्चाओं पूछताछ आदि के लिए प्रेरित करना, नई शिक्षा नीति 2020 की सफलता और सार्थकता होगी।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 165-167

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020
परंपरागत एवं नवाचार शिक्षण पद्धतियां

डॉ. एकता इंगले
सहायक प्राध्यापक, सरस्वती शिक्षा महाविद्यालय, ऋषिनगर, उज्जैन।

सारांश :-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 सभी के लिए समावेशी एवं गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने का एक ऐतिहासिक कदम है। यह शिक्षा नीति शिक्षार्थी केन्द्रित है। शिक्षार्थी के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं में विविध संतुलन स्थापित करने हेतु पाठ्यक्रम को में विषयों के साथ–साथ बुनियादी शिक्षा शिक्षण कौशलों को महत्व देती हैं का प्रभावी शिक्षण व्यवस्था का केन्द्र शिक्षक होते है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के शिक्षकों को सम्मान उत्कृष्ट प्रदर्शन हेतु प्रोत्साहित करती है।

'मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना शिक्षा ही है।'– स्वामी विवेकानन्द।

शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास का माध्यम है। शिक्षा जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा मानवीय गुणों का विकास कर, उसे आत्मनिर्भर बनाती है एवं भावी जीवन को गुणवत्तापूर्ण मार्ग प्रशस्त करती है। व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में वातावरण और परिवेश के साथ अन्तः क्रिया करते हुए अनेक अनुभव प्राप्त करता है, और इन अनुभवों से ज्ञानार्जन करता है, सही मायने में यही शिक्षा का व्यापक अर्थ है। शिक्षा एक स्वाभाविक, सामाजिक, दार्शनिक, राजनैतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण है जो निरंतर मानव में ज्ञानकौशल एवं अधिगम कौशल में वृद्धि कर स्वयं के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन करती है।

किसी भी समृद्ध विकासशील देश की प्रगति में शिक्षा प्राणवायु की तरह है। अनादिकाल में हमारा देश भी अपनी विद्वता के लिए जाना जाता रहा है। हमारे प्राचीन ग्रंथों ने, वेदों में निहित ज्ञान ने भारत को विश्वगुरू के रूप में स्थापित किया है। अपनी इस विशिष्ट समृद्ध पहचान को स्थापित करने में शिक्षा एंव शिक्षा प्रणाली द्रुतगति से परिवर्तन कर हमारे देश में गुणवत्तापूर्ण, सर्वसुलभ, शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराने का दायित्व निर्वहन कर रही है। शिक्षा की इस सतत् धारा को प्रवाहमान बनाने में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की महती भूमिका है।

राष्ट्रीय शिक्षा, नीति 2020, प्राचीन एवं भारतीय परंपरा, ज्ञान एवं वैज्ञानिक वैचारिक दृष्टिकोण को सभी के लिए मुहैया कराने के लिए एक ऐतिहासिक कदम है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति का उद्देश्य शिक्षा में उत्कृष्टता, कुशलता के साथ सर्जनात्मक योग्यता को बढ़ावा देना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति रचनात्मक और रूचि के अनुसार–शिक्षार्थी के चहुँमुखी विकास पर बल देती है एवं उनके लिए अध्ययन विषयों के लिए अधिक से अधिक विकल्पों को चुनने के अवसर देती है। दो विषयों के मध्य सहसबंध स्थापित कर नये विषय संयुक्ति को

बढ़ावा देती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 'जीवंत ज्ञान' की नवीन संकल्पना का निर्माण करती है। इस नीति के मूलभूत सिद्धांत शैक्षणिक संस्था, शिक्षा प्रणाली, शैक्षणिक वातावरण/परिवेश, शिक्षक, शिक्षार्थी के साथ–साथ अभिभावकों को भी मार्ग प्रशस्त करते है।

गुणवत्तापूर्ण, सफल शैक्षणिक संस्था, का प्रमुख दायित्व प्रत्येक छात्र का सम्पूर्ण विकास करना, सुरक्षित एवं प्रेरणादायक शैक्षिक वातावरण प्रदान करना उपयुक्त भौतिक संसाधन मुहैया कराना है। यह शिक्षा नीति विद्यार्थियों के समग्र विकास पर केन्द्रित है और विद्यार्थियों के समग्र विकास की नींव को मजबूत करने का दायित्व अध्यापक होता है। शिक्षक ही बच्चों के भविष्य को आकार देकर राष्ट्र के भविष्य का निर्माण करता है। इस नीति के मूलभूत आधार सिद्धांत शिक्षकों को दिशा निर्देशित करते है कि वे अपने शैक्षणिक कार्यों में शिक्षण अधिगम कौशलों, का अधिकाधिक उपयोग करें, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, चिंतन, रचनात्मक एवं सृजनात्मकता का एकीकरण कर समन्वय करें।

यह नीति शिक्षक की जवाबदेही, प्रतिबद्धता को भी प्रोत्साहित करती है साथ ही शिक्षक को प्रभावी पाठ्यक्रम और पाठ्यत्तर गतिविधियों पर आधारित बहुविषयक शिक्षण हेतु निर्देशित करती है। उपागम आधारित शिक्षण पर बल दें। विद्यार्थियों में तार्किक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करें जिससे भविष्य में उनमें निर्णय क्षमता का विकास हो सके। भाषा संवर्धन हेतु बहुभाषिक अधिगम को प्रोत्सहित करें। अपने शिक्षण में प्रत्येक विषय से संबंधित विशय वस्तु में निहित मूल्यों की पहचान कर विद्यार्थियों में जीवन कौशल की समझ विकसित करें। नवीन तकनीकियों एवं प्रौद्योगिकी का उपयोग, एक विषय का अन्य विषय के साथ सहसंबंध स्थापित करें। विविधता एवं स्थानीय परिवेश, स्थानीय उद्योगों एवं स्थानीय विशेषताओं को शिक्षण से जोड़ने का अधिकतम प्रयास करें। विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धियों एवं समग्र विकास में पारदर्शिता एवं वैधता की जाँच हेतु मूल्यांकन की महत्ता भी शिक्षक का एक महत्वूपर्ण दायित्व है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक बहुविषयक दृष्टिकोण की प्रांसगिकता पर केन्द्रित है एक नये पाठ्यक्रम और शिक्षा संरचना को संगठित करने के लक्ष्य को स्थिरता प्रदान करती है। प्राचीनकाल में शिक्षा को द्विध्रुवीय प्रक्रिया के रूप में जाना जाता था, परंतु जैसे शिक्षा के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों, इसके स्वरूप को महत्व दिया जाने लगा, शिक्षा के नये रूप अर्थात् त्रिध्रुवीय प्रक्रिया में पाठ्यक्रम के महत्व को नया स्थान प्राप्त हुआ। पाठ्यक्रम शिक्षा के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को एक दिशा प्रदान कर पूर्णताः की ओर ले जाता है। पाठ्यक्रम विविध विषयों में विविधता का सम्मिश्रण है इन विविध विषयों के अध्यापन हेतु विभिन्न शिक्षण विषयों की आवश्यकता है। प्रत्येक विषय विशेष की विषय वस्तु के प्रभावी अध्ययन हेतु उत्तम शिक्षण पद्धति का होना अतिआवश्यक है। शिक्षण पद्धतियां विद्यार्थियों तक विषय वस्तु पहुंचाने का एक साधन है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि शिक्षण पद्धति में, संप्रेषण कौशल, मानवीय संबंध कौशल एवं नेतृत्व कौशल और सामग्री स्त्रोंतो एवं मानवीय संसाधनों की कला निहित होती है।

शिक्षण की प्राचीनतम शिक्षण पद्धति, परंपरागत शिक्षण विधियां का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। परंपरागत शिक्षण विधियों में महत्वपूर्ण व्याख्यान विधि, कहानी कथन विधि है। यह विधियां पूर्णतः शिक्षक केन्द्रित थी जिसका एक निश्चित स्वरूप में परंपरागत शैक्षणिक व्यवस्था के संचालन से था। इसमें केवल विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता के

रूप में होते थे। इन विधियों की प्रकृति निरस एवं उबाव थी क्योंकि इसमें ज्ञान का सम्प्रेषण एक तरफा होता था। यह शिक्षण विधियां विद्यार्थियों के विकास मार्ग को संकुचित करती है।

शिक्षण प्रक्रिया में परंपरागत पद्धति की आवश्यकता समय–समय पर स्वीकार की गयी एवं इसका अपना एक महत्व है परंतु बदलते सामाजिक स्थितियों एवं प्रभावी अध्ययन ने नवाचार शिक्षण पद्धति की आवश्यकता को जन्म दिया। नवाचार शिक्षण पद्धति बाल केन्द्रित एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धांतो पर आधारित है, जो विद्यार्थियों को स्वअधिगम, शिक्षण सामग्री के समुचित उपयोग एवं समन्वित रूप से सीखने पर बल देती है। इस विधि का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थी को विषय वस्तु का ज्ञान इस प्रकार देना है कि वे उसका अपने जीवन में व्यवहारिक रूप से प्रयोग कर सके। स्वाध्याय की वृत्ति, सृजनात्मक योग्यता, चिंतन, लेखन अभिव्यक्ति, वांछनीय अभिव्यक्तियों एवं मूल्यों का विकास करती है। यह अधिगम को प्रभावी सरल, सहज एवं बोधगम्य बनाती है, रूचिकर बनाती है एवं विषय के प्रति समझ विकसित करती है। इस विधि से अर्जित ज्ञान स्मृति में अधिक स्थायी होता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अनुभव आधारित अधिगम, खेल विधि, कहानी कथन विधि, शिक्षण में नवाचार तकनीको एवं प्रौद्योगिकी का अधिकाधिक उपयोग करने, कक्षाओं में नियमित रूप से अधिक रूचिकर, रचनात्मक, सहयोगात्मक एवं खोजपूर्ण गतिविधियों को एकीकृत कर प्रभावी अध्ययन हेतु प्रेरित करती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शैक्षिक ढ़ांचे को बेहतर बनाने का, सुदृढ़ करने का प्रयास है। लेकिन पारंपरिक ज्ञान को नवीन प्रयोग से जोड़ना, परंपरागत पद्धतियों में नवाचार, तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी को समाहित करना इस शिक्षा नीति के लिए एक चुनौति है।

निष्कर्ष :–

कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रत्येक विद्यार्थियों के संवर्धन के लिए पारंपरिक भारतीय मूल्यों, बुनियादी मानवीय और संवैधानिक मूल्यों को स्थापित करने का उत्कृष्ट माध्यम है, विद्यार्थियों में लोकतांत्रिक दृष्टिकोण, देशभक्ति विश्वबंधु की भावना, विकसित करती है। शिक्षा, शिक्षा तंत्र एवं शिक्षक को दिशा निर्देशित कर अपने दायित्वों के निर्वहन हेतु प्रतिबद्ध करती है। विद्यार्थियों में चिंतन नए विचारों, रचनात्मकता को निखरने का अवसर देती है, साथ ही पाठ्यक्रम, विषय वस्तु शिक्षण पद्धतियों में परिवर्तन कर उसके अद्यतीकरण के विषय में नवीन दृष्टिकोण को विकसित करती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 सभी के लिए समावेशी एवं गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने का एक ऐतिहासिक कदम है। यह शिक्षा नीति शिक्षार्थी केन्द्रित है। शिक्षार्थी के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं में विविध संतुलन स्थापित करने हेतु पाठ्यक्रम को में विषयों के साथ–साथ बुनियादी शिक्षा शिक्षण कौशलों को महत्व देती हैं का प्रभावी शिक्षण व्यवस्था का केन्द्र शिक्षक होते है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के शिक्षकों को सम्मान उत्कृष्ट प्रदर्शन हेतु प्रोत्साहित करती है।

प्रत्येक विषय विशेष एवं विषय वस्तु को भावी अध्यापन हेतु उत्तम शिक्षण पद्धति का होना अतिआवश्यक है। शिक्षण पद्धतियों विद्यार्थियों तक विषय वस्तु को पहुंचाने का एक साधन है। यह शिक्षा नीति पाठ्यक्रम के बोझ को कम कर विद्यार्थियों में कौशल विकास अनुभव आधारित शिक्षण एवं तार्किक चिंतन हेतु प्रोत्साहित करती है। परंपरागत शिक्षण पद्धतियों, प्राकृत ज्ञान को नवाचार के माध्यम से विद्यार्थियों में सम्प्रेशित करने हेतु दिशा निर्देशित करती है।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 168-173

सभ्यता एवं संस्कृति के वाहक : नेपाल के प्रमुख धार्मिक स्थल

डॉ0 राखी बा0

असिस्टेन्ट प्रोफेसर समाजशास्त्र जी0डी0सी0 काण्डा, बागेश्वर।

प्रमुख शब्द :- सभ्यता, संस्कृति, धार्मिक स्थल, दर्शनीय, धर्मावलम्बी।

सारांश :-

भारत और नेपाल के मध्य सम्बन्ध अनादि काल से है। दोनों ही राष्ट्रों की धार्मिक, सांस्कृतिक ऐतिहासिक व भाषायी स्थिति में बहुत अधिक समानता है तथा दोनों ही देश ऐसे हैं, जिनकी बहुसंख्यक आबादी हिन्दू है। भारत व नेपाल में कई स्तरों पर समानता दिखती है। दोनों ही देश गौरवशाली सभ्यता व संस्कृति के वाहक है। नेपाल एक बहुत सुन्दर राष्ट्र के समान विश्व के सम्मुख अपनी अनूठी छठा बिखरे हुए है। यहाँ के प्राकृतिक दृश्य अद्भुत व निराले हैं–काठमांडू, नगरकोट, पोखरा, सागरमथ, चितंवन नेशनल पार्क, नेशनल पार्क, जनकपुर, लुम्बिनी आदि। नेपाल की प्रमुख धर्मिक विशेषता है, यहां के प्रमुख धार्मिक स्थल। विभिन्न मंदिर समूह इस राष्ट्र को विश्व में एक अनोखी पहचान देते हैं। विश्व में दो पशुपति मंदिर प्रसिद्ध है, एक काठमांडु और दूसरा भारत के मंदसौर का, दोनों ही मंदिरों में मूर्ति समान आकृत्ति की है। जांनकी मंदिर जनकपुर नेपाल का प्रमुख धार्मिक स्थल है, यह भगवान श्री राम की ससुराल के रूप में प्रसिद्ध है। इसी स्थान पर राम और सीता का विवाह हुआ था तथा यहां पर धनुषा नाम से विवाह मंडप स्थित है। इसी में पंचमी के दिन रीति–रिवाज से राम–जानकी का विवाह हुआ था। मिथिला उमा (महादेवी शक्तिपीठ) इस शक्तिपीठ को तीन स्थानों पर माना जाता है– उग्रतारा मंदिर सहरसा बिहार, जयमंगला देवी मंदिर समस्तीपुर बिहार और वनदुर्गा मंदिर जनकपुर नेपाल। चागुनारायण मंदिर यह काठमांडू से 8 मील दूर भक्तपुर स्थान पर है। भक्तपुर में कई शानदार हिन्दू मंदिर हैं, जो वास्तुकला के लिए प्रसिद्ध हैं। दंतकाली माता सती की मृत्यु के बाद भगवान शिव जब उनका मृत शरीर लेकर जा रहे थे, तब इस स्थान पर माता सती का दांत टूट कर गिर गया था। इसी वजह से इस स्थान को दंतकाली कहा गया।

ब्रजयोगिनी :-

हिन्दू व बौद्ध दोनों धर्म की आस्था का केन्द्र है, यह मंदिर काठमांडू घाटी के पास साली नदी किनारे सांखू में स्थित है। वराह यह पूर्वी नेपाल व सप्तकाशी और कोका नदियों के संगम पर स्थित है, माना जाता है कि इसी स्थान पर भगवान विष्णु के अवतार वराह ने हिरण्यकश्यप का वध किया था। महामाया गुजरेश्वरी शक्तिपीठ पशुपति मंदिर के निकट गुजरेश्वरी मंदिर जहां माता के दोनों घुटने गिरे थे। इसी मंदिर में नेपाल की अधिष्ठात्री देवी के रूप की पूजा की जाती है। स्वयंभूनाथ (बन्दर मंदिर) यह स्थान बौद्धों का धार्मिक केन्द्र है तथा कुछ हिस्सों में बन्दरों के निवास होने के कारण इसे मिंकी टेम्पल भी कहा जाता है। मनकामना मंदिर इस मंदिर

में आने से लोगों की मनोकामना पूर्ण होती है, इसलिए इस मंदिर का नाम मनोकामना मंदिर है। अतः स्पष्ट होता है कि नेपाल में हिन्दू और बौद्ध धर्म से सम्बन्धित अनेक धार्मिक स्थल हैं, जो नेपाल की धार्मिक स्थिति को सुदृढ़ करता है। ऐसा भी माना जाता है कि नेपाल एकमात्र हिन्दू राष्ट्र है। साथ ही सभ्यता व संस्कृति को अक्षुष्ण बनाये रखने में अपनी विशिष्ट भागीदारी देता रहा है।

प्रस्तावना :–

नेपाल भारतवासियों के लिए अत्यन्त प्राचीन काल से आकर्षण का केन्द्र रहा है, यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से नेपाल एक स्वतन्त्र देश था, परन्तु यहाँ का धर्म, संस्कृति, रीति–रिवाज, कला–कौशल, मान्यताएं भारतीय है। देवताओं का घर कहे जाने वाला नेपाल राष्ट्र विभिन्न विविधताओं से परिपूर्ण हैं। इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि जहां एक ओर बर्फ से ढकी पहाड़ियां हैं, वही दूसरी ओर प्रमुख धर्मिक तीर्थस्थल हैं। धार्मिक स्थल के अतिरिक्त अन्य दर्शनीय स्थल नेपाल की अद्‌भुत छवि को प्रदर्शित करते हैं, हिमालय की तराई में बसा पोखरा नेपाल का प्रमुख पर्यटक स्थल है। यह पोखरा संस्कृति और रोमांच का केन्द्र भी है तथा विश्व का सबसे ऊँचा पर्वत माउन्ट एवेरेस्ट भी नेपाल में है। यहां 81 प्रतिशत नागरिक हिन्दू धर्मावलम्बी हैं। नेपाल में सामाजिक जीवन की मान्यता विश्वास, संस्कृति व सभ्यता हिन्दू भावनाओं पर आधरित है। यहां के शैव–विष्णु, शाक्त, बौद्ध सब धर्मों का प्रभाव एक–दूसरे पर समान रूप से पड़ा है तथा उपासना की पद्धति व प्रतीकों में भी समन्वय दिखाई पड़ता है। यहां बौद्ध पन्थ ने भी मूर्तिपूजा व कर्मकाण्ड को अपनाया है।

इस देश में बौद्ध पशुपतिनाथ की पूजा आर्यावलोकितेश्वर के रूप में करते हैं और हिन्दू मंजुश्री की पूजा सरस्वती रूप में करते हैं। नेपाल की यह समन्वयात्मक संस्कृति लिच्छवि काल से अब तक चली आ रही हैं हिमालय पर्वत श्रेणी तथा प्राकृतिक सुन्दरता से घिरे हुए इस देश का सामाजिक परिवेश काफी सुन्दर, शान्तिपूर्ण, आकर्षक व आध्यात्मिक है। यहां मुख्य रूप से हिन्दू, बौद्ध, मुस्लीम, किरात तथा ईसाई धर्म का पालन करने वाले लोग रहते हैं। अन्य देशों की तुलना में हिन्दू धर्म को मानने वाले लोगों की संख्या देश में सर्वाधिक है तथा प्राचीन काल से चली आ रही सनातन हिन्दू धर्म की मान्यताओं के प्रभाव नेपाल में अधिकता से देखने को मिलता है। गौतम बुद्ध के जन्मस्थल स्थान लुम्बिनी भी नेपाल में होने के कारण बौद्ध धर्म के अनुयायी की संख्या भी अच्छी खासी है। 'नेपाल तीर्थस्थलों से भरा हुआ है। तिब्बत के लोग नेपाल को नेपा कहते है। तिब्बती भाषा में उसका अर्थ तीर्थयात्री होता है, वे लोग नेपाल को पुण्य तीर्थस्थल मानते हैं। हिन्दू धर्मावलम्बी भी नेपाल को श्रद्धा से देखते हैं क्योंकि यहां बहुत से हिन्दुओं के तीर्थस्थान हैं। बौद्ध धर्मावालम्बियों के लिए भी नेपाल महान तीर्थ है।'[1]

नेपाल के प्रमुख तीर्थस्थल :–

नेपाल में हिन्दू और बौद्ध का प्रभाव समान रूप से देखा जाता है हिन्दू शिवमार्गी तथा बौद्ध बुद्धमार्गी कहे जाते हैं। वर्तमान में बौद्ध कृत्य, कर्तव्य, रीति–नीति व पुरोहित के अधिकार, सामाजिक व्यवस्था यह सब जातिभेद की विधियों पर स्थित हैं, नेपाल के प्रमुख तीर्थस्थल निम्नलिखित हैं–

पशुपतिनाथ मंदिर :–

नेपाल की राजधानी काठमाण्डु से 3 किमी उत्तर–पश्चिम में बागमती नदी के किनारे देवपाटन गाँव में स्थित एक हिन्दू मंदिर है। नेपाल एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बनने से पहले यह मंदिर राष्ट्रीय देवता, भगवान पशुपतिनाथ का मुख्य निवास माना जाता था। यह मंदिर यूनेस्को विश्व सांस्कृतिक विरासत स्थल की सूची में

सूचीबद्ध हैं।[2] पशुपति में आस्था रखने वाले मुख्य रूप से हिन्दू आगन्तुकों को इस मंदिर परिसर में प्रवेश करने की अनुमति है। गैर हिन्दू आगंतुकों को इसे बाहर से बागमती नदी के दूसरे किनारे से देखने की अनुमत्ति है। यह मंदिर नेपाल में शिव का सबसे पवित्र मंदिर माना जाता है। 15वीं शताब्दी के राजा प्रताप मल्ल से शुरू हुई परम्परा है कि मन्दिर में चार पुजारी (भट्ट) और एक मुख्य पुजारी (मूल भट्ट) दक्षिण भारत के ब्राह्मणों मे से रखे जाते है। पशुपति में शिवरात्रि का पर्व विशेष महत्व के साथ मनाया जाता है।[3]

पुराणों में लिखा है कि शिव–पार्वती जहाँ क्रीडा करते थे, उसे मृग–स्थली कहते हैं। किरात जाति आरम्भ में शैव थी। उसने ही पशुपतिनाथ का मंदिर निर्मित कराया था तथा पशुपतिनाथ की संज्ञा किरातेश्वर भी है। प्रवेश द्वार पर स्वर्ण मंडित नन्दी की मूर्ति स्थित है। मंदिर दो मंजिला है, चार द्वार है। मंदिर की ऊपरी छत रजत निर्मित है, उन पर शिव प्रतिमा है तथा गर्भगृह के द्वार के ऊपर रूद्राक्ष के दानों से 'पशुपति शरणम्, और बुद्ध शरणम्' अंकित है, फर्शों पर रूपये टंके हैं। मंदिर में चतुरानन शिवलिंग है। इसका निर्माण बुद्ध से पूर्व हुआ था। लोगों की धारणाा है कि चतुरानन शिवलिंग बुद्ध के जन्म, ज्ञान लाभ, धर्मचक्र प्रवर्तन और निर्वाण के लिंग है। किवंदन्ती है कि इसका यथार्थ ज्ञान केवल नरेश को है। मंदिर में चारों ओर विभिन्न प्रतिमाएं पारस्परिक रूप से उत्कीर्ण हैं।[4] महादेव शिव के निवास स्थान, उनकी अर्धांगिनी जगदम्बा, मां पार्वती और जगत् जननी सीता जी का पितृ गृह गंगा–यमुना, अचिरावती सिन्धु और ब्रहमपुत्र आदि नद–नालियों का उद्गम स्थल, पग–पग पर हिन्दू देवी–देवताओं, बौद्ध मंदिरों और सि़द्धों, योगियों के तपस्थलों से सुशोभित नेपाल चिरकाल से हिन्दू धर्म संस्कृति और सभ्यता का प्रमुख केन्द्र रहा है।

जानकी मंदिर :-

नेपाल के जनकपुर के केन्द्र में स्थित एक हिन्दू मन्दिर एवं ऐतिहासिक स्थल हैं। यह देवी सीता को समर्पित है, मन्दिर की वास्तुकला हिन्दू राजपूत वास्तुकला है। यह नेपाल में सबसे महत्वपूर्ण राजपूत स्थापत्य शैली का उदाहरण है। डॉ0 कृष्ण बाजपेयी के अनुसार, "स्थापत्य कला या वास्तु को एक ललित कला माना गया है। भारतीय परम्परा में वास्तुकला वेदांग से समुद्भूत उत्पति माना गया है। स्थापत्य को कुछ लेखकों ने चार उपवेदों में से एक माना है तथा स्थापत्य कला भवन निर्माण कला है।"[5] यह मंदिर जनकपुरधाम भी कहलाता है, मंदिर परिसर एवं आस–पास 115 सरोवर एवं कुण्ड है, जिसमें गंगासागर, परशुराम कुण्ड एचं धनुषसागर अत्यधिक पवित्र कहे जाते है। जानकी मंदिर का निर्माण मध्य भारत के टीकमगढ़ की रानी वृषमानु कुमारी के द्वारा 1811 ई0 में करवाया गया था। इसकी तत्कालीन लगात नौ लाख रूपये थी। इसी कारण स्थानीय लोग इस नौलखा मंदिर भी कहते हैं। मान्यतानुसार सीता माता विवाह से पूर्व यहां रहा करती थी। कहते हैं इस स्थान की खोज एक बैरागी श्री किशोर दास ने की थी, जब उन्हें यहां सीता माता की प्रतिमा मिली थी। मान्यतानुसार राजा जनक ने इसी स्थान पर शिव–धनुष के लिए तप किया था। वर्तमान में इस मंदिर पर रामांनदी सम्प्रदाय के बैरागी साधुओं का प्रभुत्व है व श्री रामनन्दी दास वैष्णव जी इस मंदिर के महन्त है।[6]

मिथिला शक्तिपीठ :-

यह शक्तिपीठ भारतवर्ष के 108 एवं ज्ञात 51 पीठों में एक है। इसका हिन्दू धर्म में बड़ा ही महत्व है। मिथिला शक्तिपीठ तीन स्थानों पर माना जाता है। उग्रतारा मंदिर सहसा बिहार, जयमंगला देवी मंदिर बिहार, वनदुर्गा मंदिर (जनकपुर नेपाल) मान्यतानुसार यह माना जाता है कि इस स्थान पर देवी सती वामस्कंध का

निस्पात हुआ था। हिन्दू धर्म के पुराणों के अनुसार जहां–जहां सती के अंग के टुकड़े धारण किये वस्त्र या आभूषण गिरे, वहां–वहां शक्तिपीठ अस्तित्व में आये और ये अत्यन्त पावन तीर्थस्थान कहलाये जाते हैं।[7]

चंगूनारायण मंदिर (चांगुनारायण) :–

चंगूनारायण का प्राचीन मंदिर एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित है, जिसे चंगु या डोलागिरी के नाम से भी जाना जाता है। यह मंदिर भगवान विष्णु को समर्पित है। इस मंदिर को नेपाल के इतिहास में सबसे पुराना मंदिर माना जाता है। कश्मीरी राजा ने अपनी पुत्री चंपक का विवाह भक्तपुर के राजकुमार से कर दिया़चंगु नारायण का उन्हीं के नाम पर रखा गया है। यह मंदिर वास्तुकला में एक मील का पत्थर बना हुआ है। दो मंजिला छत वाला मंदिर पत्थर की ऊँची चोटी पर खड़ा है। प्रोफेसर मदन रिमल के अनुसार मंदिर में न तो शिखर शैली में और न ही शिवालय में बल्कि इसकी एक स्थापत्य शैली है, जिसने इसे एक पारंपरिक नेपाली मंदिर के रूप में वर्णित किया है। मंदिर के चार द्वार है। इस मंदिर का निर्माण लिच्छवी राजा मनदेव द्वारा 464 ई0 में करवाया गया था।[8]

बोधनाथ :–

पशुपतिनाथ और काठमाण्डू के बीच में पशुपतिनाथ से आधकोस की दूरी पर उत्तर में बोधगया (बुद्धनाथ) नामक गाँव है। एक बड़े बौद्ध मंदिर के चारों ओर चकाकारम एक गाँव बसा है। मंदिर के बेदी गोलाकार है, जो ईटों की बनी हुई है। उस वेदी के ऊपर पूर्ण गर्भ गुम्बजकार मंदिर है। कलश पीतल का बना है तथा वेदी की ऊपर कुलंगी के बीच में बोधिसत्वों की प्रतिमा है। मंदिर का व्यास 100 गज है, भोटिया और तिब्बती बौद्ध इस मंदिर का विशेष आदर करते हैं।[9]

मनकामना (मनोकामना) मंदिर :–

पहाड़ों के बीच बसा हुआ यह मंदिर काठमांडू शहर के करीब 125 किमी की दूरी पर स्थित है। इस मंदिर के परिसर से दिखाई देने वाले पहाड़ नदी और प्राकृतिक दृश्य काफी बेहतरीन प्रतीत होते हैं। नेपाल के इस मंदिर को मनकामना या मनोकामना दोनों नामों से जाना जाता है। लोगों का कहना है कि इस मंदिर में दर्शन करने वाले श्रद्धालुओं की हर मनोकामना को माता जी पूरा करती है, जिसकी वजह से इसका नाम मनोकामना पड़ गया। दशहरे के समय इस मंदिर में लाखों श्रद्धालु दर्शन करने आते है।[10]

महामाया गुह्मेश्वरी :–

51 शक्तिपीठों में नेपाल की महामाया भी है, जिसे महामाया गुह्मेश्वरी शक्तिपीठ कहा जाता है। बागमती नदी के दूसरी तरफ स्थित इस मंदिर में विराजी देवी की अधिष्ठात्री देवी के रूप में पूजा की जाती है। इस शक्तिपीठ की शक्ति महामाया अंश शिवपाल है, इन्हें गृह्माकाली भी कहा जाता है। मंदिर का महत्व तन्त्र भी है, इसलिए यहां आने वाले तांत्रिकों की संख्या बहुत हैं। मंदिर 2500 साल पुराना है, ऐसी मान्यता है कि यहाँ देवी सती के शरीर से संधिस्थल (शौच अंग) गिरे थे। जिसके बाद कुछ सौ साल पहले इस मंदिर का निर्माण शुरू हुआ। 17वीं सदी राजा प्रताप मल्ला ने इस मंदिर का निर्माण कराया। इसके बाद कांतिपुर के नवें राजा ने पगोड़ा शैली में बने इस मंदिर का जीर्णोद्धार कराया।[11]

मुक्तिनाथ मंदिर :–

नेपाल के सबसे प्रसिद्ध मंदिरों में से एक मुक्तिनाथ मंदिर वैष्णव सम्प्रदाय के लोगों के लिए आस्था के केन्द्र बन चुका है, जिसमें शालिग्राम भगवान की पूजा होती है। शालिग्राम एक प्रकार का पवित्र पत्थर होता है,

जिसे हिन्दू धर्म में अन्य देवी–देवताओं की तरह पूज्यनीय माना जाता है। इस मंदिर की स्थिति नेपाल के मुक्ति क्षेत्र में होने की वजह से इस पूरे क्षेत्र को मुक्ति क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। हिन्दू धर्म की मान्यता के अनुसार इस क्षेत्र पर आने वाले पर्यटकों और श्रद्धालुओं को मुक्ति यानी मोक्ष की प्राप्ति होती है।[12]

स्वयंभूनाथ मंदिर :-

(स्वयंभूस्तूप) काठमाण्डू नगर के पश्चिम में एक पहाड़ी पर स्थित एक प्राचीन बौद्ध स्तूप है। बौद्ध धर्म के अनुयायी नेवारी लोगों के दैनिक जीवन में स्वयंभूनाथ का केन्द्रीय स्थान है, यह स्थान उनके लिए सबसे पवित्र बौद्ध स्थल है। तिब्बत लोगों तथा तिब्बती बौ़द्ध धर्म के अनुयायियों के लिए बौद्धनाथ के बाद इस मंदिर का स्थान है। गोपाल राजवंशावली के अनुसार– 'इसकी स्थापना राजा मानदेव के परदादा वासदेव ने 5वीं शताब्दी में की थी। हांलाकि कहा जाता है सम्राट अशोक ने तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में इस स्थल का दौरा किया था और पहाड़ी पर एक मंदिर बनाया था, जिसे बाद में नष्ट कर दिया गया था। हांलाकि इस स्थान को बौ़द्ध माना जाता है, लेकिन यह स्थान बौद्धों और हिन्दुओं द्वारा पूज्यनीय है।'[13] स्वयंभूनाथ के सम्बन्ध में यह भी प्रसिद्ध है कि संसार में यह सबसे प्राचीन बौद्ध मंदिर हैं। ऐतिहासिक लेखों के अनुसार– यह अत्यन्त सुन्दर मंदिर दो हजार वर्ष प्राचीन है। यह मंदिर एक पहाड़ी पर बना हुआ है और पाँच सौ सीढ़िया चढ़कर यहां पहुँचा जा सकता है। मुख्य मंदिर के अतिरिक्त 13 अन्य मंदिर हैं, जो बौद्धों के तेरहों स्वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं, उनके स्वर्ण शिखर समस्त देवस्थल में भव्यता भर देते हैं। मंदिर में विशाल बौद्ध मूर्ति के आधार पर इस अत्यन्त प्राचीन मंदिर की स्थापत्य कला और मूर्ति को देखकर नेपाल की प्रशंसा करनी ही पड़ती है।[14]

लुम्बिनी :-

हिन्दुओं के लिए पशुपतिनाथ मंदिर जो महत्व रखता है, वही बौद्ध के लिए लुम्बिनी। यहां बुद्ध अवतीर्ण हुए इसलिए लुम्बिनी बौद्ध तीर्थस्थानों में प्रमुख है। इसकी खोज सबसे पहले जनरल कनिघम के एक सहायक ने की, किन्तु विफल रहे। 1893 ई0 में डॉ0 ए0ए0 फ्यूहर ने एक अशोक स्तम्भ खोजा और एक शिलालेख भी। शिलालेख की ब्राह्मी लिपि से ज्ञात होता है कि अशोक ने अपने शासन काल के बीसवें वर्ष में लुम्बिनी की यात्रा की थी। लुम्बिनी में बुद्ध की शिला–प्रतिमा निर्मित करायी थी और एक स्तम्भ भी। लुम्बिनी के जीणोद्धार के लिए नेपाल सरकार ने अनेक प्रत्यन्न किये है। नेपाल मंदिरों और चैत्यों का देश है। मंदिरों व चैत्यों में नेपाली शिल्पकला सुरक्षित है। बौद्ध और हिन्दू दोनों के मन्दिरों में पैगोड़ा शैली की छाप है, जो नेपाल की देन है।[15] नेपाल हिन्दू–बौद्ध स्वरूप वाला ही है तथापि अभी भी पूरा नेपाल हिन्दू–बौद्ध स्वरूप वाला ही है, जिसकी छाप वहां के उत्सव प्रधान सामाजिक जीवन में लोगों के घरों में पूजित रामकृष्ण, बुद्ध, गणेश, हनुमान, भीमसेन, दुर्गा और तारा आदि देवी–देवताओं के साथ ही विजयादशमी, श्री कृष्ण जन्माष्टमी, श्री रामनवमी, नागपंचमी, लक्ष्मी पूजा, भ्रातृ द्वितीया, बुद्ध जयन्ती, नन्दा देवी यात्रा, पशुपतियात्रा, वज्र योगिनी यात्रा, घण्टाकरण यात्रा, गुरू पूर्णिमा, घोड़ा यात्रा भैरव यात्रा, लाख यात्रा, रथ याात्रा, मत्येन्द्रनाथ याात्रा और नारायण पूजा आदि के रूप में सर्वत्र सुस्पष्ट रूप में देखी जा सकती है।[16]

अतः कहा जा सकता है कि सहस्त्राब्दियों से एक सर्वप्रभुत्व सम्पन्न स्वतन्त्र हिन्दू राष्ट्र के रूप में अपनी एक अनोखी पहचान बनाये हुए है। हिन्दू सभ्यता व संस्कृति के रूप में प्रतिष्ठित नेपाल हिमालय से कन्याकुमारी तक अपनी अनूठी छाप विश्व पटल पर छोड़ता है। नेपाल पुराणकालीन भारतवर्ष, भारतखण्ड और हिन्दूस्तान का

ही एक भौगोलिक, सांस्कृतिक अंग रहा है और सदैव से ही भारतीय सभ्यता व संस्कृति के दर्शन कराता रहा है। भारत के समान ही यहां विभिन्न तीज–त्यौहार बड़े ही हर्षोल्लास से मनाये जाते हैं साथ ही भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा की जाती है व यहीं के समान भिन्न–भिन्न मंदिरों के स्थापना की गई है। स्पष्ट होता है कि भारत के समान ही नेपाल राष्ट्र भी सभ्यता व संस्कृति से ओत–प्रोत है। यहां के पर्व, रीति–रिवाज, धर्म, विश्वास, मूल्य परम्पराएं भारतीय दर्शन को प्रदर्शित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। सभ्यता एवं संस्कृति के वाहक के रूप में नेपाल के प्रमुख धार्मिक स्थलों ने अपनी अग्रणी स्थिति को दृष्टिगोचर किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. सक्सेना शंकर सहाय, "नेपाल अतीत और वर्तमान" नव ग्रन्थ कुटीर बीकानेर 1965 पृ0 9.
2. SAARC Tourisi 22 जुलाई 2010 को पुरालेखित अभिगमन तिथि 5 अप्रैल 2009.
3. नवभारत टाईम्स 4 अगस्त 2014 मूल से 12 अगस्त 2014 को पुरालेखित अभिगमन तिथि 5 अगस्त 2014.
4. नारायण सिंह कपिलदेव (सुह्रय, "भारत–नेपाल" सन्मार्ग प्रकाशन 16 यू बी बैग्लो रोड दिल्ली, 1970 पृ0 16
5. बाजपेयी कृष्णदत, "भारतीय वास्तुकला का इतिहास" उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ प्रकाशन 2002 अध्याय 01.
6. https://www.hi.wikipidia.org
7. https://www.bharatdiscovery.org
8. https://www.hmoob.in.wika
9. मिश्रकृत प्रसाद बलदेव, "नेपाल का इतिहास" लक्ष्मीवेडकटेश्वर स्टीम प्रेस, कल्याण–बम्बई 1851 पृ 49.
10. https://tourguidence.com
11. https://bhsakar.com.dharam
12. https://tourguidence.com
13. https://tourguidence.com
14. साह ए0बी0 ऋषिकेश, "प्राचीन एवं मध्यकालीन नेपाल" मनोहर प्रकाशन नई दिल्ली 1992 पृ0 122
15. सक्सेना शंकर सहाय, "नेपाल अतीत और वर्तमान" नव ग्रन्थ कुटीर बीकानेर 1965 पृ10
16. योगी आदित्यनाथ, "हिन्दू राष्ट्र नेपालः अतीत वर्तमान" प्रकाशक विश्व हिन्दू महासंघ भारत गोरखपुर (उ0प्र0) 2006 पृ0 2

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 174-178

مجاہدِ آزادی : صادق علی

ڈاکٹر محمد شاہد زیدی

اسسٹنٹ پروفیسر اردو

گورنمنٹ پی جی کالج سوائی مادھوپور (راجستھان)

رابطہ:9461103904

راجستھان کا ایک خوبصورت شہر، جسے مشرق کا وینس کہا جاتا ہے، جسے ہم جھیلوں کی نگری کے نام سے بھی جانتے ہیں، اودے پور، جو میواڑ سلطنت کا دارالحکومت رہا ہے۔ اودے پور مکمل طور پر اندر اور باہر خوبصورتی سے بھرا ہوا ہے اور یہ خوبصورتی نہ صرف اس کی تاریخ، ثقافت اور اس کے مقامات بلکہ اس کے لوگوں میں بھی جھلکتی ہے۔ اودے پور کے کچھ ایسے جواہرات ہیں جنھوں نے اپنی محنت اور کامیابی سے نہ صرف شہر بلکہ پورے ملک کا سر فخر سے بلند کیا ہے، لیکن افسوسناک بات یہ ہے کہ وقت کے ساتھ ساتھ ہم شہر کے ایسے لوگوں کے کارناموں کو بھول جاتے ہیں۔ یہ

مضمون اودے پور کی ایسی ہی ایک شخصیت کے فتح کے سفر پر منحصر ہے جو کامیابی کی علامت بن گئی ہے، وہ ہیں صادق علی۔ صادق علی 4 اپریل 1910 کو اودے پور شہر کے ایک مسلم گھرانے میں پیدا ہوئے، آپ کے والد کا نام طاہر علی تھا۔ صادق علی چھوٹے قد کے نرم دل،اچھا بولنے والے، آزادی پسند اور ہندوستانی سیاست کے ماہر سیاسی جنگجو تھے۔

آپ نے ابتدائی تعلیم اودےپور میں ہی حاصل کی۔ آپ نے اپنی اعلیٰ تعلیم الہ آباد یونیورسٹی اور علی گڑھ مسلم یونیورسٹی سے حاصل کی جس کے لیے آپ کو کم عمری میں ہی اپنا گھر چھوڑنا پڑا۔ تعلیم کے دوران ہی وہ جدوجہد آزادی میں شامل ہوئے اور کئی بار جیل جانا پڑا۔اپنی تعلیم کے دوران آپ نے الہ آباد میں نہرو خاندان کو تحریک آزادی کا مورچہ سنبھالتے ہوئے قریب سے دیکھا، تب سے آپ نے قومی تحریک میں کانگریس کے ساتھ اس کی سرگرمیوں میں حصہ لینا شروع کر دیا۔ 1930 کی دہائی میں آپ راجستھان میں نہیں بلکہ اس وقت کے متحدہ صوبہ (یوپی) میں ہندوستان کی آزادی کی جدوجہد میں شامل رہے اور اکثر جیل بھی جانا پڑا ۔ آپ نے غیر ملکی اشیاء اور شراب کے بائیکاٹ کے لیے الہ آباد یونیورسٹی میں دھرنا دیا جس پر برطانوی حکومت نے گرفتار کر کے جیل بھیج دیا۔ 1930ء میں انہیں ایک بار پھر نمک کے قانون کی خلاف ورزی کرنے پر جیل بھیج دیا گیا۔ 1942 میں ہندوستان چھوڑو تحریک کے دوران، وہ سیواگرام آشرم میں گاندھی جی کے ساتھ رہے اور کھادی گرام اودھوگ کے لیے کام کرتے

رہے۔ 1942 میں ہی آپ نے ملک کا خفیہ دورہ کیا جو کہ صوبوں اور تحریک کے رابتہ کاروں کے درمیان ایک اہم رابطہ تھا۔ تحریک کے دوران انہوں نے ستیہ پرکاش، کیکاجی اور آسام میں انیل بابو جیسے مختلف نام بھی اپنائے۔ 1943 میں آپ کو انفرادی ستیہ گرہ کے تحت گرفتار کر کے 2 سال کے لیے جیل بھیج دیا گیا۔ 1947 میں آپ نے ملک کے بنٹوارے کی سخت مخالفت کی اور مسلم لیگ کی "ٹو نیشن تھیوری" پر بھی تنقید کی۔ آزادی کے بعد آپ نے سیاست میں قدم رکھا اور بہت سے قابل ذکر کام کئے۔

آپ 1936 سے 1948 تک آل انڈیا کانگریس کمیٹی کے آفس سیکرٹری اور پھر مستقل سیکرٹری رہے۔ کے۔ایم۔پی۔پی۔اور پرجا سوشلسٹ پارٹی میں شامل ہونے کے ایک مختصر وقت کے سوائے ، 1969 میں کانگریس کی تقسیم تک غیر منقسم کانگریس کے قومی ہیڈ کوارٹر سے وابستہ رہے۔

آپ 1958 سے 1962 اور پھر 1964 سے 1969 تک آل انڈیا کانگریس کمیٹی کے جنرل سکریٹری اور آل انڈیا کانگریس کمیٹی کے "اکنامک ریویو" کے چیف ایڈیٹر بھی رہے۔

آپ 1950 سے 1952 تک عارضی پارلیمنٹ کے رکن منتخب ہوئے۔

آپ 1957 سے 1970 تک راجیہ سبھا کے رکن بھی رہے۔1969 میں، انڈین نیشنل کانگریس دو دھڑوں میں تقسیم ہو گئی، سبرامنیم اندرا گاندھی دھڑے

کے صدر بنے اور نجلنگپا غیر منقسم کانگریس (او) کے صدر رہے۔ نجلنگپا کے بعد، انہوں نے 1971 سے 1973 تک انڈین نیشنل کانگریس (او) کے صدر کے طور پر بھی خدمات انجام دیں۔

1977 میں جنتا پارٹی کی حکومت آنے کے بعد، انہوں نے 3 اپریل 1977 سے 3 نومبر 1980 تک مہاراشٹر کے گورنر اور 4 نومبر 1980 سے 3 ستمبر 1982 تک تمل ناڈو کے گورنر کے طور پر خدمات انجام دیں۔

آپ 16 اپریل 1981 سے 26 جولائی 1981 تک پانڈی چیری کے لیفٹیننٹ گورنر بھی رہے۔

آپ 1992 سے 1996 کے دوران نئی دہلی میں راج گھاٹ سمادھی کمیٹی کے چیئرمین بھی رہے۔

آپ 1985 سے گاندھی میموریل میوزیم کمیٹی، 1990 سے گاندھی نیشنل میموریل فنڈ اور سردار پٹیل میموریل ٹرسٹ اور کونسل آف کمیونل ہارمونی کے چیئرمین رہے۔

آپ نے شانتی دیوی سے 1951 میں شادی کی۔آپ نے سادگی اور دیانتداری کی اقدار کو مجسم کیا جو کی آزادی کے جنگجوؤں کا خاصیت تھی۔ آخر کار انہوں نے سیاست سے کنارہ کشی اختیار کر لی اور اپنی ذاتی زندگی گزارنے لگے۔

صادق علی نے سیاست کے ساتھ ساتھ ادبی دنیا میں بھی اپنی شناخت چھوڑی ہے۔ان کی بہت زیادہ متوقع اشاعتوں میں:

"A Survey Towards Socialist Thinking in the Congress"

"Democracy and National Integration",

"The Vision of Swaraj",

وغیرہ شامل ہیں۔

صادق علی ایک آزادی پسند رہنما ہونے کے ساتھ ساتھ سچے گاندھی وادی نظریہ کے حامل رہنما بھی تھے، انہوں نے آخری وقت دہلی میں رہتے ہوئے 17 اپریل 2010 کو 90 سال کی عمر میں اس دنیا کو الوداع کہا۔

حوالے:

1- http://rajyasabha.nic.in/rs news/pre member/1952 2003/s.pdf.

2- Akashvani's fauxpas"the Tribune India.23 April 2001.

3- https://www.facebook.com/muslim.freedom fighter.of.india.

4- 'S'(pdf).Rajyasabha.nic.Archieved from the original (pdf)on 2010.

رابطہ:9461103904

m.zaidishahid@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 179-184

राजकीय व अराजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व व नैतिकता का तुलनात्मक अध्ययन

कुसुम, शोधकर्त्री
डॉ. रमन सिडाना, शोध निर्देशिका
(एसोसिएट प्रोफेसर), टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर

प्रस्तुत शोधकार्य का मुख्य उद्देश्य राजकीय व अराजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व व नैतिकता का तुलनात्मक अध्ययन करना है। इस शोधकार्य में शोधकर्त्री द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है। विद्यार्थियों की नैतिकता व व्यक्तित्व सम्बन्धी तथ्यों के संकलन हेतु (1) व्यक्तित्व परीक्षण – आइजेस्क (प्रमापीकृत), (2) प्रश्नावली – (अप्रमापीकृत) का प्रयोग किया गया है। निष्कर्ष के रूप में पाया कि राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय की शहरी व ग्रामीण छात्राओं की नैतिकता में सार्थक अन्तर है।

प्रस्तावना :-

मानव विकास हेतु शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया है। शिक्षा ही मानव की मनोवृत्तियों, ज्ञान, अभिरूचि एवं कौशल आदि क्षमताओं का विकास कर मानव को परिस्थितियों के अनुरूप स्वंय को बदलने की शक्ति प्रदान करती है अर्थात् शिक्षा केवल मानव को ज्ञान ही प्रदान नहीं करती है बल्कि उसके व्यवहारों, विचारों, नैतिक गुणों तथा अन्य व्यक्तित्व सम्बनधी कारकों का पूर्णरूपेण विकास करती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा बदलती हुई सामाजिक आकांक्षाओं एवं परिवेश के अनुरूप बालक को ढालने में समर्थ हो जिससे वह विकास के क्रम में अपना योगदान दे सके ताकि भारत में एक ऐसे समाज की स्थापना की जाए जिसमें विभिन्न वर्गों के स्थान पर जनता की प्रधानता हो।

आज के किशोर वर्ग में जिन नैतिक मूल्यों का समावेश होना चाहिए अर्थात् जिन मूल्यों के अभाव में उनके व्यक्तित्व में हिंसा, क्रोध, अनुशासनहीनता, बेइमानी, बड़ों का अपमान, जिम्मेदारियों से अनजान, झूठ, निर्दयता आदि आचरण दिखाई पड़ते हैं, उनके निराकरण हेतु सबसे बड़ा उपकरण शिक्षा है। शिक्षा मानव को एक शिष्ट सभ्य आदमी बनाकर राष्ट्र के निर्माण में एक जिम्मेदारपूर्ण नागरिक तैयार करती है। आज के किशोर ही राष्ट्र की भावी निर्माता है। अतः इन्हें एक अच्छे नागरिक के रूप में तैयार करना शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य है शिक्षा मनुष्य में नैतिक मूल्यों का समावेश कर इनके व्यक्तित्व में निखार लाती है ताकि मनुष्य बिना किसी भेदभाव के सभी से नैतिक आचरण करे तथा सम्पूर्ण राष्ट्र को अपना मानकर उसके विकास में अपना योगदान दे सके।

शोध अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :-

एक अच्छे राष्ट्र का निर्माण एक अच्छे नागरिक पर निर्भर करता है। एक अच्छे नागरिक के व्यक्तित्व तथा

उसके नैतिक आचरण की राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक राष्ट्र अपने सुशिक्षित व सुसंस्कृत नागरिकों के बल पर विकास की ओर अग्रसर होता है। यही किशोर वर्ग कल का सुसंस्कृत नागरिक बन कर राष्ट्र के विकास की दिशा तय करता है। किशोर वर्ग में नैतिक मूल्यों का समावेश होने पर वह अपने अचारण, चरित्र, व्यवहार के माध्यम से विकास के मार्ग की ओर अग्रसर होता है, परन्तु आज के किशोर वर्ग में नैतिक मूल्यों का हनन होता जा रहा है। नैतिक मूल्यों के हनन से आज के किशोर के वर्ग में हिंसा, क्रोध, बड़ों के प्रति सम्मान का अभाव, जिम्मेदारियों से दूर जाना आदि प्रभाव दिखाई पड़ते हैं। यदि हम इनको इन बुराईयों से दूर करना चाहते हैं तो हमें इनके व्यवहार, आचरण में सुधारात्मक दृष्टिकोण अपना कर सम्बन्धित कारणों को जानकर दूर करना होगा अर्थात् किशोर वर्ग इस प्रकार का व्यवहार क्यों करते हैं। इससे सम्बन्धित कारणों को जानकर उनसे सम्बन्धित उपाय खोजने होंगे तथा समस्या का हल खोजना होगा।

कोरोना काल में व्यक्तित्व के विशेष गुण नैतिकता का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। जहाँ व्यक्ति को एक–दूसरे के सहयोग, सेवा व सहायता की आवश्यकता होगी। व्यक्ति में नैतिकता होगी तभी वह स्वच्छ व निस्वार्थ भाव से पीड़ित व्यक्ति की तन–मन–धन से सहायता कर पाता है। कोरोना ने जहाँ व्यक्ति को अपाहिज बना दिया है वहाँ व्यक्ति को एक–दूसरे की सहायता की आवश्यकता होती है और दूसरों की सहायता तभी मिल पाती है जब उसमें नैतिक व अच्छे भाव हैं व सर्वगुण सम्पन्न व्यक्तित्व हो।

समस्या कथन :–

किसी भी शोध हेतु समस्या कथना अपना विशिष्ट स्थान रखता है। समस्या कथन शोध के शीर्षक का उल्लेख ही नहीं करता अपितु शोध के क्षेत्र का भी निर्धारण करता है। प्रस्तुत शोध कार्य निम्नलिखित विषय पर किया गया है –

''राजकीय व अराजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व व नैतिकता का तुलनात्मक अध्ययन''

शोध अध्ययन के उद्देश्य :–

1. राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र व छात्राओं की नैतिकता का अध्ययन करना।
2. राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय की शहरी व ग्रामीण छात्राओं की नैतिकता का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पनाएँ :–

वर्तमान शोध की निम्नलिखित परिकल्पनाएँ हैं –

1. राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र व छात्राओं की नैतिकता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय की शहरी व ग्रामीण छात्राओं की नैतिकता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध विधि :–

इस शोधकार्य में वर्णात्मक सर्वेक्षण विधि के साथ–साथ कारक, विश्लेषण, अनुसंधान आकल्प का भी उपयोग किया गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियाँ :–

आंकड़ों के विश्लेषण हेतु अध्ययन में सांख्यिकी के रूप में मध्यमान, मानक विचलन व टी–परीक्षण का उपयोग किया गया है।

प्रस्तुत न्यादर्श :-

वर्तमान शोध में यादृच्छिक विधि से न्यादर्श का चयन किया गया है। न्यादर्श हेतु राजस्थान के श्रीगंगानगर व हनुमानगढ़ जिले के 400 विद्यार्थियों का चयन किया गया है, जिसमें 200 राजकीय विद्यालय के विद्यार्थी व 200 अराजकीय विद्यालय के विद्यार्थी हैं। जिसमें 100 छात्र राजकीय विद्यालय से व 100 छात्राएँ राजकीय विद्यालय से चयन किया गया है तथा 100 छात्र अराजकीय विद्यालय से व 100 छात्राएँ अराजकीय विद्यालय से चयनित किये गये हैं।

शोध में प्रयुक्त न्यादर्श

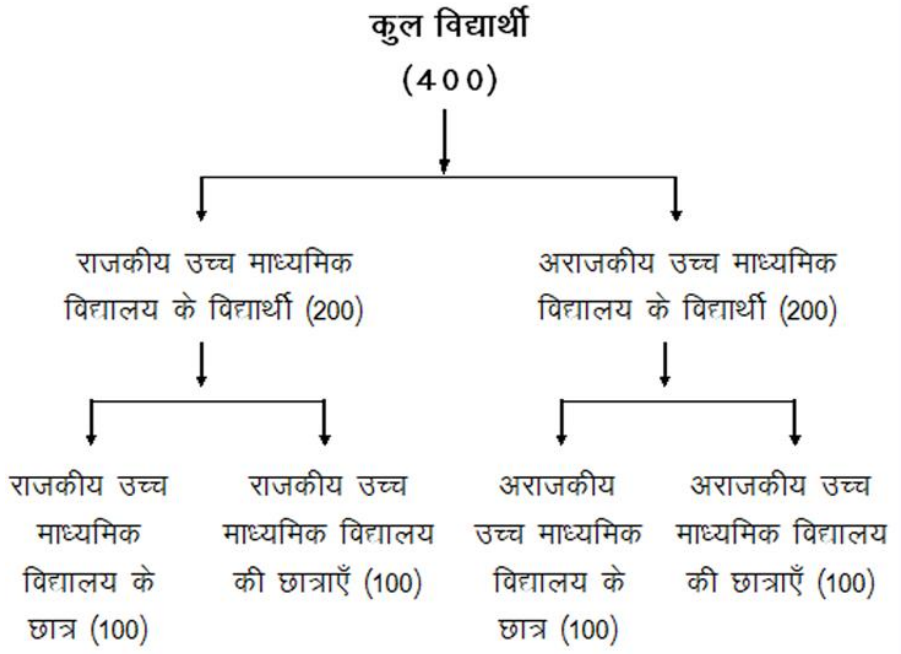

प्रयुक्त उपकरण :-

प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्त्री ने तथ्यों के संकलन हेतु एक प्रमापीकृत उपकरण व एक स्वयं निर्मित उपकरण का प्रयोग किया है, जो इस प्रकार है –

1. व्यक्तित्व परीक्षण – आइजेस्क (प्रमापीकृत)
2. प्रश्नावली – (अप्रमापीकृत)

परिकल्पनाओं का विश्लेषण एवं निष्कर्ष :-

1. राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र व छात्राओं की नैतिकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

Øe l- pj	N	Ekk/;	lkekU; fopyu	Vh&eku;	lkFkZdrk Lrj
1. राजकीय विद्यालय के छात्र	100	37.52	6.579	0.367	
2. राजकीय विद्यालय की छात्राएँ	100	37.86	6.535		

उपर्युक्त सारणी संख्या 4.1 में राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र व छात्राओं की नैतिकता से सम्बन्धित दत्तों को विश्लेषित किया गया है। राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र व छात्राओं की नैतिकता का मध्यमान क्रमशः 37.52 व 37.86 प्राप्त हुए है। इनका मानक विचलन क्रमशः 6.579 व 6.535 प्राप्त हुए तथा इसके आधार पर टी–मान 0.367 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के स्तर 0.01 जिसका सारणी मान 2.59 से कम है तथा सार्थकता के स्तर 0.05 जिसका सारणी मान 1.96 से कम है। अतः इस आधार पर शोधकर्त्री द्वारा निर्मित शून्य परिकल्पना को सार्थकता के दोनों स्तरों पर स्वीकृत किया जाता है तथा परिणाम स्वरूप कहा जा सकता है कि राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र व छात्राओं की नैतिकता में सार्थक अन्तर नहीं है।

राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र व छात्राओं की नैतिकता को दर्शाता हुआ आरेख

आरेख संख्या 4.1

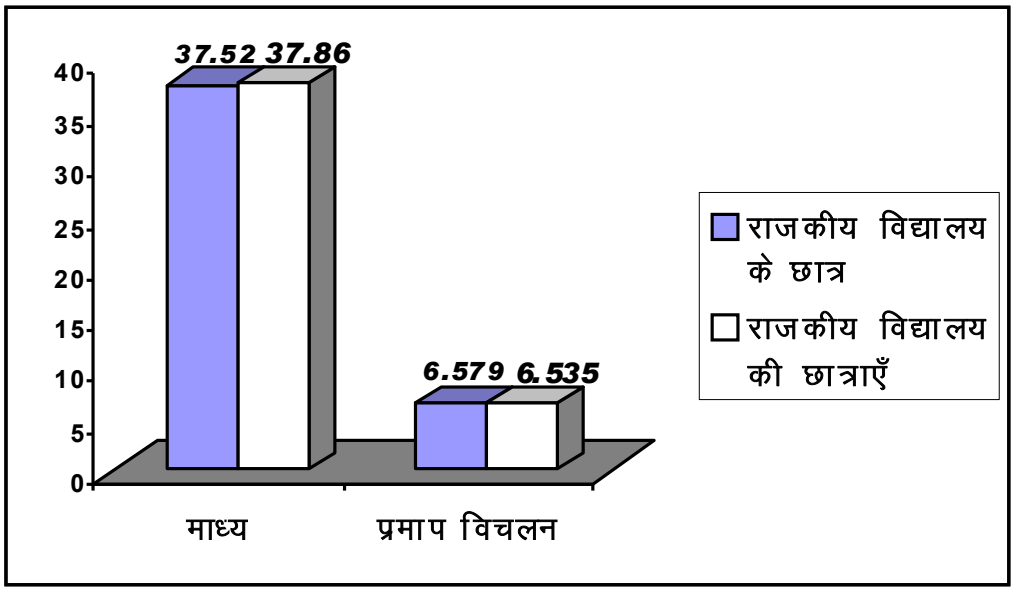

2. राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय की शहरी व ग्रामीण छात्राओं की नैतिकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

क्रम सं.	चर	N	माध्य	प्रमाप विचलन	टी–मूल्य	सार्थकता स्तर
1.	राजकीय विद्यालय की शहरी छात्राएँ	50	39.54	4.343	2.648	
2.	राजकीय विद्यालय की ग्रामीण छात्राएँ	50	36.18	7.852		

उपर्युक्त सारणी संख्या 4.2 में राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय की शहरी व ग्रामीण छात्राओं की नैतिकता से सम्बन्धित दत्तों को विश्लेषित किया गया है। राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय की शहरी व ग्रामीण छात्राओं की नैतिकता का मध्यमान क्रमशः 39.54 व 36.18 प्राप्त हुए है। इनका मानक विचलन क्रमशः 4.343 व 7.852 प्राप्त हुए तथा इसके आधार पर टी–मान 2.648 प्राप्त हुआ जो कि सार्थकता के स्तर 0.01 जिसका सारणी मान 2.59 से अधिक है तथा सार्थकता के स्तर 0.05 जिसका सारणी मान 1.96 से अधिक है। अतः इस आधार पर शोधकर्त्री द्वारा निर्मित शून्य परिकल्पना को सार्थकता के दोनों स्तरों पर अस्वीकृत किया जाता है तथा परिणाम स्वरूप कहा जा सकता है कि राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय की शहरी व ग्रामीण छात्राओं की नैतिकता में

सार्थक अन्तर है।

राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय की शहरी व ग्रामीण छात्राओं की नैतिकता को दर्शाता हुआ आरेख

आरेख संख्या 4.2

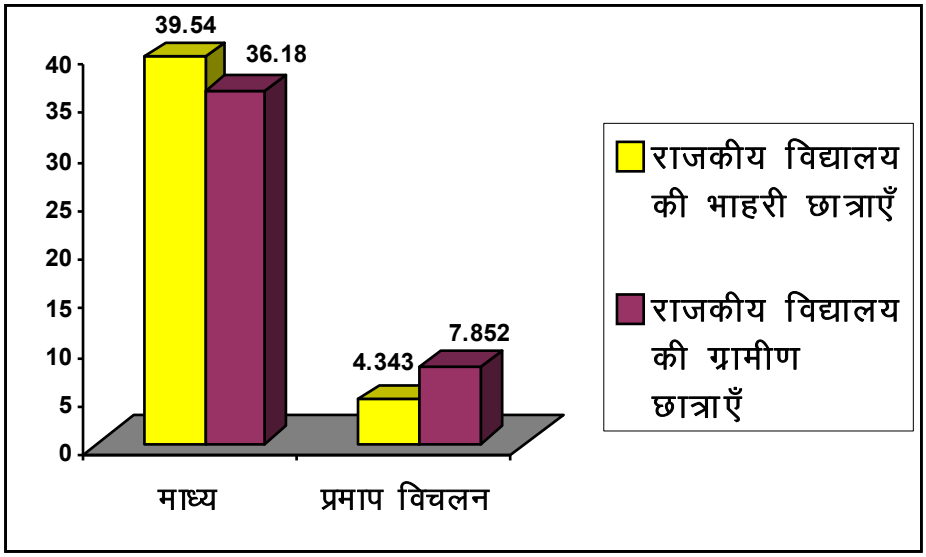

शोध अध्ययन के निष्कर्ष :-

1. राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र व छात्राओं की नैतिकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

निष्कर्ष :-

सारणी में विश्लेषित दत्तों के विश्लेषण के आधार पर पाया गया कि परिकल्पना संख्या–1 को सार्थकता के दोनों स्तरों पर स्वीकृत किया जाता है तथा परिणाम स्वरूप कहा जा सकता है कि राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के छात्र व छात्राओं की नैतिकता में सार्थक अन्तर नहीं है।

2. राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय की शहरी व ग्रामीण छात्राओं की नैतिकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

निष्कर्ष :-

सारणी में विश्लेषित दत्तों के विश्लेषण के आधार पर पाया गया कि परिकल्पना संख्या–2 को शोधकर्त्री द्वारा निर्मित शून्य परिकल्पना को सार्थकता के दोनों स्तरों पर अस्वीकृत किया जाता है तथा परिणाम स्वरूप कहा जा सकता है कि राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय की शहरी व ग्रामीण छात्राओं की नैतिकता में सार्थक अन्तर है।

भावी शोध हेतु सुझाव :-

1. प्रस्तुत शोध को संभाग स्तर पर भी किया जा सकता है।
2. प्रस्तुत शोधकार्य श्रीगंगानगर जिले तक ही सीमित रखा गया है। इसे राजस्थान राज्य के दूसरे जिलों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करके भी देखा जा सकता है।
3. प्रस्तुत शोध कार्य सम्पूर्ण राजस्थान पर किया जा सकता है।
4. यह शोधकार्य केवल किशोर वर्ग तक ही सीमित है, जबकि इसमें युवावर्ग, बालवर्ग को सम्मिलित किया जा सकता है।

सारांश :-

इस अध्ययन में शोधकर्त्री द्वारा शोध कार्य के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए अल्पसंख्यक व बहुसंख्यक वर्ग के किशोरों के व्यक्तित्व व नैतिकता का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है जिससे यह आने वाले समय में भावी शोधकर्ताओं के द्वारा किया जा सके तथा शोध कार्य को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों पर भी अध्ययन किया जा सके। इस हेतु भावी अनुसंधान क लिए सुझाव दिए गए हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. भटनागर, डॉ. आर.पी., भटनागर, डॉ. मीनाक्षी (2007) ''शिक्षा अनुसंधान'' लायल बुक डिपो, मेरठ।
2. अस्थाना, विपिन (1999) ''मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन'' विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
3. गुप्ता, आर.सी. भट्ट (1981) ''शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन'' लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशन, आगरा।
4. भटनागर, आर.पी. (1992) ''मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन'' आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
5. मेहता, डी.डी. (2005) ''शैक्षिक मनोविज्ञान अधिगम तथा विकास का मनोविज्ञान'' टण्डन पब्लिकेशन्स, लुधियाना।
6. शर्मा, आर.ए. (2007) ''शिक्षा तकनीकी'' उर्वशी ऑफसैट प्रिन्टर्स, मेरठ।
7. भटनागर, डॉ. पी.आर. (2008) ''शिक्षा अनुसंधान'' विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 185-188

समकालीन हिंदी कथाकारों का साहित्यिक योगदान

बी. नरसम्मा
पीएच.डी. हिंदी, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना।

किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके शारीरिक और मानसिक गुणों का परिचायक माना जाता है। व्यक्तित्व में चरित्र, मनोवृत्ति, बुद्धि, शरीर आदि का अध्ययन किया जाता है। व्यक्ति शरीर और मन का संगठन है। इसलिए व्यक्ति के सामाजिक, शारीरिक, मानसिक, नैतिक, भावनिक गुणों के दर्शन प्राप्त होते हैं। वास्तव में व्यक्तित्व एक ईकाई होती है। व्यक्ति के विशेष गुण में जीवन यापन रहन–सहन, लिखने की पद्धति आती है। व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक प्रवृत्तियों के समुच्चय को व्यक्तित्व कहा जाता है, जो व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों से अलग करता है। साहित्यकार के व्यक्तित्व का प्रभाव पाठक वर्ग पर पड़ता है। रचनाओं के अध्ययन से व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त होता है। विशेष रूप से रचना के द्वारा साहित्यकार के स्वभाव तथा उनकी रचनाधर्मिता के लक्ष्य को समझा जा सकता है।

मोहनदास नैमिशराय :–

भारतीय दलित साहित्य में वरिष्ठ साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय का मूर्धन्य स्थान है। यह एक बहुआयामी और संघर्षशील व्यक्तित्व है, जिन्होंने व्यवस्था द्वारा दिए गए हादसों को सहकर संघर्ष करना सीखा और समाज को संघर्ष करने लिए प्रेरित किया है। इनके पास अनुभूति की गहरी सच्चाई है। इनका व्यक्तित्व संघर्षशील है। मोहनदास नैमिशराय ने सामाजिक परिवर्तन के लिए साहित्य का मार्ग अपनाया है। सभी विधाओं में कलम चलाकर हिंदी दलित साहित्य को सशक्त बनाया। साहित्यिक रूचि के प्रति लिखते है– "दस बरस की उम्र में मुझे उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता पढ़ने की लत लगी।"[1] साहित्य में रूचि होने के कारण कम उम्र में ही साहित्य लिखने लगे। लेखक 1968 में घर से भागकर मुंबई चले गए। सोलह वर्ष की आयु में फुटपाथ पर पड़े व्यक्ति को देखकर अंग्रेजी में पहली कविता लिखी थी। स्कूल की स्मारिका और मेरठ से प्रकाशित होनेवाली 'भिम सैनिक' पत्रिका में लेखन किया था और साहित्य का सृजन करने लगे थे।

रूपनारायन सोनकर :–

रूपनारायन सोनकर एक चेतनाशील रचनाकार है। रचनाकार का व्यक्तित्व उसके साहित्य में दर्शित होता है। साहित्यकार की सृजनात्मकता उसकी शिक्षा, स्वभाव, आचार–विचार, परिवेश संस्कार से प्रभावित होता है। जीवन में घटित विभिन्न घटनाओं से विचारधारा परिपक्व बनती है। रूपनारायण सोनकर प्रतिभासंपन्न साहित्यकार है। जाति व्यवस्था की अमानवीय बर्बरता ने उन्हें कदम–कदम पर अपमानित किया है। एक बार मंदिर में रामायण पाठ पढ़ने के दौरान उन्हें दलित होने के कारण अपमानित किया गया। उन्होंने लिखा इस बारे में लिखा है– "मैं

रामचरितमानस ले एक खाली पड़ी जगह पर बैठकर जोर–जोर से पाठ करने लगा। करीब आधा घंटे बाद शिवभजन अवस्थी वहाँ आया। मुझे रामायण का पाठ करते देखकर आग–बबूला हो गया। मुझे गाली देते हुए बोला "साले! हम लोगों के बीच बैठकर कैसे रामायण की चौपाई पढ़ रहा है। इस साले अछूत को किसने चौपाई पढ़ने को कहा।"[2] सोनकर जी ने इस कटु अनुभव को आत्मकथा में विस्तार से दर्शाया है। रूपनारायण जी का जन्म एक गरीब दलित परिवार में हुआ। लेखक के जीवन पर डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का संघर्ष और विचारधारा का प्रभाव है। उनका कहना है– "डॉ. आंबेडकर अकेले थे। उन्होंने अकेले ही सारे देश से गैर–बराबरी के खिलाफ संघर्ष किया था। उनके तेज के सामने गांधी, जवाहर की चमक धीमी पड़ गई थी। इन लोगों ने भी मानवता के प्रति किए गए डॉ. आंबडेकर के कार्यों को सही माना था। पीड़ित बहुसंख्यक मानवता के प्रति हमदर्दी रखने वाले विश्व के एकमात्र जननायक आंबेडकर ही थे। यदि वे संघर्ष से डर जाते तो दलित जिस स्थिति में आज है वे कभी नहीं होते। डॉ. आंबेडकर ये विचार मुझे बार–बार कचोट रहे थे। मुझे संघर्ष करने के लिए प्रेरित कर रहे थे। मैंने नौजवानों की टोली बना ली थी।"[3]

सोनकरी जी ने डॉ. आंबेडकर के विचारधारा को जानकर संघर्ष करना सीख लिया था। वे लिखते है– "मैं आंबेडकर को प्रथम, लोहिया को द्वितीय और गांधी को तृतीय स्थान दूंगा। आंबेडकर ने दबे–कुचले और और समाज से बहिष्कृत लोगों की आवाज उठाई थी। सवर्णों के सामने ऐसी आवाज उठाना अपनी जान गंवाने के बराबर था। सामाजिक कुरीतियाँ, विसंगतियाँ, छुआछूत को समाज से उखाड़ फेंकने के लिए जोरदार संघर्ष किया था। शायद यह विश्व के पहले जन नेता थे। जिन्होंने सवर्णों के अत्याचारों से कराह रहे दलितों को मुक्ति दिलाने का द्वार खोला।"4 डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर उनके प्रेरणास्रोत है। सोनकर जी का साहित्य सामाजिक समानता स्थापित करने के लिए प्रतिबद्ध है। लेखक के जीवन का उद्देश्य दलित उत्थान है। सोनकर जी का व्यक्तित्व प्रगतिशील और प्रतिभाशाली है। वे समाज में व्याप्त कुरीतियों, रुढ़ियों, पाखंड, अंधविश्वास का निरंतर विरोध किया है।

सुशीला टाकभौरे :–

लेखक का जिस सामाजिक परिवेश और परिस्थितियों में जन्म होता है, उसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व और कृतित्व पर पड़ता है। वरिष्ठ लेखिका सुशीला टाकभौरे के साहित्य में वर्ण–जाति व्यवस्था के प्रति विद्रोह व्यक्त हुआ है। सुशीला जी अपने जीवनानुभव को अभिव्यक्त कर स्वतंत्रता, समानता, न्याय, बंधुता और सामाजिक समता पर आधारित विचारों को अभिव्यक्त किया है। सुशीला जी का हिंदी दलित साहित्य में मूर्धन्य स्थान है। वह रचनाकार के साथ सामाजिक कार्य भी सक्रिय है। सुशीला टाकभौरे ने सभी विधाओं पर कलम चलाई हैं– कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा, आलोचना आदि। दलित समाज का यथार्थ, दलित स्त्री की व्यथा, दलित समस्याएँ, दलित वर्ग में ऊभरती नई चेतना तथा मानवीय मूल्यों का चित्रण है।

डॉ. मिमल कीर्ति ने सुशीला जी के व्यक्तित्व व कृतित्व पर टिप्पणी करते हुए लिखा है– "साहित्यकार होना कोई बड़ी बात नहीं है लेकिन क्रांतिकारी, परिवर्तनवादी, विद्रोही साहित्यकार होना, अपने युग से लोहा लेना, अपनी रचनाओं से, अपनी कृतियों से, अपनी वाणी से जनमानस को झकझोरना बड़ी बात है। जो समय के दबाव से बदलते है वह क्या बदलना है? बदलना तो वह है जो अपनी चेतना से बदलते हैं। 'हमारे हिस्से का सूरज' काव्य संग्रह की रचनाएँ इसी दिशा की ओर संकेत करती है। फुले–अम्बेडकरवादी दलित साहित्य ने मराठी में

साहित्य, समाज, संस्कृति तथा जीवन के हर क्षेत्र में क्रांति के बीज बोये हैं जो अब सिर्फ मराठी के लिए ही नहीं बल्कि सारे आधुनिक भारतीय साहित्य के लिए बोधिवृक्ष बन गये है।

डॉ. सुशीला टाकभौरे हिन्दी दलित साहित्य के लिए जानी मानी कवयित्री है। उनमें इस तरह का साहस निश्चित तौर पर एक परिवर्तन का, क्रांति का, सामाजिक बदलाव का संकेत हैं। समाज को उनसे अनेक अपेक्षाएँ हैं।"[5] सुशीला टाकभौरे ने साहित्यिक एवं सामाजिक कार्य के जरिये दलित वर्ग को यह संदेश दिया कि डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का मार्ग ही मुक्ति का मार्ग है। इसी मार्ग पर को अपनाने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए प्रेरणा मिलेगी। दलित उन्नति का मूलमंत्र है।

जयप्रकाश कर्दम :-

भारतीय दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षरों में जयप्रकाश कर्दम जी का नाम उल्लेखनीय है। दलित साहित्य की पहली पीढ़ी के साहित्यकारों में जयप्रकाश कर्दम का नाम है। उन्होंने कहानी, कविता, उपन्यास, आलोचनात्मक ग्रंथों की रचना की। जयप्रकाश कर्दम का साहित्य दलित युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणादायी है। जयप्रकाश कर्दम का समग्र साहित्य दलित जीवन के संघर्ष को दर्शाता है। प्रतिभा और परिश्रम उनके व्यक्तित्व को उजाला प्रदान करता है। दलित साहित्य के प्रमुख हस्तक्षरों में कर्दम जी नाम सम्माननीय है। दलित साहित्य को स्थापित करने वाले रचनाकारों में कर्दम जी का मूर्धन्य स्थान है। वे दलित साहित्य के समर्थ हस्ताक्षर रूप में चर्चित है। उन्होंने जाति की त्रासदी और पीड़ा को सहा है। इस अमानवीय व्यवस्था को अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया है। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व तथा कृतित्व, शिक्षा–दीक्षा, सामाजिक परिवेश और परिस्थिति से बनता है। कर्दम जी ने अपने साहित्य में दलित वर्ग की पीड़ा और व्यथा–कथा को समाज के सम्मुख रखा है। इस अमानवीय व्यवस्था के प्रति जो आग उनके दिल में लगी थी, वही आग उनके साहित्य में व्यक्त हुई है। इनके समग्र साहित्य में जाति व्यवस्था के प्रति आक्रोश और स्वाभिमान का बोध है। इनके साहित्य और सामाजिक कार्य का उद्देश्य समताधारित समाज की स्थापना है।

रमणिका गुप्ता :-

रमणिका गुप्ता दलित साहित्य की सशक्त हस्ताक्षर है। रमणिका समकालीन लेखिका, बहुभाषिक, कुशल नृत्यांगन, संगीतप्रेमी और नाटकप्रेमी है। वह पत्रकार भी रही है। वह स्वातंत्र्यपूर्व काल से लेकर जीवन के अंतिम क्षणों तक सृजन कार्य किया। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व सामाजिक परिवेश, वातावरण, शिक्षा–दीक्षा, संस्कारों से विकसित होता है। इसलिए व्यक्तित्व और कृतित्व को जानने के लिए उस व्यक्ति के जीवनवृत्त को जानना अत्यंत आवश्यक होता है। रमणिका जी साहित्यकार, पत्रकार के साथ एक राजनीतिज्ञ रही है। विधान परिषद की सदस्य भी रही है। बिहार कांग्रेस कमेटी और जिला बीस सुत्रीय कार्यक्रम की सदस्या थी। विधान परिषद की सदस्या बनने से पहले गैर कानूनी खदानों के विरोध में संघर्ष शुरू किया। वह शोषण के खिलाफ लड़ती रही थी। "इन लोगों ने देश को तो बांट दिया है, अब मनजी को भी बांटने पर तुले हैं। भला उन्हें कौन बताए कि मनु ने ही तो स्वयं भारतवासियों को फाँक–फाँक कर रख दिया है।

और आगे कहती है कि माताजी को भ्रष्ट नेताओं में केवल वामपंथी ही नजर आए। कतार ही कतार भ्रष्ट नेताओं की खड़ी है। भारत में नरसिंहराव के नेतृत्व मेमं वह उन्हें नहीं दिखी। अखबार शायद वे पढ़ती नहीं है तो उन्हें जरूर यह खबर होती कि पूरे देश में कम्युनिस्ट पार्टियाँ ही बची हैं जिनके नेता तथा कार्यकर्ता

भ्रष्टाचारियों की सूची में शामिल नहीं हुए।"[6] रमणिका गुप्ता आदिवासी समाज को न्याय देने आजीवन संघर्ष किया। रमणिका जी ने अमेरिका, कनाडा, बैंकॉक, मैक्सिको, बर्लिन, रूस, फ्राँस, युगोस्लाव्हिया, इटली, स्वीड़न, फिलीपाईंस, क्यूबा, कनाडा, जापान, हाँगकाँग, इंग्लैंड, नार्वे, स्विटजर्लैंड आदि कई देशों में जा सकी।

संदर्भ :-

1. मोहनदास नैमिशराय – अपने–अपने पिंजरे, पृ. सं. 148
2. रूपनारायण सोनकर – नागफणी, पृ. सं. 35
3. रूपनारायण सोनकर – नागफणी, पृ. सं. 57
4. रूपनारायण सोनकर – नागफणी, पृ. सं. 99
5. डॉ. सुशीला टाकभौरे – हमारे हिस्से का सूरज, पृ. सं. पृष्ठ कवर से
6. डॉ. सरोज पगारे – हिंदी दलित साहित्य आंदोलन, पृ. सं. 27

मो.नं. 9640510295

ईमेल – dvasantha367@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 189-192

धर्म निरपेक্ষতা

সংশ্লিষ্ট লেখক: সুপ্রীতি রায়

M.A., রাষ্ট্রবিজ্ঞান বিভাগ, উত্তরবঙ্গ বিশ্ববিদ্যালয়, পশ্চিমবঙ্গ, ভারত

সংক্ষিপ্তসারঃ

ধর্মনিরপেক্ষতা কথাটির অর্থ হল বিভিন্ন জাতি ও বিভিন্ন ধর্মাম্বলী জাতির মধ্যে সমভাবাপন্ন বিচার-বিচক্ষণতা যা রাষ্ট্রের দ্বারা রক্ষিত হয়। রাষ্ট্রের কাছে প্রত্যেকটি ধর্মই সমান, কোন একটি ধর্মকে বিশেষ মর্যাদা দেওয়া নয়। ধর্ম হলো মানুষের সম্পূর্ণ অন্তরের বিষয় যেখানে শুধু বিশ্বাস আর নিজস্ব বিবেকের কাজ করে। ধর্মনিরপেক্ষ মানে মানুষের সঙ্গে মানুষের শান্তিপূর্ণ সু-সম্পর্ক টিকে থাকা এবং প্রত্যেকটি ধর্মের প্রতি আনুগত্য ও শ্রদ্ধা জ্ঞাপন করা। আমরা ভারতবাসী কিন্তু তবুও আমরা বেশিরভাগ পশ্চিমী দুনিয়ার সঙ্গে তুলনা করে চলে থাকি। কারণ আমাদের ধারণা পশ্চিমী দুনিয়ার ব্যবস্থা ও চিন্তাধারা অন্যান্য দেশের থেকে অনেক বেশি উন্নত। তাই আমরা আলোচনা করবো যে, এই ধর্মনিরপেক্ষ শব্দটিকে পশ্চিমী জগতে কেমন অর্থে ব্যবহার করা হয়েছিল।

প্রাচীন যুগের রাজারাও নানা ধর্মের ছিলেন। আবার কোন কোন রাজা স্ব-ধর্ম ত্যাগ করে অন্য ধর্ম গ্রহণ করেন। এখানে নানা ধর্ম-বর্ণ-জাতি অর্থাৎ হিন্দু, মুসলিম, বৌদ্ধ, জৈন, জরথুস্ত্র মতাবলম্বী, পারসিক, খ্রিস্টান ইত্যাদি বিভিন্ন ধর্মাবলম্বী মানুষ বসবাস করে। ধর্মনিরপেক্ষ রাষ্ট্র হল এমন একটা রাষ্ট্র যা প্রত্যেকটি ধর্ম বা বর্ণের জাতিকে সমানভাবে দেখা এবং স্বাধীনভাবে চলতে সাহায্য করা। ব্যাপক অর্থে ধর্মনিরপেক্ষ এর অর্থ দাঁড়াই রাষ্ট্রের নিজস্ব কোন ধর্ম থাকবে না, রাষ্ট্র ধর্মের নামে কোন বৈষম্যমূলক আচরণ করবে না এবং রাষ্ট্র কোন ধর্মকে বিশেষ সুযোগ সুবিধা দেবে না বা সংখ্যাগরিষ্ঠদের কোন সুযোগ দেওয়ারও চেষ্টা করবে না। ভারতের মূল সংবিধানের কোথাও এই ধর্মনিরপেক্ষতা শব্দটি ব্যবহার করা হয়নি। ভারতবর্ষে প্রথম ১৯৭৬ সালে ৪২ তম সংবিধান সংশোধনী আইনে সংবিধানের প্রস্তাবনায় 'ধর্মনিরপেক্ষ' শব্দটি যুক্ত করা হয়েছে। ধর্মনিরপেক্ষ শব্দটি যুক্ত করে রাষ্ট্রের ধর্মনিরপেক্ষতার যে আদর্শ সেটা সুস্পষ্টভাবে প্রকাশ করেছে। ভারত বর্ষ একটি উন্নয়নশীল দেশ, যা প্রাচীন যুগ থেকেই ভারতীয় দর্শন, অঙ্কশাস্ত্র, ন্যায়শাস্ত্র বিশ্বে খ্যাতি লাভ করেছে। যেমন প্রাচীন যুগ থেকেই নানা ধর্ম সহিষ্ণু তেমন সর্ব ধর্মের প্রতী সমভাবাপন্ন। তা বোঝা যায় এই শিক্ষা ব্যবস্থার দিকে লক্ষ্য করলেই কারণ শিক্ষা ব্যবস্থার ক্ষেত্রে দেখা গেছে যে, হিন্দুদের জন্য যেমন ছিল পাঠশালা ও মন্ডব, চতুষ্পাঠী তেমনি মুসলমানদের জন্য ছিল মাদ্রাসা। আবার খ্রীস্টানদের জন্য ছিল মিশনারি ব্যবস্থা। এতেই বোঝা যায় যে পূর্ব থেকেই মানুষ ভারতবর্ষে ধর্মের দিক থেকে নিরপেক্ষ ছিল।

মূল শব্দঃ

ধর্মনিরপেক্ষতা, ধর্ম, রাষ্ট্র, পোপ, চার্চ, রাজা, ভারতবর্ষ, হিন্দু, ইসলাম, ব্রিটিশ, ধর্মাম্বলী, সংবিধান, পাকিস্তান, সংখ্যালঘু, মানুষ, রাজনৈতিক, জাতি।

সূচনাঃ

ধর্মনিরপেক্ষতা কথাটির অর্থ হল বিভিন্ন জাতির ও বিভিন্ন ধর্মাম্বলী জাতির মধ্যে সমভাবাপন্ন বিচার-বিচক্ষণতা যা রাষ্ট্রের দ্বারা রক্ষিত হয়। রাষ্ট্রের কাছে প্রত্যেকটি ধর্মই সমান। কোন একটি ধর্মকে বিশেষ মর্যাদা দেওয়া নয়। ধর্ম হলো মানুষের সম্পূর্ণ অন্তরের বিষয় যেখানে শুধু বিশ্বাস আর নিজস্ব বিবেকের কাজ করে। আর এই ধর্মকে ঘিরেই মানুষের মধ্যে যত হিংসা, মারামারি, হানাহানি, খুন-যখম ইত্যাদি। প্রায় প্রত্যেকটি দেশেই একের অধিক ধর্মের মানুষ বর্তমান। আর সেই জন্যই কিছু কিছু দেশ চেষ্টা করছে সংবিধানে তাদের নিজেদেরকে সেক্যুলার স্টেট (Secular State) বলে গ্রহণ করতে। কারন মানুষ শান্তিপ্রিয়, তাই শান্তিতে বসবাস করার জন্য তৎপর হয়ে এই পদ্ধতি অবলম্বন করে চলেছে। আমরা যদি লক্ষ্য করি প্রত্যেকটি ধর্মের গ্রন্থ গুলির দিকে তাহলে দেখব প্রত্যেকটি ধর্মে শান্তি-শৃঙ্খলার কথাই বলা হয়েছে। কোন ধর্মেই হিংসা বা হানাহানির কথা বলা নেই। তবুও এই ধর্মকে ঘিরেই মানুষে - মানুষে মারপিট ও দ্বন্দ্ব লেগেই আছে। আর এই সবের নজির আমরা প্রায় প্রত্যেকটি দেশেই লক্ষ্য করেছি। তাই ধর্মনিরপেক্ষ রাষ্ট্র করার উদ্দেশ্য হলো দেশকে এই অশান্তি থেকে মুক্ত করার প্রচেষ্টা। কারণ ধর্মনিরপেক্ষ কথাটির অর্থ হল যে, সকল ধর্মের প্রতি নিরপেক্ষ থাকা, কোনো বিশেষ ধর্মকে রাষ্ট্রীয় ধর্মের জায়গা বা মর্যাদা দেওয়া নয়। ধর্মনিরপেক্ষ কথাটির অর্থ এই নয় যে, ধর্ম থেকে মানুষকে পৃথক রাখা। ধর্মকে মানুষের সাধারণ জীবনের বিভিন্ন গুরুত্বপূর্ণ ক্ষেত্র যেমন রাজনৈতিক, অর্থনৈতিক এবং কিছু কিছু সামাজিক দিক থেকে পৃথক রাখা। মূল বিষয় হল রাষ্ট্র থেকে যে কোন ধর্মকে পৃথক রাখা। ধর্ম কখনোই মানুষের রাজনৈতিক বা সামাজিক, অর্থনৈতিক কাজে প্রভাব ফেলবে না। ধর্মনিরপেক্ষ মানে অনেকে মনে করেন যে, ধর্মের সঙ্গে মানুষের কোন সম্পর্ক থাকবে না কিন্তু এক কথায় আমরা বলতে পারি ধর্মনিরপেক্ষ মানে মানুষের সঙ্গে মানুষের শান্তিপূর্ণ সু-সম্পর্ক টিকে থাকা এবং প্রত্যেকটি ধর্মের প্রতি আনুগত্য ও শ্রদ্ধা জ্ঞাপন করা।

পশ্চিমী দুনিয়ার সঙ্গে ভারতীয় ধারণাঃ

আমরা ভারতবাসী কিন্তু তবুও আমরা বেশিরভাগ পশ্চিমী দুনিয়ার সঙ্গে তুলনা করে চলে থাকি। কারণ আমাদের ধারণা পশ্চিমী দুনিয়ার ব্যবস্থা ও চিন্তাধারা অন্যান্য দেশের থেকে অনেক বেশি উন্নত। তাই আমরা আলোচনা করবো যে, **[ক]**"এই ধর্মনিরপেক্ষ শব্দটিকে পশ্চিমী জগতে কেমন অর্থে ব্যবহার করা হয়েছিল। আমরা যে ইতিহাস পরেছি সেখানে দেখা গিয়েছে যে পোপ বা চার্চ ও রাজার মধ্যে এই ধর্মকে কেন্দ্র করে সুদীর্ঘকাল ধরে দ্বন্দ্ব-বিবাদ লেগেই ছিল, সেটা প্রকৃত প্রশাসনিক অধিকারকে কেন্দ্র করে। অবশেষে দেখা যায় ইউরোপে অষ্টাদশ শতাব্দীতে এক আমূল পরিবর্তনের মধ্যে দিয়ে রাজা বা রাষ্ট্র সর্বময় কর্তৃত্ব লাভ করে, সেটা ধর্ম ছাড়া অন্যান্য সব দিক। কারণ সেখানে অষ্টাদশ শতাব্দীর পূর্বে যেটা পরিলক্ষিত হয় সেটা হল পোপ বা চার্চ রাজাকে নির্দেশ দিতেন প্রজা পালনের জন্য যেখানে রাজার নিজস্ব কোন চিন্তা ভাবনা ছিল না। কিন্তু এই শতাব্দীর পর থেকে ধর্ম ও রাষ্ট্র সম্পূর্ণ আলাদা সিদ্ধান্ত গ্রহণ করে। আবার ধর্মনিরপেক্ষতা সম্পর্কিত পশ্চিমী ধারণা হলো সংকীর্ণ। এখানে ধর্মনিরপেক্ষ হলো পশ্চিমী ধারণা অনুযায়ী "absence of connection with religion"। তারমানে বোঝাই যে ধর্মনিরপেক্ষতার অর্থ হলো সাধারণ জীবনের বিভিন্ন গুরুত্বপূর্ণ ক্ষেত্রকে ধর্ম থেকে আলাদা করে রাখা। আবার Leo Pfeffer বলেছেন "ধর্মনিরপেক্ষতার মূলকথা হলো রাষ্ট্র থেকে গির্জাকে পৃথক রাখা। পশ্চিমী চিন্তা ভাবনাতে যতই ধর্মনিরপেক্ষতা শব্দটিকে সংকীর্ণ অর্থে ব্যবহৃত করা বা দেখানোর চেষ্টা করে থাকুক না কেন, সেই সংকীর্ণ অর্থে ধর্মনিরপেক্ষতার আদর্শটি গৃহীত হয়নি বললেই চলে।"

ভারতবর্ষ অতি প্রাচীন একটি দেশ এবং এই দেশের আকৃতিও বিশাল, তাই ভারতবর্ষের প্রাচীন যুগ থেকেই নানা জাতি ও উপজাতির উপস্থিতি লক্ষ্য করা গেছে। তাই সেখানে নানা ধর্মাম্বলীর উপস্থিতি স্বাভাবিক ব্যাপার। প্রাচীন যুগের রাজারাও নানা ধর্মের ছিলেন। এই সব রাজাদের মধ্যে যেমন সিংহাসন নিয়ে দ্বন্দ্ব ছিল তেমন কিছু কিছু রাজা ধর্মকে নিয়ে অনেক সমস্যার সৃষ্টি করেছিলেন। আবার কোন কোন রাজা স্ব-ধর্ম ত্যাক করে অন্য ধর্ম গ্রহণ করেন। যেমন দেখা যায় খসরু খান শৈশবে তিনি আলাউদ্দিন খিলজী দ্বারা দাসত্ব বরণ ও ইসলামে ধর্মান্তরিত হতে বাধ্য হয়েছিলেন। কিন্তু খিলজী রাজবংশকে উৎখাত করে সুলতানি শাসন ব্যবস্থা আসার পরে তিনি পুনরায় হিন্দু ধর্মে ফিরে আসেন। মারাঠা সাম্রাজ্যের আভিজাত্য এবং শিবাজীর সেনাবাহিনীর সর্বাধিনায়ক নেতাজি পালকার তিনি প্রথমে ইসলাম ধর্ম গ্রহণ করেছিলেন, কিন্তু তিনি পরবর্তীকালে সেই ইসলাম ধর্ম ত্যাগ করেন এবং হিন্দু ধর্মে ফিরে আসেন। আবার রাজনীতিবিদ চন্দ্রমোহন বিয়ের জন্য ইসলাম গ্রহণ করেছিলেন এবং বিবাহবিচ্ছেদের পরে হিন্দু ধর্মে ফিরে আসেন। আমরা হরিলাল মোহনদাস গান্ধী মহাত্মা গান্ধীর পুত্রের কথা শুনে থাকি যে, তিনি ইসলাম ধর্ম গ্রহণ করেছিলেন কিন্তু পরে আবার হিন্দুধর্মের ফিরে আসেন। এমন অনেক নজির ই আমরা দেখে থাকি যে, মানুষ ব্রিটিশ শাসন ব্যবস্থার আগে থেকেই এই ধর্মকে কেন্দ্র করে নানা বিবাদ-বিদ্বেষে জড়িত ছিল। কিন্তু তারপরও আমরা একটা বিবাদ বা বিদ্বেষের কথা আজও ভুলি না বা পরবর্তী প্রজন্মও ভুলবে না যেটা হলো ব্রিটিশদের চক্রান্তে ভারতবর্ষ বিভাগের ঘটনা। যে ঘটনা আমাদের এবং বাংলাদেশ ও পাকিস্তানকে এখনো বেদনা দেয়। এই দেশ বিভাজনের আগে অনেক বণিক যেমন শক, হুন, পর্তুগাল বা পর্তুগীজ, ইহুদী জাতি আমাদের ভারতবর্ষে এসে বহুবার লুট করে নিয়ে যায়। কিন্তু তারপরও আমরা এত ব্যাথিত নই, যতটা আমরা দেশ বিভাজন এর পর ব্যাথিত। ইস্ট ইন্ডিয়া কোম্পানি প্রথমে অন্যান্য জাতিগুলির মত বাণিজ্যই করতে এসেছিল। কিন্তু তারা প্রায় দু'শো বছর এই দেশের জনগণের ওপর নির্মম শোষণ ও শাসন করে। কিন্তু **[খ]** "বিংশ শতকের দোড়গোড়ায় এসে ভারতীয় জনগণের মনে ইংরেজদের বা ব্রিটিশ শাসকদের প্রতি বিদ্বেষের সৃষ্টি হয়। তাই ভারতবাসীগণ ঐক্য ভাবে ব্রিটিশদের উপর আন্দোলনের মাধ্যমে ভারত ছাড়তে উদ্যত হন। যার ফলস্বরুপ ব্রিটিশ অর্থাৎ ইংরেজগণ জাতিগত হিংসার বীজ ভারতবাসীদের মধ্যে ছড়িয়ে দিতে শুরু করে এবং বিভাজন ও শাসন নীতি গ্রহণ করে। সেই নীতির মাধ্যমে ব্রিটিশরা ভারতবর্ষের হিন্দু ও মুসলমানদের মধ্যে দ্বন্দ্বের সৃষ্টি করে। ফলে ১৯৪৬ সালের ৯ই ডিসেম্বর দিল্লির কনস্টিটিউশন হলে ভারতীয় গণপরিষদের যে প্রথম অধিবেশন বসেছিল সেই অধিবেশনে মুসলিম লীগের একজন সদস্যও উপস্থিত ছিল না। এর পর মুসলিম লীগ মুসলমানদের জন্য আলাদা রাষ্ট্র পাকিস্তান গঠনের দাবি জানায় এবং অবশেষে ১৯৮৭ সালের ১৪ই আগস্ট মুসলমানরা ইসলাম ধর্মাম্বলীদের জন্য পাকিস্তান রাষ্ট্র গঠন করে ভারত থেকে বিচ্ছিন্ন হয়ে যায়। যার ফলে বহু হিন্দু ও মুসলিম তাদের স্বজন ও বাসস্থান হারায়। এই বিভাজন ভারতের ইতিহাসে সবচেয়ে দুর্ভাগ্যজনক ও কলঙ্কের ঘটনা, কারণ এই ঘটনাটি ঘটেছিল দেশের কিছু গোঁড়া হিন্দু ও মুসলমান মানুষের প্ররচনার জন্যই।" কিন্তু সেই ভারতের ইতিহাস আমরা পরে জানতে পারি যে ব্রিটিশদের বিরুদ্ধে লড়াই কোন ধর্মের আড়ালে হয়নি, সর্ব ধর্ম-বর্ণ নির্বিশেষে একত্রিত হয়ে লড়েছে এবং স্বাধীনতা নিয়ে এসেছে। যেমন সকল ধর্মের মানুষ লড়াই করেছে তেমনি নারীদের অংশগ্রহণ ছিল এই লড়াইয়ে সমান। তারপরও দেশ বিভাজন হয় শুধু এই ধর্মের ভিত্তিতে। কিন্তু ভারতবর্ষে দেশভাগের পরও হিন্দু ছাড়া সেই সংখ্যালঘুদের সমস্যা সমাধান হয়নি।

দেশ বিভাজন হওয়ার পরেও হিন্দু ও মুসলিমদের মধ্যে বিবাদ-বিদ্বেষ লেগেই থাকে। ভারতবর্ষে শুধু এই দুটি ধর্মাম্বলী জাতী আছে তা নয়, এখানে প্রাচীন যুগ থেকে বিভিন্ন ধর্মের উপস্থিতি বর্তমান। এই দুটি ধর্মাম্বলী জাতী ছাড়া আরো অন্যান্য সংখ্যালঘুদের মধ্যে লড়াই এর আশঙ্কা থেকেই যায়। তাই গণপরিষদের সংবিধান প্রণেতাগণ মনে করেছিলেন যে, ধর্মভিত্তিক রাষ্ট্র গঠন করলে ধর্মীয় উন্মাদনার ফলে আবার ভারত বিভক্ত হবে। তাই সংবিধান প্রণেতাগণ মনে করেন ধর্মনিরপেক্ষ রাষ্ট্রের আদর্শ গ্রহণ করলে সমস্যার সমাধান করা যাবে। তাই মূল সংবিধানের প্রস্তাবনায় ধর্মনিরপেক্ষ শব্দটি গ্রহণ করে ভারতের সংবিধানের ধর্মনিরপেক্ষ শব্দটি ব্যাপক অর্থে ব্যবহার করা হয়।

ভারতবর্ষের ধর্মনিরপেক্ষতা গ্রহণের উদ্দেশ্যঃ

ভারতবর্ষে ধর্মনিরপেক্ষতা গ্রহণের কারণ শুধুমাত্র দেশ বিভাজন এর ঘটনা নয়। আমরা ভারতবর্ষের প্রাচীন যুগ থেকেই ধর্ম সহিষ্ণু। এখানে নানা ধর্ম-বর্ণ-জাতি অর্থাৎ হিন্দু, মুসলিম, বৌদ্ধ, জৈন, জরথুস্ত্র মতাবলম্বী, পারসিক, খ্রিস্টান ইত্যাদি বিভিন্ন ধর্মাবলম্বী মানুষ বসবাস করে। কিন্তু তার মধ্যে শতকরা ৮৫ ভাগ হিন্দু ধর্মাবলম্বী মানুষ। তাই বেশিরভাগ অন্যান্য রাষ্ট্র বা দেশ ভেবে থাকে যে ভারতবর্ষে হিন্দু রাষ্ট্র। আর এই ভয় অন্যান্য ধর্মাবলম্বীর লোকের মনে কাজ করে। আর তাদেরই শান্তিপূর্ণ বসবাসের জন্য গণপরিষদের সংবিধান প্রণেতাগণ মনে করেন ধর্মনিরপেক্ষ বলে ঘোষণা ছাড়া আর কোন উপায় নেই। কারণ আমাদের মনে বিভাজনের ভয়টা সবসময় কাজ করে। আর এই ধর্মনিরপেক্ষ রাষ্ট্র হল এমন একটা রাষ্ট্র যা প্রত্যেকটি ধর্ম বা বর্ণের জাতিকে সমানভাবে দেখা এবং স্বাধীনভাবে চলতে সাহায্য করা। আর সেটাতে অন্য কোন জাতি সংখ্যালঘু জাতির ওপর কোনো রকম চাপ সৃষ্টি করা বা ভীতি প্রদান করতে পারবে না। ব্যাপক অর্থে ধর্মনিরপেক্ষ এর অর্থ দাঁড়াই রাষ্ট্রের নিজস্ব কোন ধর্ম থাকবে না, রাষ্ট্র ধর্মের নামে কোন বৈষম্যমূলক আচরণ করবে না এবং রাষ্ট্র কোন ধর্মকে বিশেষ সুযোগ সুবিধা দেবে না বা সংখ্যাগরিষ্ঠদের কোন সুযোগ দেওয়ারও চেষ্টা করবে না। ধর্মনিরপেক্ষতার আদর্শের জন্য এখানে সংখ্যালঘুরাও নির্ভয়ে নিজেদের বিশ্বাস ও পছন্দমত ধর্ম গ্রহণ ও ধর্মাচরণ করতে পারে। ভারতে সংখ্যাগরিষ্ঠ হিন্দু ধর্মাবলম্বীদের সঙ্গে সংখ্যালঘুদের কোন পার্থক্য বা বিভেদ সৃষ্টি করা হয় না। এখানে সকল ধর্মের প্রতি সমান সম্মান ও মর্যাদা প্রদান করা হয়েছে।

[গ]"ধর্মনিরপেক্ষ আদর্শটি প্রথমে সংবিধান বা প্রস্তাবনায় অন্তর্ভুক্ত করা হয়েছিল না। এই ধর্মনিরপেক্ষতা শব্দটি ১৯৭৬ সালের ৪২ তম সংবিধান সংশোধনী আইনে প্রস্তাবনায় অন্তর্ভুক্ত করা হয়েছে। কিন্তু মূল সংবিধাণের কোথাও এই ধর্মনিরপেক্ষতা শব্দটির সঠিক ব্যাখ্যা করা হয়নি।"

অন্যান্য রাষ্ট্রের সঙ্গে ভারতবর্ষঃ

ধর্মনিরপেক্ষতার বিষয়ে আমরা দেখি অন্যান্য যে কোন রাষ্ট্র ভারতবর্ষের তুলনায় অনেক কম প্রশংসিত। পৃথিবীর এমন কোন রাষ্ট্র নেই যে, ভারতবর্ষের মত ধর্ম সহিষ্ণু ও নিরপেক্ষ। তারপরও এত সংঘাত মানুষে মানুষে ধর্মের কারণে, আমরা পার্শ্ববর্তী দেশ যা আমাদের অংশ ছিল বাংলাদেশ ও পাকিস্তান সেখানে এখনো সম্পূর্ণ ধর্মনিরপেক্ষ রাষ্ট্র হতে পারেনি। সেখানে ইসলাম ধর্মকেই প্রাধান্য দিয়ে থাকে। পাকিস্থানে ইসলাম ধর্মকে রাষ্ট্রীয় ধর্মের স্বীকৃতি দেওয়া হয় এবং এই ধর্ম অনুসারে শাসনব্যবস্থা পরিচালিত হয়। যারফলে দেখা গিয়েছে সংখ্যাগরিষ্ঠরা সংখ্যালঘুদের ওপর এখনও অত্যাচার করে চলেছে পাকিস্তান ও বাংলাদেশ। যেমন হিন্দুরা এখনো অত্যাচারের ভয়ে বা অত্যাচারিত হয়ে এই দুই দেশ থেকে চোরাইপথে অনেকে পালিয়ে এসেছে বা এখনও আসছে। আবার অনেকে সব নিয়মকানুন মেনেই দেশের নাগরিকত্ব গ্রহণ করছে। এ বিষয়ে যেমন বার্মাদেশেও বৌদ্ধধর্মকে রাষ্ট্রীয় ধর্ম বলে ঘোষণা করেছে। মার্কিন যুক্তরাষ্ট্রেও তেমনি খ্রিস্টান ধর্মকে প্রাধান্য দেওয়া হয়েছে। সেই কারণেই মার্কিন যুক্তরাষ্ট্র সঠিকভাবে বা জোরপূর্বক ভাবে বলতে পারেনা যে ধর্মনিরপেক্ষ রাষ্ট্র। এই কারণেই আমাদের ভারতবর্ষ ধর্মনিরপেক্ষ রাষ্ট্র হিসেবে সবচেয়ে আগে এবং বেশি প্রশংসিত হয়েছে। আবার আমাদের পার্শ্ববর্তী রাষ্ট্র নেপালের কথাও আমরা এড়িয়ে যেতে পারি না কারণ এখনও পর্যন্ত নেপাল কে একটি হিন্দু রাষ্ট্র বলে জেনে থাকি। কারণ সেখানে হিন্দুরাই বসবাস করে এবং হিন্দুদের নিয়ম অনুযায়ী সরকারি কাজকর্ম পরিচালিত।

ভারতবর্ষের সংবিধানে ধর্মনিরপেক্ষতাঃ

[ঘ] "ভারতের মূল সংবিধানের কোথাও এই ধর্মনিরপেক্ষতা শব্দটি ব্যবহার করা হয়নি। কারণ এই বিষয়ে গণপরিষদে আলোচনার আগে অধ্যাপক K.T. Shah বার দুয়েক সংবিধান সংশোধনী প্রস্তাব উত্থাপন করে ধর্মনিরপেক্ষতা শব্দটি সংবিধানে অন্তর্ভুক্ত করতে চেয়ে ছিলেন, কিন্তু ডঃ বি আর আম্বেদকর এই প্রস্তাবে সম্মত হননি। কারণ সংবিধানের প্রস্তাবনাতেই চিন্তা, বাক্য, বিশ্বাস, ধর্ম ও উপাসনার ক্ষেত্রে স্বাধীনতার কথা বলা হয়েছে। যেটা সংবিধানের মৌলিক ধারাতে রাখা হয়েছে। সেই জন্যই আম্বেদকর মনে করেছিলেন যে আলাদা করে 'ধর্মনিরপেক্ষতা' কথাটি যুক্ত করার প্রয়োজন নেই। কিন্তু পরবর্তীতে ইন্দিরা গান্ধীর আমলে সেটা আলাদা করেই যুক্ত করা হয়। ভারতবর্ষে প্রথম ১৯৭৬ সালে ৪২ তম সংবিধান সংশোধনী আইনে সংবিধানের প্রস্তাবনায় 'ধর্মনিরপেক্ষ' শব্দটি যুক্ত করা হয়েছে। ধর্মনিরপেক্ষ শব্দটি যুক্ত করে রাষ্ট্রের ধর্মনিরপেক্ষতার যে আদর্শ সেটা সুস্পষ্টভাবে প্রকাশ করেছে। কিন্তু আমরা দেখি প্রস্তাবনায় আগে থেকেই বিশ্বাস, ধর্ম আর উপাসনার ক্ষেত্রের পূর্ণ স্বাধীনতার কথা বলা হয়েছে। তা কার্যকর করা হয়েছে সংবিধানের ২৫ থেকে ২৮ নং ধারায় যেখানে সকল ভারতবাসীকে ধর্মের স্বাধীনতা বিষয়ে মৌলিক অধিকার হিসেবে প্রদান করে। আর মৌলিক অধিকারের মধ্যে রাখার কারণ হলো যে, প্রত্যেকটি নাগরিক যেন নিজের বিশ্বাস মত ধর্ম পালন, প্রচার এবং গ্রহণ করতে পারে। সেখানে রাষ্ট্রের কোনো হস্তক্ষেপের কোন অধিকার থাকবে না। আবার সংবিধানের ১৫ এবং ১৬ নং ধারাতে ও ধর্মীয় বৈষম্যহীনতা প্রতিষ্ঠার কথা বলা হয়েছে।" যার নজির আমরা ১৯৭৩ সালে কেশবানন্দ ভারতী মামলায় সুপ্রিম কোর্টের বিচারকরা এই ধর্মনিরপেক্ষতাকে মৌলিক কাঠামো হিসেবে স্বীকৃতি দিয়েছেন; ১৯৯২ সালে উত্তরপ্রদেশে বাবরি মসজিদ ধ্বংসের পরে ধর্মকে কেন্দ্র করে যে বিভেদ সৃষ্টির চেষ্টা হয়েছে তার জন্য কেন্দ্রীয় সরকার কংগ্রেস উত্তরপ্রদেশে বিজেপি সরকারকে বরখাস্ত করে ওই রাজ্যের শাসনতান্ত্রিক অচলাবস্থা জারি করে। এই বিষয়ে যে মামলা হয় তার রায়ে দান করে সুপ্রিম কোর্ট কেন্দ্রীয় সরকারের এই পদক্ষেপকে সমর্থন জানিয়ে ধর্মনিরপেক্ষতার আদর্শকে তুলে ধরেছিল।

মূল্যায়নঃ

ভারত বর্ষ একটি উন্নয়নশীল দেশ, যা প্রাচীন যুগ থেকেই ভারতীয় দর্শন, অঙ্কশাস্ত্র, ন্যায়শাস্ত্র বিশ্বে খ্যাতি লাভ করেছে। যেমন প্রাচীন যুগ থেকেই নানা ধর্ম সহিষ্ণু তেমন সর্ব ধর্মের প্রতী সমভাবাপন্ন। তা বোঝা যায় এই শিক্ষা ব্যবস্থার দিকে লক্ষ্য করলেই কারণ শিক্ষা ব্যবস্থার ক্ষেত্রে দেখা গেছে যে, হিন্দুদের জন্য যেমন ছিল পাঠশালা ও মন্ডব, চতুষ্পাঠী তেমনি মুসলমানদের জন্য ছিল মাদ্রাসা। আবার খ্রীস্টানদের জন্য ছিল মিশনারি ব্যবস্থা। এতেই বোঝা যায় যে পূর্ব থেকেই মানুষ ভারতবর্ষে ধর্মের দিক থেকে নিরপেক্ষ ছিল। কিন্তু বর্তমানে ধর্মনিরপেক্ষ কথাটির অর্থ ভারতবর্ষে ব্যর্থ হয়েছে বলে দেখা যায়। আর এই ব্যর্থতার পেছনে কোন শুধুমাত্র একটি কারণ নয় প্রচুর কারণ লক্ষ্য করা যায়। প্রথমত আমরা বলতে পারি যে এই ধর্মনিরপেক্ষতার শব্দটি শুধু প্রস্তাবনায় উল্লেখ করা হয়েছে মূল সংবিধানে সঠিকভাবে এর কোনো ব্যাখ্যা করা হয়নি। ধর্মনিরপেক্ষতার সঠিক ব্যাখ্যা বিশ্লেষণ করলে ধর্মনিরপেক্ষতার পথে যেই বাধাগুলি লক্ষ্য করা যায় সেগুলি এড়ানো যাবে। আমাদের সংবিধানে সংরক্ষিত ব্যবস্থাপনা কোন জাতি বিশ্বে নয়, প্রত্যেকটি মানুষের মনের হিংসার সৃষ্টি করে। যা সমভাবাপন্নে ব্যাঘাত ঘটে। যেমন S.C., S.T., O.B.C. ব্যবস্থা, নারীজাতির আলাদাভাবে সংরক্ষণ ব্যবস্থা করা হয়েছে। আবার নানা জাতির জন্য নানা ধরনের দেওয়ানি বিধি বর্তমান। এই সবকিছুই ধর্মনিরপেক্ষতার পথে বাধা সৃষ্টি করে। সংবিধানে শিখ সমেত সকল হিন্দুদের জন্য একই রকম দেওয়ানি বিধি ব্যবস্থা করেছে। কিন্তু মুসলমানদের জন্য আলাদা দেওয়ানি বিধি এর ব্যবস্থা করা হয়েছে। যা বৈষম্যমূলক নিয়মের সৃষ্টি করেছে। গুজরাট ও সমগ্র দক্ষিণ ভারতে কিছু ব্রাহ্মণ গোষ্ঠীকে অত্যন্ত নিম্ন স্তরের বলে বিবেচনা করা হয়। কর্নাটকে বিশেষ একটি ব্রাহ্মণ গোষ্ঠীর কাছ থেকে অ-ব্রাহ্মণ জাতিসমূহের মানুষজন, এমনকি হরিজনরাও খাদ্য-পানীয় গ্রহণ করে না। এইসব কারণে এই ধর্মনিরপেক্ষতা এখনো বাধাপ্রাপ্ত হয়েছে। আবার আমরা জানি ভারত-পাকিস্তানের দন্ধ সব সময় লেগে থাকে কিন্তু এই দন্ধের কারণে ভারতবর্ষে এখনো কিছু সংখ্যক মৌলবাদী মুসলমান পাকিস্তানকে সমর্থন করে। তার ফলে বেশীরভাগ মুসলমানকে কিছু সংখ্যক হিন্দু দোষী বলে মনে করে এর ফলে দুই জাতির মধ্যে সমভাবাপন্ন কাজ করে না। এখানে ধর্মনিরপেক্ষতা শব্দটি ব্যর্থ বলে মনে হয়। আবার কিছু কিছু রাজনৈতিক নেতারা নিজেদের স্বার্থের জন্য জাতি, ধর্ম, বর্ণ বিশেষে সুবিধা প্রদানের ফলে একটি অসামঞ্জস্যতার সৃষ্টি হয়। এই কারণগুলো ভারতবর্ষে ধর্মনিরপেক্ষতার পথে বাধার সৃষ্টি করে। তাই ভারতবর্ষকে সঠিকভাবে ধর্মনিরপেক্ষ রাষ্ট্র তৈরি করতে হলে আমাদের প্রথমে উদ্যোগ নিতে হবে যে, এখনও যেই সমীক্ষা অনুযায়ী ৮০% মানুষ দারিদ্রতাই জীবন-যাপন করছে তাদের জীবন-যাত্রার মানোন্নয়ন করা। সব জাতি এবং বর্ণ, ধর্ম সমান ভাবে থাকতে পারে তার জন্য যথোপযুক্ত ব্যবস্থা গ্রহণ করা। শুধুমাত্র ধর্মনিরপেক্ষ রাষ্ট্র বলে ছেড়ে না দেওয়া তার ঠিক-ঠাক প্রয়োগ হচ্ছে কিনা তার জন্য আলাদা করে ধারা নির্ধারণ করা। তবেই সম্ভব হবে একটি সঠিক সার্থক ধর্মনিরপেক্ষ রাষ্ট্র গঠন করা। আরেকটি উন্নতশীল রাষ্ট্রের জন্য ধর্মনিরপেক্ষতা ব্যবস্থার প্রয়োজন আবশ্যিক।

উদ্‌ধৃতঃ

[ক] ভারতের শাসনব্যবস্থা ও রাজনীতি, ডঃ অনাদিকুমার মহাপাত্র, সুহৃদ পাবলিকেশন, কলকাতা -৭৩, এপ্রিল, ২০০৪, পৃষ্ঠা নং ১০৪।

[খ] ভারতের শাসনব্যবস্থা ও রাজনীতি, ডঃ অনাদিকুমার মহাপাত্র, সুহৃদ পাবলিকেশন, কলকাতা -৭৩, এপ্রিল, ২০০৪, পৃষ্ঠা নং ১০২।

[গ] ভারতের শাসনব্যবস্থা ও রাজনীতি, ডঃ অনাদিকুমার মহাপাত্র, সুহৃদ পাবলিকেশন, কলকাতা -৭৩, এপ্রিল, ২০০৪, পৃষ্ঠা নং ১০৪।

[ঘ] ভারতের শাসনব্যবস্থা ও রাজনীতি, ডঃ অনাদিকুমার মহাপাত্র, সুহৃদ পাবলিকেশন, কলকাতা -৭৩, এপ্রিল, ২০০৪, পৃষ্ঠা নং ১০৩।

গ্রন্থালোচনাঃ

(১) ঘোষ, পাল ও বণিক, সোমা, নিবেদিতা ও রাখী, - ভারতের সংবিধান ও শাসনব্যবস্থার পথ পরিক্রমা, প্রগ্রেসিভ পাবলিশার্স, কলেজ স্ট্রীট, কলকাতা – ৭৩, ২০১৪।

(২) চক্রবর্তী ও ঘোষ, অধ্যাপক সত্যসাধান ও অধ্যাপক নির্মল কান্তি, - ভারতের শাসনব্যবস্থার ভূমিকা, শ্রীভূমি পাবলিশিং কোম্পানি, কলকাতা – ০৯, ২০০০।

(৩) মহাপাত্র, ডঃ অনাদিকুমার, - ভারতের শাসনব্যবস্থা ও রাজনীতি, সুহৃদ পাবলিকেশন, কলকাতা -৭৩, এপ্রিল, ২০০৪।

(৪) মুখোপাধ্যায়, অমল কুমার, - ভারতের সংবিধানের সহজপাঠ, প্রগ্রেসিভ পাবলিশার্স, কলেজ স্ট্রীট, কলকাতা – ৭৩, ২০০৯।

(৫) রায় ও ঘোষ, সুধীর ও বিপত্তারণ, - ভারতের সংবিধান এবং এর ক্রমবিবর্তন, প্রগতিশীল প্রকাশক, কলেজ স্ট্রীট, কলকাতা – ৭৩, ২০১১।

(৬) সোম, ডঃসুভাষচন্দ্র, - ভারতের সংবিধান সরকার ও রাজনীতি, ক্যালকাটা বুক হাউস, কলেজ স্ট্রীট, কলকাতা – ৭৩, ২০১২।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 193-196

भारतीय आध्यात्मिक राष्ट्रवादी दृष्टिकोण

(राजाराम मोहन राय, दयानन्द, टैगोर एवं ऐनीबीसेन्ट)

म्होर सिंह मीणा

सहायक आचार्य इतिहास, राजकीय कमला मोदी महिला महाविद्यालय, नीमकाथाना, राजस्थान।

पूरण मल मीणा

सह आचार्य इतिहास, राजकीय कला महाविद्यालय, सीकर, राजस्थान।

शोध सारांश :-

भारतीय राजनीतिक चिंतन में आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का दृष्टिकोण, अधुनातन एवं अध्ययन का विषय प्रमुख लक्ष्य है। भारतीय राष्ट्रवाद की प्रकृति एवं विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन प्रस्तुत शोध का मर्म है। इसके अतिरिक्त भारतीय चिंतन में आध्यात्मिक राष्ट्रवाद ने किस प्रकार विभिन्नता के बावजूद अपने अस्तित्व पर विकसित होने का सार्थक प्रयास किया है तथा इनमें समानता एवं विभन्नता होने के बावजूद उत्तरोत्तर प्रगति पर विकास किया है। इसका विशद् अध्ययन करना भी शोध विषय का उद्देश्य है। भारतीय चिंतन में राष्ट्रवाद को चिंतकों ने किस प्रकार से अपना–अपना योगदान दिया है, यथा राजाराम मोहन राय ने संतुलित समन्वयकारी तथा तार्किक राष्ट्रवाद का आधार तैयार किया। दयानन्द सरस्वती ने गौरव पूर्व अतीत युक्त श्रेष्ठता बोध राष्ट्रवाद की अवधारणा रखी तो रवीन्द्रनाथ टैगोर ने राष्ट्रवाद बनाम मानवतावाद का प्रश्न भारतीय आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की पृष्ठभूमि में लेकर आये वहीं एनीबीसेन्ट ने अखण्ड एवं समग्र हिन्दूत्व युक्त राष्ट्रवाद के विकास में योगदान दिया।

मुख्य शब्द :- राष्ट्रवाद, पुनर्जागरण, आत्मीय सभा, ब्रह्म समाज, गौरव पूर्व अतीत, आर्यसमाज, शुद्धि परम्परा, आध्यात्मिक क्षेत्र, पश्चिमी जगत, मानवतावाद, साम्राज्यवाद, नवोत्थान, हिन्दूत्व।

प्रस्तावना :-

राष्ट्रवाद के विकास के लिये भारतवासियों में आत्म–विश्वास की भावना का होना तथा उनमें अपनी अलग पहचान का बोध होना आवश्यक था।[1] भारतीय पुनर्जागरण का प्रारम्भ राजा राममोहन राय से हुआ, जिन्होंने स्वतन्त्र चिन्तन की महत्ता को स्पष्ट किया। इन्होंने अन्ध–विश्वास पर आधारित कठोर सामाजिक व्यवस्था को अस्वीकार किया। उन्होंने सरकार द्वारा पारित ''एडम के प्रेस अधिनियम'' का भी खुलकर विरोध किया, क्योंकि वे अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक थे। तत्कालीन समाज में प्रचलित सती प्रथा, कुलीन प्रथा तथा बाल विवाह जैसी कुरीतियों का भी उन्होंने कड़ा विरोध किया। वे संवाद कौमुदी एवं मिरात–उल–अखबार नामक पत्रिकाओं में प्रायः सामाजिक कुरीतियों पर लेख आदि प्रकाशित कराते थे और इस कारण भारतीय समाज का

परम्परावादी वर्ग उन्हें पसन्द नहीं करता था।

धार्मिक क्षेत्र में राजा राममोहन राय ने प्रचलित परिपाटियों व कर्मकाण्ड का विरोध किया। उनकी मान्यता थी कि धर्म का वास्तविक स्वरूप और इसकी भावना बाहरी आडम्बरों व रीति–रिवाजों में लुप्त हो गई है।[2] 1816 ई. में राजा राममोहन राय ने 'आत्मीय सभा' तथा 1828 ई. में ब्रह्म समाज की स्थापना की। उन्होंने ईश्वर की एकता पर बल दिया और कहा कि ईश्वर का कोई रूप, रंग, गुण व विशेषताएँ नहीं है। उनके द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज अत्यधिक लोकप्रिय नहीं हुआ, किन्तु बंगाल में शिक्षित वर्ग पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा। यद्यपि ब्रह्म समाज की लोकप्रियता सीमित थी, किन्तु इसके महत्व को कम नहीं आंकना चाहिये। राजा राममोहन राय का मूल्यांकन करते हुये प्रायः यह कहा जाता है कि उनका ''संतुलित समन्वयकारी'' तथा तार्किक दृष्टिकोण था। यही कारण है कि उन्हें भारत का प्रथम पुरूष माना जाता है।

राष्ट्रवाद का स्वतंत्रता के विचारों के विकास में पुनर्जागरण कालीन साहित्य के अतिरिक्त 19वीं शताब्दी के सामाजिक व धार्मिक आंदोलन के प्रणेताओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।[3] इनमें दयानन्द भारतीय सांस्कृतिक धरोहर के सर्वाधिक प्रभावी उद्घोषक थें और उनकी उत्कृष्टता में उनका दृढ़ विश्वास था। उनकी हिन्दू शास्त्रों में प्रबल आस्था थी तथा उनके नारे ''वेदों की ओर लौटो'' से जनसामान्य में अनूठे व गौरवपूर्ण अतीत के सम्बन्ध में जागरूकता पैदा हुई। वे वेदों की शाश्वत, अमर तथा दोषमुक्त व दैवीय मानते थे। उन्होंने वेदों को श्रुति माना है, जिसके अनुसार वेद मनुष्यकृत नहीं है, अपितु उन्हें ऋषियों ने सीधा ईश्वर से ही सुना है। सन् 1875 ई. में आर्य समाज की स्थापना के द्वारा हिन्दू धर्म को वैदिक धर्म के अनुरूप बनाने के लिये सुधार करना चाहते थे। इसमें सन्देह नहीं है कि आर्य समाज द्वारा चलाया गया सुधार आन्दोलन ब्रह्म समाज के आन्दोलन की अपेक्षा हिन्दू धर्म की परम्पराओं से अधिक जुड़ा हुआ था। दयानन्द ने कहा कि प्रचलित सामाजिक कुरीतियों का अन्त करने के लिये वैदिक सामाजिक संरचना के आधार पर समाज सुधार आन्दोलन चलाना चाहिये। हिन्दू धर्म में पूर्ववत् स्फूर्ति व शक्ति का पुनः संचार करने के लिये दयानन्द ने शुद्धि की परम्परा प्रारम्भ की जिसके द्वारा ऐसे हिन्दू जिन्होंने अतीत में धर्म परिवर्तन कर लिया, वे पुनः हिन्दू धर्म स्वीकार कर सकते है।[4] दयानन्द सरस्वती ने देश में व्याप्त शिथिलता व नैराश्य को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा भारतीय संस्कृति की जीवंत परम्परा को आगे बढ़ाने में योगदान दिया।

श्री अरविंद ने दयानन्द की सराहना की है और ऐतिहासिक सन्दर्भ में उनका मूल्यांकन किया है। अमलेश त्रिपाठी के शब्दों में ''संस्कृतियों, मूल्यों तथा हितों के संघर्ष के बीच अरविंद विशुद्ध शक्ति, उच्च स्तर की स्पष्टता, अन्तदृष्टि, कार्यक्षमता तथा प्रभावशीलता सत्यनिष्ठा के गवेष्णु थे और यह सब कुछ उन्हें दयानन्द से प्राप्त हुआ। दयानन्द में ये सब गुण थे अथवा नहीं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। दयानन्द के विषय में अरविन्द की धारणा बहुसंख्यक उग्रवादियों के उच्चतम आदर्श का संप्रकाशन करती है और इस कारण ऐतिहासिक महत्व है।

उन्होंने देशवासियों का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया कि वे आध्यात्म के क्षेत्र में पश्चिमी के लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ है। वे पश्चिमी सभ्यता की अच्छाइयों और विशेषताओं के विरूद्ध नहीं थे, अपितु वे चाहे थे कि पूर्व और पश्चिम दोनों एक–दूसरे से सीखें, किन्तु इनमें से कोई दूसरे को हेय नहीं समझे। इस पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा– ''इस क्षेत्र में (अर्थात् भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में) पाश्चात्य सभ्यता के लोग। अतः यह ठीक ही है कि यदि अध्यात्म के क्षेत्र में कुछ होना है

तो वह पूर्व से उठे। यह भी युक्तियुक्त है कि यदि पूर्व का कोई व्यक्ति मशीन बनाना सीखना चाहता है तो वह पश्चिम के व्यक्ति के चरणों में बैठकर सीखें।[5] यदि पश्चिम का कोई व्यक्ति आत्मा, ईश्वर अथवा सृष्टि के अर्थ एवं रहस्य को जानने का इच्छुक है तो सीखने के लिये उसे पूर्व के व्यक्ति के चरणों में बैठने के लिए तत्पर रहना चाहिये। इससे यह स्पष्ट है कि दयानन्द कट्टर पुनः प्रवर्तनवादी नहीं थे। वे चाहते थे कि देशवासी देश को उसके समग्ररूप में समझे और फिर जहां आवश्यक हो सुधार करें। उन्होंने देश के मनोबल को ऊंचा उठाया और बार–बार कहा कि यदि भौतिक विकास के क्षेत्र में हमारा देश पिछड़ा हुआ है तो आध्यात्मिक क्षेत्र में पश्चिमी जगत भारत की तुलना में बौना है। अतः भारतवासियों में किसी भी प्रकार की हीन भावना नहीं होनी चाहिये।

राष्ट्रवाद के सन्दर्भ में रवीन्द्रनाथ टैगोर का उल्लेख करना असंगत नहीं होगा, क्योंकि राष्ट्रवाद के संबंध में उनके विचार अन्यों से भिन्न थे। टैगोर के कवि रूप को यह स्वीकार नहीं हुआ कि राष्ट्रीयता की बढ़ती हुई भावना सम्पूर्ण मानवता को साम्राज्यवादी इकाइयों में विभक्त कर दें।[6] उनके लिये मूल प्रश्न भारत की पराधीनता का नहीं था, अपितु उन्होंने सम्पूर्ण समस्या को मानवता के व्यापक धरातल पर देखा। टैगोर का राष्ट्रवाद वेदों–उपनिषदों के वसुदेव कुटुम्बकम् की भावना पर खड़ा है, वे उत्थिव्यम्, जाग्रतव्यम् और बोधितव्य की भावना का भारतीय लोगो में संचार करना चाहते थे, टैगोर का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद उपनिषदों से ग्रहीत है, उनका मानव ईश्वर से अलग नहीं है, विश्व ईश्वर की कृति नहीं वरन ईश्वर का रूप है। इसलिए ईश्वर से अलग नहीं किया जा सकता है। उनके अनुसार आत्म त्याग, समाज सेवा एवं मानवता से प्रेम करना ही राष्ट्रवाद है। अतः टैगोर के अनुसार मानव जाति के पूर्ण विकास के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विभिन्नताएं आवश्यक है। वे संकीर्ण राष्ट्रवाद के विरोधी थें, इसलिए उन्होंने खिलाफत आन्दोलन का विरोध किया था।

वे राष्ट्रवाद का अर्थ किसी भी व्यक्ति द्वारा अपने देश की सभ्यता, संस्कृति, कलाओं, संगीत, साहित्य तथा पूर्वजों की गौरवमयी परम्पराओं के प्रति श्रद्धापूर्व समर्पण को मानते थे। टैगोर, हिंसावादी, बहिष्कारवादी, उग्रवादी, 16वीं–17वीं सदी में उत्पन्न यूरोपीय राष्ट्रवाद के आलोचक थें, वे भारतीय चिंतन परम्परा में विकसित 'जियो और जीने दो' संकल्पना आधारित आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के समर्थक थें। टैगोर के लिये प्रश्न राष्ट्रवाद बनाम मानवतावाद का था। भारतीय राष्ट्रवाद के सन्दर्भ में रवीन्द्रनाथ के विचार कालोचित नहीं लगते हैं। उनका यह कथन है कि हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि भारत में पश्चिम का आगमन नियति के कारण हुआ है। तथापि यह अपेक्षित है कि कोई पश्चिम को यह विश्वास दिलाये की सभ्यता के इतिहास में पूर्व का अपना विशिष्ट योगदान है। भारत पश्चिम का भिखारी नहीं है। यदि पश्चिम उसे भिखारी मानता है तो मैं इस पक्ष में नहीं हूँ कि पाश्चात्य सभ्यता का सर्वथा निष्कासन कर दिया जायें और हम अपनी स्वतन्त्रता के साथ विश्व में पूरी तरह कट जायें।

थियोसॉफिकल सोसायटी की श्रीमती एनीबेसेन्ट 1893 ई. में भारत आई। उन्होंने स्वीकार किया कि वे पूर्वजन्म में हिन्दू थी। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ऐसीबेसेन्ट ने हिन्दू नवोत्थान एवं भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका प्रिय विषय था – ''एक राष्ट्र के रूप में भारत की उन्नति के लिये हिन्दू धर्म का पुनः उत्थान आवश्यक है।'' स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्यसमाज ने तो बुद्धिवाद पर आधारित केवल वेदसम्मत हिन्दुत्व का ही समर्थन किया था।[7] श्रीमती बेसेन्ट को इस बात का श्रेय है कि उन्होंने अखण्ड एवं समग्र हिन्दुत्व का ओजस्वी वाणी में आख्यान दिया। एनीबीसेन्ट ने भारत को एक सभ्यता के रूप में स्वीकार

किया और भारत के राष्ट्रवाद को आत्मसात किया। वह सभ्यता और राष्ट्रीयता को अलग–अलग न मानकर सहचर मानती थी। उन्होंने पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता की तुलना में प्राचीन भारतीय हिन्दू सभ्यता को श्रेष्ठ बताया। उन्होंने भारत को ही मातृभूमि मान लिया, क्योंकि उन्हें भारतीय हिन्दू धर्म और संस्कृति से गहन लगाव था। उनकी मान्यता थी कि भारत का भविष्य हिन्दू धर्म और संस्कृति से जुड़ा हुआ है। इसलिए उन्होंने रामायण तथा महाभारत पर संक्षिप्त भाष्य लिखा। काशी में सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज की स्थापना की, होमरूल आन्दोलन चलाया, 1917 ई. कांग्रेस की अध्यक्ष भी बनी। सामाजिक सुधार के कार्य भी किये। इन सबके पीछे उनके चिंतन में यह विश्वास था कि भारत की उन्नति इसके आदर्शों पर चलकर ही हो सकती है।[8]

निष्कर्ष :–

भारत में आध्यात्मिक राष्ट्रवाद दृष्टिकोण प्राचीनकाल में वेदों, उपनिषदों एवं पुराणों में दिखाई देता है, तो मध्यकाल में अबुल–फलज के आइने–अकबरी, कबीर की रचनाओं एवं गुरूनानक के दर्शन में निहित है। आधुनिक युग में आध्यात्मिक राष्ट्रवाद राजाराम मोहन राय के साहित्य और ब्रह्म समाज संस्था में पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित तथा वेद–उपनिषदों से प्रेरित होकर विकसित हुआ जो दयानन्द सरस्वती के समय ईसाई धर्म के आक्षेपों के विरोध में वैदिक हिन्दूत्व, गौरवपूर्ण अतीत के प्रति लगाव युक्त आध्यात्मिक राष्ट्रवाद में परणित हुआ तो रविन्द्र नाथ टैगोर के दर्शन 'राष्ट्रवाद बनाम मानवतावाद' की जंग में धर्मनिरपेक्ष विश्वव्यापी मानववादी राष्ट्रवाद के रूप में समग्र राष्ट्रवाद की अवधारणा विकसित हुई, वहीं एनीबीसेन्ट के पाश्चात्यवादी दृष्टिकोण से भारतीय सभ्यता और संस्कृति का मूल्यांकन करने पर अखण्ड एवं समग्र हिन्दूत्व आध्यात्मिक राष्ट्रवादी दृष्टिकोण प्रारम्भ हुआ, जिसे वी.डी. सावरकर, मदन मोहन मालवीय ने विकसित किया। इस प्रकार भारत में आध्यात्मिक राष्ट्रवाद विभिन्न धाराओं एवं दृष्टिकोण के रूप में विकसित पल्लवित हुआ है।

संदर्भ पुस्तकें :–

1. जैन पुखराज, भारत का स्वाधीनता आन्दोलन तथा संवैधानिक विकास प्रकाशन, साहित्य भवन हॉस्पिटल रोड़, आगरा–28 (2003)
2. जान, केव इंडिया ए हिस्ट्री, ग्रुव प्रेस (2000), यू.एस.एन. त्यागी, एम.एस. आधुनिक भारत, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली (2001)
3. देसाई, ए.आर. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि (1976), मेकमिलन धामा, तेजपाल सिंह, हमारी विरासत हिन्दी साहित्य सदन आगरा (2003)।
4. नागर पुरूषोत्तम लाल आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, प्रकाशन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर (1980)।
5. नागौरी, एस.एल. राजस्थान के इतिहास के स्रोत्र, आर.बी.एस.ए. पब्लिकेशन्स, जयपुर (1977)।
6. नागौरी, जीतेश एवं नागौरी, कान्ता भारत के स्वतंत्रता सेनानी, नेशनल पब्लिकेशन्स, जयपुर (2009)।
7. भटनागर, राजेन्द्र मोहन भारतीय कांग्रेस का इतिहास (भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और विकास की कथा–यात्रा) पंचशील प्रकाशन, जयपुर (1986)।
8. मजूमदार, रमेशचन्द्र व अन्य भारत का वृहद् इतिहास आधुनिक भारत मेकमिलन, यू. एस. ए. (1981)।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 197-200

दोहरा अभिशाप एक दलित स्त्री की व्यथा

डॉ. डब्ल्यु. मायादेवी
असोसियट प्रोफेसर, अध्यक्ष, एवं पाठ्य प्रणाली अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद।

हिन्दी साहित्य की इतनी बडी परंपरा है। उसमें आम स्त्री की आत्मकथा बहुत बाद में आयी। ऐसे में दलित स्त्री की आत्मकथा तो बहुत बाद में आयी। फिर भी आज दलित साहित्य ने अपना स्थान जमाया है। हजारों सालों से इस बहिष्कृत समाज ने अपना जीवन पशुतुल्य जीया, परन्तु आज उसे वाणी मिली है केवल डाक्टर बाबासाहब अम्बेडकर की वजह से। इसी कारण दलित साहित्य समृद्ध होते जा रहा है। आज उसे सारे संसार में पहचान भी मिली है। दलित पुरुषों ने आत्मकथाएँ लिखी है उसी प्रकार दलित स्त्री ने भी लिखना आरंभ कर दिया है। डा. बाबासाहेब अम्बेडकर का मानना था कि दलित समाज कि प्रगति होनी है तो महिलाओँ को भी आगे बढाना है इसलिए उन्होंने अपने आंदोलन में हजारों स्त्रियों को बाहर निकाला था, उनका कहना था– "स्त्री वर्ग में जागृती हुई तो अस्पृश्य समाज की बहुत बडी प्रगति होगी, इसकी मुझे कल्पना है। नारी की संघटित संस्था होनी चाहिए। इस पर मेरा विश्वास है। दलित समाज का कार्य करने मैने हाथ में लिया, तभी निश्चय किया की पुरुषों के समान महिलाओँ को भी आगे बढाना होगा। इसलिए पुरुषों की परिषदों के साथ महिला परिषद लिये जाते थे। स्त्री समाज ने कितने प्रमाण में प्रगती कि है, इससे मैं दलित समाज ने कितनी प्रगती की उसका अंदाज लगाता हूं।" इस प्रकार प्रगती के निष्कर्ष से पता चलता है कि बाबासाहब ने महिलाओं के लिए आगे बढने का आव्हान किया था। उसको दृष्टि में रखकर आज दलित साहित्य को देखेंगे तो पता चलेगा कि आज दलित महिला लेखक भी ज्यादा ही लिख रही है किन्तु हिन्दी में भी लिखान शुरु हुआ है।

हिन्दी की पहली दलित स्त्री आत्मकथा ई. 1999 में कौसल्या बैसंत्री की दोहरा अभिशाप को माना जाता है। दलित स्त्री की हिन्दी में यह पहली आत्मकथा है। इस आत्मकथा में लेखिका ने अपने जीवन में जो कुछ भोगा उसका यथार्थपूर्ण चित्रण किया है।

लेखिका का जन्म एक महार जाति के घर में 1926 ई. में हुआ है। इस आत्मकथा में चित्रित सभी घटनाओँ का चित्रण लेखिका ने बहुत ही यातनामय वेदना से किया है। उस समय का महार समाज कैसा था? किस प्रकार कि यातनाएँ उन्हे झेलनी पडी थी इसका भी वर्णन इसमें आया हैय़ लेखिका शहर में (नागपुर) पैदा हुई किन्तु उस समय दलितों की बस्तियाँ गाँव के बाहर एक तरफ होती थी जिसका वहाँ के तथाकथित समाज से कोई संबंध न था। दलित कैसे बहिष्कृत थे इसका चित्रण इस आत्मकथा में मिलता है। जिसे लेखिका ने बताया है–" सडक के एक ओर बस्ती थी और दूसरी ओर बडे–बडे पक्के मकान थे यहां बडी जाति के लोग रहते थे, जो अच्छी नौकरी करते थे। बस्ती में अधिकांश अछूत थे, अनपढ और मजदूर। सडक के ओर गरीब,

अशिक्षित और सडक के दूसरी ओर अमीर पढे–लिखे। सिर्फ एक सडक उन्हें विभाजन करती थी परंतु जमीन आसमान का फरक था दोनों में।" यहां स्पष्ट होता है कि दलितों की बस्ती अलग होती थी यह तो शहर का वातावरण था इसलिए यहां (सडक) शब्द मिलता है, पर गाँव में दलितों की बस्तियां वहाँ होती है जहां सभी गाँव अपना मल–मूत्र खराब चिजें फेंक आता है एक तरफ होती है। इसी बदबू में उन्हें जीना पडता है। जो लोग (भेदभाव) नही है कहते, दलितों को भी समान ही मानते है उनके दलित बस्ती में चार दिन रहना पडे तो उनकी राय अपने आप बदल जायगी।

कौसल्या बैसंत्री दलित समाज में पैदा होने के नाते दलितों की आर्थिक स्थिति दयनीय थी, इसका उन्हें अनुभव है। इसलिए उनके माता–पिता को मजदूरी करनी पडती थी। दिन–रात मेहनत करनी पडती थी तब भी उनकी प्राथमिक आवश्यकताएँ पूर्ण न होती थी। लेखिका कहती है– "मेरे मा, बाबा नागपुर की एम्प्रेस मिल में काम करते थे।" लेखिका के माँ–बाप को अपनी जीविका के लिए कष्ट करना पडता था, मजदूरी करनी पडती थी। दलित समाज दबाया हुआ समाज था इसलिए इस वर्ग को शिक्षा से जानबुझकर वंचीत रखा गया। चूंकि शिक्षा ही ज्ञान का साधन है इसलिए यहां धर्म के नाम पर इन लोगों को अज्ञानी बनाया गया। धर्म जैसा कहैगा वैसा ही करना यह कर्तव्य था। दोहरा अभीशाप में भी इस समय के अस्पृश्य समाज में शिक्षा के प्रति उतनी जागृति नहीं दिखाई देती है। लेखिका ने अपने शब्दों में बताया है– "तब गाँव मे अस्पृष्य समाज में न लडकी, न लडका पढने जाते थे, न गाँव में स्कूल था। कुछ ही गाँवों में स्कूल थे। परंतु अस्पृश्य समाज में उस वक्त इतनी जागृति नही आई थी।" लेकिन लेखिका जब पढने के लिए पाठशाला जाने लगी तब जाती के कारण उन्हें अनेक सारी समास्याओँ का सामना करना पडा था। केवल दलित होने के कारण अमानुष सजा भोगनी पडी थी। लेखिका के उस बाल मन पर इसका क्या–क्या प्रभाव पडा होगा वह लेखिका ही जानती है। इस प्रसंग को वे अपने शब्दों में बताती है– "ब्राम्हणों की लडकियाँ बहुत अच्छे–अच्छे साफ– सुथरे कीमती कपडे पहनकर आती थी, उनकी तुलना में मेरे कपडे बहुत घटिया होते थे। मेरा बस्ता दो–तीन कपडों की पट्टियों को जोडकर बनाया गया होता था। वे अच्छे टिफीन बाक्स में (पीतल)का खाना लेकर आती थी। उसमें कभी पूरियाँ, कभी पराठे, कभी पोहे, कभी सूजी का हलवी, कभी कुछ पकवान रहता था। सफेद रोटीया जिसमे घी लगा रहता था। ...मैं दीवार की ओर मूँह करके खाना खाती थी ताकी कोई देख न ले। उनके खाने की खुशबु और खाना देखकर मैं ललचा जाती थी, सोचती थी ऐसा खाना मुझे कब नसीब होगा।"

इस तरह लेखिका ने अपने पाठशाला के अनुभवों को दुख के साथ बताया। एक तो गरीबी थी जो मनुष्य को हीन बनाती है। लेखिका का को भी ऐसे कई अनुभव आए है, जिसे उन्होंने बताने का प्रयास किया है– मैं अस्पृश्य हूँ, इसका मुझे बहुत दुख होता था, और मैं हीनता महसूस करती थी। कोई मुझे मेरी जाति न पूछ बैठे, इसका मुझे सदैव डर रहता था। इसलिए मैं अकेली चुपचाप खाने की छुट्टी में या स्कूल शूरि होने के पहले एक ओर बैठी रहती थी। लडकियों के साथ खेलने में भी डर लगता था। दूर अलग बैठकर उनका खेल देखती थी।. ...कुनबी लडकियों नें मुझसे पूछा कि मेरी जाति क्या है? मैंने डर के मारे कह दिया कि मैं भी कुनबी जाति की हूँ। उन्होंने पूछा कि तिलेले हो या खैरे? मुझे उनके उपजाति के नामों का पता चला। मैं मन में सटपटा गई थी, परंतु उन्हीं की बात सुनकर मैनें कहा कि मैं (तेल) कुनबी हूं।" इससे स्पष्ट होता है कि दलित समाज कितना हीन स्थिति में जी रहा था। जाति के मान पर इस समाज को अनेक प्रकार की यातनाएँ झेलनी पडती थी,

इसलिए डॉ. बाबासाहब नें ऐसे धर्म से बाहर निकल जाना पसंद किया। उन्होंने दलितों के साथ हजारों की संख्या में धर्मांतरण किया। उहोंने धर्म को अध्यात्मक धरातल पर देखा। उनका मानना था कि– "मैंने मेरा निश्चय किया है कि मैं धर्मांतरण करूंगा। इसमें शंका नही है। मेरा धर्मांतरण किसी भी ऐहिक लाभ के लिए नही है। मेरे धर्मांतरण के मूल में आध्यात्मिक भावना बगैर और कुछ नही है। हिन्दू धर्म मेरे बुद्धि को पटनेवाला नही है। हिन्दू धर्म मेरे स्वाभिमान को पटता नही।" इसी कारण बाबासाहब ने लाखों लोगों के साथ धर्मांतरण किया था।

गरीबी के कारण दलितों की प्राथिमक आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं होती थी। गरीबी एवं भूख ने दलितों की चेतना शक्ति का लोप कर दिया था। कठोर शास्त्रीय निर्योग्यताएँ दलितों पर थोपी गई थी वे अब थोडा समझने लगे है। दलितों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति में कोई खास सुधार नहीं हुआ है। दलितों की गिरी हुई सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का कारण जाति व्यवस्था है। जाति व्यवस्था आर्थिक शोषण का विषम यंत्र है, जिसमें निम्न जातियों को साधारण परिश्रमिक पर उच्च जातियों की सेवा तथा निम्नतर या बहिष्कृत जातियों को अन्य जातियों की पतित सेवा करने के लिए बाध्य किया जाता है। धार्मिक मान्यताएँ एवं शास्त्रीय सिद्धान्त तो मात्र इस आर्थिक शोषण को सामाजिक एवं वैचारिक आधार प्रदान करने के लिए बने है।

अछूत होने के कारण लेखिका के साथ शिक्षिका का भी कैसा व्यवहार होता है इसे लेखिका बताती है– "शिक्षिका मुझसे बहुत काम करवाती थी। कभी होटल से चाय मंगवाने भेजती, कभी कुछ सामान लाने भेजती। दूसरी लडकियों को नहीं भेजती थी। जांचने की कापियों का बडा बंडल मेरे हाथ में पकडाकर अपने घर पहुंचाने को कहती। मेरा अपना बस्ता और जाँचने की कापियों का बंडल लेकर आने से मेरे हाथ दुखने लगते थे।" इस तरह कि शारिरीक यातनाओं से भी दलितों को गुजरना पडता था। यह हुई पाठशाला के अंदर की बात लेकिन दलित स्त्री को समाज में भी दर्द सहना पडा था। दलितों को मंदिर में प्रवेश न था। मंदिर जाना मना था। इस प्रसंग को कौसल्या बैसंत्री बताती है– गणपति के मंदिर में सिर्फ ब्राम्हण या ऊँची जाति वाले ही जाते थे। अस्पृश्यों का मंदिर में प्रवेश नही था। मैं और मेरी बहिन आते जाते लोगों को पूजा–पाठ करते देखती थी। पंडितजी नारियल, गुड आदि का प्रसाद लोगों को देते थे। प्रसाद के लालच में मैं और मेरी बहन जब लोगों नहीं रहते तब जाकर गणपति जी की पाँच बार प्रदक्षिणा करती थी और घंटी बजाती थी। वहाँ के पुजारी को हमारे ऊपर शक नही हुआ। नहीं तो मार पड़ती।" इस तथाकथित व्यवस्था में दलितों को जानवरों से भी गया गुजरा देखा जाता था और आज भी उसके पदचिन्ह दिखाई देते है।

स्त्री होने के नाते समाज में और खुद के घर में कैसी दृष्टि थी इसे भी लेखिका नें बताने का प्रयास किया है। कौसल्या को अपने जीवन में बाहरी जगत के कटु अनुभव तो आए है लेकिन खुद के घर के अनुभव भी भयानक रहे है। जब उनकी शादी हुई तो वहां पर भी निराशा ही हाथ लगी। उच्च शिक्षित पति का उनके साथ कभी रिश्ता ठीक से नही चला। जिसे लेखिका ने बताने का प्रयास किया है– देवेन्द्र कुमार को पत्नी सिर्फ काना बनाने और उसकी शारीरिक भूख मिटाने के लिए चाहिए थी। दफ्तर में काम और लिखना यही उसकी चिंता थी।. .....देवेन्द्र के लिए पत्नी जैसे .....घर की नौकरानी है। इतना ही नही बल्कि स्वतंत्रता सेनानी देवेन्द्र स्त्री के संदर्भ में सामंत था करके लेखिका बताती है। प्रसुति के प्रसंग की याद करते कौसल्या अस्वस्थ, दस दिन से भूखी, लेखिका से देवेन्द्र का न मिलना, लेखिका द्वरा नौकर से उधार पैसे लेकर चुकाना आदि प्रसंग कौसल्या को तोडते है। इस संवेदनशील प्रसंग की याद करते कौसल्या अपने शब्दों में बताना चाहती है– "क्या ऐसे पति से

प्यार, श्रद्धा हो सकती है, इस प्रसंग की याद आते ही खून खोलने लगता है।"

इस प्रकार देवेन्द्र द्वारा कौसल्या को दी गई पीडा सम्पन्न पुरुष द्वारा स्त्री का शोषण मात्र है। 'दोहरा अभिशाप' में दलित नारी जीवन की कहानी किस प्रकार की दुखद घटन है पता चलता है, ऐसी घटनाएँ हर दलित स्त्री के साछ घटती रहती है। इस आत्मकथा में और भी ऐसी अनेक घटनाएँ है जिसको पढने से मनुष्य विचलित हो उठता है। कौसल्या को जब लडका पैदा हुआ उस समय उनके घर के सामने एक औरत को लडकी पैदा हुई, किन्तु उसका पति बहुत आलसी था। काम पर छुट्टीयाँ बहुत करता था इससे कई बार वे भुखे सोते थे। लेखिका बताती है– "जब जमनी को लडकी पैदा हुई तब उसके आदमी ने कहीं से पैसे उधार लाकर दो दिन जमनी को खाना खिलाया। तीसरे दिन खाने को कुछ नहीं था। वह मेरे घर आई, कहा कि खाने को कुछ नही है। मैनें उसे घर में पडी चावल की खुद्दी दी। राशन का जमाना था। घर में भी सिर्फ काम चलाने भर का रासन था। एक दिन उसने खुद्दी की खिचडी बनाकर खाई। दूसरे दिन के लिए कुछ नही था। खाना न मिलने के कारण उसकी छातियों में दूध नहीं आया और उसकी बच्ची की दूध के अभाव से मृत्यु हो गई।"

जाहिर है की ऐसी कई अमानवीय घटनाओँ का शिकार दलित स्त्री को होना पडा है। जिसे देखने के बाद मन विचलित हो उठता है। दलित स्त्री के आत्मकथाओँ में 'स्व' के चित्रण के साथ अस्पृश्य समाज, उसकी दरिद्रता, अज्ञान चित्रित हुआ है। जाति के कारण भोगा हुआ अपमानित जीवन, जाति के कारण भोगे हुए अत्याचार, पीडा इन सबका यथार्थ चित्रण इसमें है। सभी प्रकार की समस्याएँ यहां दिखाई देती है। इन सारी समास्याओं से दलित स्त्री को अगर मुक्त कराना है तो उसे भी राष्ट्रीय समस्या के रुप में मानना चाहिए। सभी तक शिक्षा को पहुंचाना चाहिए। तभी परिवर्तन हो सकता है।

9705999842
dr.mayadevi186@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 201-204

आधुनिकता बोध और इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यास

चौदरी गुणाकर
पीएच.डी. हिंदी, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना।

साहित्य युग और जीवन से निरंतर प्रेरणा ग्रहण करता है। युग में परिवर्तन होते ही जीवन में परिवर्तन आता है। इस परिवर्तन का साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वर्तमान युग विचार, पद्धतियाँ, चिंतन धाराएँ एवं संस्कृतियों का प्रभाव हमारे जीवन पर होता है। इन सभी को उजागर करने की क्षमता उपन्यास विधा में हैं। हिंदी साहित्य में उपन्यास ही एकमात्र ऐसी विधा है, जिसमें देश काल में व्याप्त राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक आदि प्रश्नों का चित्रण पूरी क्षमता के साथ हुआ है। उपन्यास सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। हिंदी उपन्यासों में जीवन के यथार्थ को गहरी संवेदनशीलता एवं सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक ज्ञान–विज्ञान और तकनिकी के फलस्वरूप उत्पन्न मानवीय स्थितियों का साक्षात्कार आधुनिकता है।

प्रगतिशील और मूल्यवादी विचारक आधुनिकता बोध को मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष में बाधक मानते हैं। उनके अनुसार आधुनिका यांत्रिकीकरण के के समक्ष अपनी हीनता और व्यर्थता के बोध से आक्रांत मनुष्य बेहतर जीवन निर्माण के लिए संघर्ष नहीं कर सकता। इसलिए विडंबना, विसंगति, अजनबीपन, नैराश्य, संत्रास, कुंठा आदि को आधुनिकता बोध का पर्याय मान लेना उचित नहीं है। निराशा, ग्लानी, उब व्यर्थता बोध आजा की जावन सत्य है, यह स्वीकार कर लेने से मनुष्य की संकल्प की शक्ति का ह्रास होता है और वह नियति का दास बनकर रह जाता है, इसलिए आधुनिक प्रगतिशील विचारक इस आधुनिकता बोध को महत्व दिया है। मुक्तिबोध का कहना है कि– "अन्याय के खिलाफ आवाज बुलंद करना आधुनिक भावबोध के अंतर्गत है। आधुनिक भावबोध के अंतर्गत यह भी है कि मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष में हम और भी दत्तचित हों तथा हम वर्तमान स्थिति को सुधारें, नैतिक ह्रास को थामें, उत्पीड़ित मनुष्य के साथ एकात्म होकर उसकी मुक्ति की उपाय योजना करें।" आधुनिक बोध का मुख्य उद्देश्य स्वतंत्रता की खोज करना है। आधुनिकता बोध समस्या का ज्ञान है, अन्याय के विरूद्ध बुलंद आवाज है।

हिंदी उपन्यास का इतिहास ज्यादा लंबा नहीं है किंत आधुनिकता के बोध से यह पर्याप्त रूप से संपन्न है। आधुनिकता क्या है? दरअसल यह एक जीवन बोध है, जिसमें सवालों की निरतंरता है और जिसमें स्वीकृत मूल्य अस्वीकृति के साक्ष्य तो बनते हैं किंतु फिर स्थापित हो जाते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर युग में स्त्री जागरण और स्त्री शिक्षा का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ है। इसके परिणास्वरूप उपन्यास ही साहित्य के हर क्षेत्र में समृद्धि प्रदान करनेवाली इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासकारों की एक सशक्त पीढ़ी का उदय हुआ है। समय की विषत परिस्थितियों के फलस्वरूप कई सशक्त उपन्यासकारों का उदय

हुआ है। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, वैयक्तिक, पारिवारिक आदि सभी विषयों पर लिखा है। इक्कीसवीं सदी की विभिन्न समस्याओं, विसंगतियों, पारिवारिक विघटन, छुआछूत, दहेज प्रथा, अवैध मातृत्व, वेश्यावृत्ति, अनाचार, भ्रष्टाचार, अतर्जातीय विवाह, धार्मिक पाखंड आदि को अपने उपन्यासों का वर्ण्य विषय बनाया है। आधुनिकता किसी पूर्व व्यवस्था की तुलना में अधिक गतिशील है। यह एक समाज है, अधिक तकनीकी रूप से संस्थाओं का परिसर है, जो किसी पूर्व संस्कृति के विपरीत अतीत के बजाए भविष्य में जीता है। आधुनिकता एक प्रगतिशील बल की एक निर्देशित है, जो मानव जाति को अज्ञानता और तर्कहीनता से मुक्त कराने का वादा कराती है।

सारा राय कृत 'चीलवाली कोठी' उपन्यास में भाषा किसी भाव की तरह या किसी अहसास की तरह या किसी गूँज की तरह महसूस होती है। यह उपन्यास अतीत के गौरव और वर्तमान की दुर्दशा का हतभ्रम कर देने वाला बयान है। यहाँ एक उदास लय है जो चीलवाली कोठई के हर बाशिंदे के व्यवहार में शामिल दिखाई देता है। हवेलियां, कोठियां, किले, महल और स्मारक। वर्तमान में होने के बाद भी विगत को भी जी रहे होते है। यही चीलवाली कोठी का भी सच है। चीलवाली कोठी की शिकस्तगी प्रतीक की तरह है। ऊपरी तौर पर सामान्य से दिखनेवाले उपन्यास की कथा जटिल कथा है, जिसे उपन्यासकार बड़े ही सलीके से साधा है।

वंदना शुक्ल ने कम समय में ही कथाकार के रूप में अपनी पहचान बना ली है। वंदना शुक्ल का प्रथम उपन्यास 'मगहर की सुबह' है। इस उपन्यास में ग्रामीण और कस्बाई जीवन के रंग अपनी पूरी आभा के साथ मौजूद है। उपन्यास में मुख्यतरू ग्रामीण जीवन है। इस गांव में एक सरकारी विद्यालय हुआ करता था। मिसिर जी की प्राथमिक शिक्षा दीक्षा इसी सरकारी विद्यालय में संपन्न हुई। जाड़ों और गर्मियों के दिनों में कक्षाएँ खुले मैदान में पेड़ों के नीचे या धूप लगती थी। गांव में एक मात्र सिनेमा घर जिसकी बदरंग जर्जर दीवारों ने अब तो गिनना भी छोड़ दिया है कि उन्होंने कितनी तथा कैसी–कैसी बारिशें झेलीं हैं। कितने बगलगीर घने पेड़ों ने उनकी छतों पर अपनी पुरानी पत्तियाँ झाड़ी। कितनी झड़ीदार बारिशों के पानी को उसकी छतों की बंद मोरियों ने उधड़े फर्श को पिला दिया। अब तो उनकी सूरत ऐसी हो गयी थी कि मानों दीवारों पर गांव डाडीटालो का इतिहास लिखा हो। उपन्यासकार भगवानदास मौरवाल ने अपने उपन्यास 'नरक मसीहा' में लूटतंत्र से जुड़े ऐसे ही गैर सरकारी संगठनों की भीतरी दुनिया की कड़वी सच्चाई को समाज के सामने रखा है। ऐसी दुनिया का सच जो गरीबों, मजलूमों नाम पर ठगी की तिजारत करती है। ऐसी संस्थाओं को साम्राज्यवादी राष्ट्रों से तो सहायता मिलती ही है। विभिन्न राष्ट्र के नौकरपेशा लोग भी अपने वेतन से पैसे बचाकर आर्थिक सहोयग करते हैं। इन संस्थाओं का जो जाल बिछा हुआ है उसको कैसे काटा जाय और उसका दुरुपयोग कैसे कम किया जा सके, यह सोचनीय है। उपन्यास में कम्युनिस्ट नेता सोहनलाल प्रचंड और गांधीवादी नेता गंगाधर आचार्य तमाम सामाजिक विसंगतियों के विरोध में संघर्ष करते हैं। परंतु उनके विरोधी स्वर नक्कारखाने में तूती बन जाते हैं और संगठित नहीं बन पाते हैं। पढ़ते समय उपन्यास प्रथम दृष्या लगता है कि उपन्यासकार पूरा ध्यान एनजीओ की पूरी दुनिया के छद्म को दर्शाने पर है।

युवा कथाकार उमाशंकर चौधरी का पहला उपन्यास 'अंधेरा कोना' हमारे समय में विकास और लोकतंत्र के नाम पर जारी विद्रूपताओं का विश्वसनीय आख्यान प्रस्तुत करता है। लोकतंत्र आधुनिक समाज की बुनियादी ताकत है और विकास इस समाज में किंचित सर्वाधिक लोकप्रिय अपेक्षा। किंतु प्रश्न यह है कि क्या वास्तव में

लोकतंत्र का अर्थ वही है जो जब आए दिन अपनी राजनीतिक व्यवस्था में देखते हैं तथा विकास का मतलब क्या सड़क, पानी और बिजली के लोकलुभावन नारे तक सीमित है? कहने की आवश्यकता नहीं है कि जिस लोकतांत्रिक समाज में हम रहते है, उसकी अनेक अपर्याप्तताएँ किसी से नहीं छिपी है। धनबल और बाहुबल के सामने जनबल को अकेले पड़ते कई बार देखा है। जाहिर है कि वह सहर नहीं है जिसकी उम्मीद स्वतंत्रता की लड़ाई के समय की गई थी।

गीताश्री कृत 'हसीनाबाद' उपन्यास मुख्यतरू तीन स्त्रियों की दासतां है। सुंदरी देवी, रज्जो और गोलमी कुमारी। हसीनाबाद एक ऐसी बस्ती है, जिसका पहले कभी नामोनिशान नहीं था। ठाकुरों के माध्यम से अपनी अय्याशियों के लिए बसायी गयी वह गुमनाम बस्ती जहाँ देश भर से चुन–चुनकर हसीनाएँ रखी गयी थी। इन हसीनाओं में नाच–गाने के अलावा कई हुनर थे। उन्हें बच्चे तो हैं पर लावारिस है और उनका कोई भविष्य नहीं है। बहुत अजीब था यह हसीनाबाद। हसीनाओं से आबाद इस नगर की हसीनाएँ अपने बेहिसाब दर्द में बर्बाद थी। सुंदर देवी इसी हसीनाबाद की एक हसीना है। सुंदरी देवी सामंती सत्ता में दबी कुचली वह स्त्री है जो हर सुबह अपने होने को तलाशती है। उसके जीवन में हर रिश्ता अवैध है। जिसकी हर सांस ठाकुर के रहमों कर पर अटकी हुई है। जिसे अपना भविष्य अंधकारमय दिखता है। सुंदर देवी अपनी बेटी के पैदा होने के बाद से ही उसके भविष्य के प्रति आशंकित रहती है। वह अनजान भय डरी रहती है। 'बेटी क्या करेगी, कहाँ जायेगी।' 'क्या वह इस देह के बाजार में एक और हसीन देह व्यापार के लिए तैयार कर रही है?' वह मन ही मन ठान लेती है कि जो जीवन उसके जीया है, अपनी बेटी को ऐसा दयनीय जीवन जीने नहीं देगी। अपनी बेटी को पढ़ायेगी और विवाह करेगी। इस सपने को हकीकत में बदलने के लिए अपने भय पर विजय पाकर अपने बेटी गोलमी के भविष्य के लिए अनजान व्यक्ति के साथ अनजान सफर पर निकल पड़ती है।

नौकरशाही में जाति–धर्म को केंद्र बनाकर जिस तरह के राजनीतिक षड़यंत्र किए जाते हैं वह बेहद चिंतनीय है। उपन्यासकार ने जिस चेहरे की तालश की है वह अब गायब हो गया है, उस स्थान पर एक नौकरशाह बैठ गया है, इसलिए वे उपन्यसा में कहते हैं– "चिड़ियाघर के जानवर बेहतर कौम हैं।"[1] ये जीनियस है इसलिए इनमें हिप्पोक्रेसी दिखावा है कि सबसे बड़ी मिसाल ये जीनियस हैं। इस विभाग की अधिकारों की स्थिति नेताओं से होती हुई सी.बी.आई. तक से प्रभावित है। वह अपने से कोई निर्णय नहीं ले पाता है। उसे अनेक प्रकार से दबाव में रखकर काम करवाया जाता है। उपन्यासकार गोविंद मिश्र ने लिखा है कि– "इस विभाग के अफसर की स्थिति जाल में फंसी मकड़ी जैसी है– इस तरह पब्लिक, उधर स्टाफ, उसे हमेशा टंगरी मार देने के चक्कर में, इधर सी.बी.आई. उसकी हर चीज को शक से देखता हुआ, इधर कमिश्नर एक खास खुशामद की उम्मीद करता हुआ। इधर से बोर्ड उस पर हिदायतें पर हिदायतें लादता हुआ।"[2] आला अधिकारियों में हैराकी व्याप्त दिखाई देती है, वह भी बहुत बड़े स्तर पर। उपन्यासकार की यह चिंता है कि नौकरशाही में भारतीय यूरोपियों से क्यों नहीं सीखते है। जहाँ पर समानता का आग्रह है।

मधु कांकरिया का उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' में एक ऐसे परिवार का चित्रण है जिसका मुखिया और पुत्र की मृत्यु हो जाती है। इनके पश्चात माँ पर दो बेटियों की जिम्मेदारियाँ आ जाती है। समाज के बिना पुरुषवाले घर की स्थिति कुछ खान नहीं हेती है। इसलिए माँ अपनी दोनों बेटियों को सांसारिक बंधनों से मुक्त कर साध्वी बन जाने के लिए कहती है। माँ अपने बेटियों को लेकर जैन धर्म की दीक्षा लेना चाहती है। एक विधवा स्त्री और

उसकी दो बेटियों की यह संघर्ष की कहानी है। यह उपन्यास अनेक सामाजिक और पारिवारिक विकृत्तियों को उजागर करता है। अंत में स्त्री संघर्ष के लिए उपदेशात्मक कार्य करता है। उपन्यासकार मधु कांकरिया की यह एक अत्यंत संवेदनशील कृति है। परिवार के मुखिया और पुत्र की ऋषि की असामयिक मृत्यु हो जाने पर माँ पुर्णामा देवी पर सारी जिम्मेदारी आ जाती है। उसकी दो बेटियाँ हैं और घर में कोई पुरुष नहीं है, जो परिवार को सुरक्षा प्रदान कर सके। उसका विश्वास है कि इस संसार में रोटी तो मिलेगी किंतु उसकी कीमत बोटी देकर चुकानी पड़ेगी। वह कहती है– "घर में कोई मर्द होता तो क्या ऐसे बोलने की हिम्मत कर सकता था वह? यह आदमियों की दुनिया है जो रोटी तो देगी पर बोटी नोच लेगी। फटी चदरी–सा यह घर अब न तुम्हारे संभले–संभालेगा और न मेरे।"[3] आर्थिक विपन्नता के कारण माँ बेटियों को लेकर असुरक्षा की भावना से इस सीमा तक ग्रसित है कि वह अध्यात्म को ही अपनी बेटियों का मुक्तिमार्ग समझने लगती है।

समाज में जब यथार्थ, आदर्श और विचार के बीच, विचार और कार्य के बीच अंतर्विरोधों की संघर्षमयी दृष्टि होती है। उपन्यास भी एक मनोवृत्ति है, जिसका मूल विरोधाभास में निहित है। मन के प्रतिकूल जब कोई भी स्थिति आती है तो विरोधाभास जागृत होता है। औद्योगीकरण, बौद्धिकता के अतिरेक, यंत्रीकरण और अस्तित्ववादी पाश्चात्य विचारधाराओं के फलस्वरूप आधुनिकता की जो स्थिति उत्पन्न हुई। उसका प्रतिबिंब साहित्य की अन्य विधाओं के समान उपन्यास पर भी पड़ा है। इन स्थितियों के कारण व्यक्ति की अपनी पहचान और अस्तित्व खो गया। इस खोए हुए व्यक्तित्व की खोज का नाम आधुनिकता है। वास्तव में वर्तमान वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के फलस्वरूप मानव मन और परिवर्तित मानव बोध तथा यगुबोध की ऐतिहासिक परंपरा के साथ समन्वय स्थापित कर जीवन के नये क्षितिज स्पर्श करना ही आधुनिकता है।

संदर्भ :-

1. गोविंद मिश्र – वह अपना चेहरा, पृ. सं. 10
2. गोविंद मिश्र – वह अपना चेहरा, पृ. सं. 25
3. मधु कांकरिया – सेज पर संस्कृत, पृ. सं. 50

मो.नं. 8639534672

ईमेल – chgunakar@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 205-208

समकालीन हिंदी उपन्यासों में चित्रित सामाजिक यथार्थ

चंद्रगिरी राजू
पीएच.डी. हिंदी, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद।

साहित्यकार युग दृष्टा और युग सृष्टा होता है। वह अतीत के आधार पर वह वर्तमान को परखता है तथा भविष्य की पीढ़ी के लिए आदर्श छोड़ देता है। समाज जीवन और उनकी समस्याओं को समझने हेतु साहित्य एक प्रमुख माध्यम है। लेखक अपनी कृति में उच्च, मध्य और निम्न वर्ग के जीवन का समग्र चित्रण करता है। समाज एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति अपने जरूरतों और उद्देश्यों की पूर्ति करता है। साहित्य की नींव समाज है। जिस प्रकार की आवश्यकताएँ होती हैं, उसी प्रकार का साहित्य लिखा जाता है। अच्छा साहित्य और अच्छा समाज मिलकर ही मावव जीवन उन्नत बनता है। मानव समाज हमेशा वर्गों में विभाजित रहा हैं। सामाजिक परिवर्तन और समाज की उन्नति के साथ वर्ग के भेद भी बदलते गए हैं। सामाजिक वर्ग से तात्पर्य एक ऐसा वर्ग जो समाज की आर्थिक असमानता के कारण अस्तित्व ग्रहण करता है। समाज में तीन वर्ग होते हैं एक अत्याधिक धनी वर्ग, दूसरा अत्याधिक मध्य वर्ग और तीसरा अत्याधिक गरीब वर्ग यानी निम्न वर्ग। वर्ग का मूलाधार अर्थ और व्यवसाय है। समाज का आधार अर्थ–धन–संपत्ति है। उच्च वर्ग पूंजीपति धनवान है। यह वर्ग आर्थिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध होता है। अन्य दो वर्गों की तुलना में इस वर्ग का जीवन ऊंचे दर्जे का होता है। अपने जीवन में भौतिक सुविधाओं का लाभ यह वर्ग उठाता है। समाज में इन लोगों की संख्या बहुत कम होती है। धन–संपत्ति प्राप्त करने के लिए यह वर्ग अन्य वर्गों का शोषण करता है। सभी उत्पादनों के साधनों पर इनका पूरा अधिकार होता है।

'सवित्तरी' उपन्यास की पात्र सवित्तरी गरीब रिक्शा चलानेवाला शिवचरण की बेटी है। वह सुंदर है और स्वाभामिनी भी है। घर की आर्थिक स्थिति दयनीय होने के कारण छोटी बहन गणेशी को लेकर पाँच–छह घंटों में महरी का काम करती है। जिस घर में आती है, वहाँ पर लोगों की नजरों से उन्हें बचना पड़ता है। ब्राह्मण पंडित जनार्दन की पत्नी बीमारी के कारण अस्पताल में भर्ती है। सवित्तरी उनके घर में काम करती है। एक दिन सवित्तरी को देखकर उसके साथ जबरदस्ती करने की कोशिश करता है। सवित्तरी उन्हें झिडककर स्वयं को छुड़ाकर कहती है– "बाबू साहेब, ये सब अच्छी बात नहीं। आप तो देवता आदमी है। इस जैसी नाचीज औरत को छूना आपको शोभा नहीं देता।"[1] यहाँ पर उपन्यासकार ने निम्न वर्ग की स्त्री पर उच्च वर्ग द्वारा होनेनवाले शोषण को दर्शाया है। उच्च उर्ग निरंतर निम्न वर्ग का शोषण करता आया है।

ममता कालिया कृत 'दौड' उपन्यास में उच्च वर्ग का चित्रण है। उपन्यास के पात्र अभिषेक और उसकी पत्नी राजुल उच्च वर्ग का जीवन जीते हैं। उपन्यासकार ने लिखा है– "पवन तुम लकी हो, अभी तुम्हारी जान

को न बीवी का झंझट है न बच्चे का। राजुल मेरा क्या झंझट है तुम्हें? मैंने तुम्हें पहले ही कहा था मैं अभी बच्चा नहीं चाहती। तुमकों ही बच्ची पड़ी थी।"[2] बच्चे के प्रति राजुल की संवेदनशीलता को उपन्यासकार ने दर्शाया है– "आजकल तो डिंक्स का जमाना है डबल इनकम नो किड्स (दोहरी आमदनी बच्चे नहीं) सेंटीमेट्स के चक्कर में फंस गई।"[3] बाजारवादी होड़ और बुद्धि विकास की आड़ में बच्चों का बचपन छीनकर संवेदनशील बनाया जा रहा है। इन परिस्थितियों के कारण उनका अस्तित्व संकट में पड़ गया है। बच्चों के लिए सबसे बुरी बात यह है कि उन्हें खेल–खिलौनों में ही उलझा जा रहा है।

कृष्णा सोबती कृत 'दिलो दानिश' उपन्यास में एक सामंती संयुक्त परिवार का चित्रण है। महानरग दिल्ली के माहौल में सामंती सभ्यता को दर्शाया है। इस परिवार में स्त्री को पत्नी बनने के बाद भी पति के विवाहेतर संबंध पर शिकायत करने का अधिकार नहीं है। समाज भी उसे गलत नहीं मानता है। कमानेवाले पुरुष के ऐसे कृत्यों में स्वीकृति भी दी जाती है। इस उपन्यास का एक पात्र वकील साहब कहते है कि– "हाँ बाबाजी बहुत कुछ सिखा गये। जो कायदा उनका था वही हमने अपनाया था। किक्सा कोताह इतना ही कि बड़े मुकदमों की कमाई बीबी के हाथ और छोटे–मोटे की खुशनुमाई घर के बाहर।"[4] आज का समाज तेजी के साथ परिवर्तन से गुजर रहा है। आज संयुक्त परिवार भी टूटते जा रहे थे।

संजीव के 'सावधान नीचे आग है!' उपन्यास में पूंजीपति वर्ग धन की लालसा में इतना लिप्त है कि उसे निम्न वर्ग के जीवन की कोई चिंता नहीं है। खदान में पानी आने पर हजारों की मजदूरों की डूबकर मृत्यु हो गयी परंतु खदान मालिक को इस घटना से कोई सरोकार नहीं है। मजदूर अपनी जान बचाकर भागने की कोशिश करते हैं परंतु पानी इतना है कि वे डूब जाते हैं। हजारों मजदूरों की खदान में मृत्यु हो जाती है। एक मजदूर खदान को देखकर कहता है– "सालो, हम बोलते रह गए कि काम नहीं करेंगे, नहीं करेंगे इत्ता पानी निकल रहा है, मगर साले ने गुल्ली की ठंसनी दिलवा ही दी और चमचे पाठक राम...? खुद तो गए ही ले गए हजार और बेकसूर आदमियों को।"[5] निम्न वर्ग अपनी गरीबी के कारण जान पर खेलकर किसी भी क्षेत्र में काम करने लगते हैं। इन मजदूरों की मृत्यु के बाद उनके परिवार को मुआवजा तक नहीं दिया जाता है। मरनेवाले मजदूरों की संख्या कम बतायी जाती है। पूंजीपति अपने बचाव में सबूतों को मिटाने के लिए मुकुल और सर्वेयर मणीद्र को मार देते हैं। जाँच कमीशन का मुंह बंद कर दिया जाता है।

उपन्यासकार ने यही दर्शाया है कि किस तरह उच्च वर्ग के पूंजीपति झारखंड के धनबाद जिले के चंदनपुर गांव के कोयला खदान के मजूदरों का शोषण करते हैं। यहाँ यही स्पष्ट होता है कि आर्थिक विपन्नता में निम्न वर्ग को विवशता में जीवन यापन करना पड़ता है। 'पांव तले की धूप' उपन्यास में निम्न वर्ग के लोग कोयला खदानों में लोहे के कारखानों में मजदूरी कर अपनी आजीविका चलाते हैं। कोयला खदान और कारखानों का निर्माण इन मजदूरों के जमीन पर ही हुआ है। यहाँ के निम्न वर्ग के लोग आर्थिक विपन्नता मे गुजर–बसर कर करते हैं। उपन्यासकार ने लिखा– "वर्षों पहले यहाँ डोकरी और मकरा नाम के दो गांव हुआ करते थे। किसी ने फूंक मारकर उड़ा दिया था उन्हें। कहाँ गए थे विस्थापित लोग? उड़ी हुई गर्द की तरह जहाँ–तहाँ थिर्रा रहे होंगे लोग।"[6] निम्न वर्ग के पूंजीपति अपनी धन की लालसा से वहाँ के मजदूरों को विस्थापित करते हैं। जमीन के बदले उन्हें वादे के मुताबिक नौकरी नहीं दी जाती है और न ही मुआवजा। औद्योगिक व भूमंडलीकरण विकास के नाम पर वहाँ के निवासियों को तहस–नहस कर दिया जा रहा है।

इस उपन्यास का एक पात्र फिलिप इस स्थिति और वहाँ के लोगों की वेदना के बारे में कहता है कि यह धरती सोना उगलती है और इस सोने की धरती के हम कंगाल संतान है। युवा पीढ़ी असामाजिक तत्वों के विरोध में खड़े होने लगी हैं। अब शोषण को सहने के लिए तैयार नहीं है। फिलिप कहता है कि– "मुझे मत रोकिए सर! फिलप उत्तेजना में बुरी तरह हाँफ रहा था, ये जंगल हमारे होते तो हमारी सुनी जाती। ये जंगल हमारे होते तो इसे सुक्खू सिंह न कटवा पाते, न ही सरदार ऐसे बाहर भेज पाते। हमारे होते तो, रोकने पर पुलिस हमीं को न पीटती। यह पूरा झारखंड अभयारण्य है सर! अभयारण्य इन सालों का और हम इनकी खुराक!"[7] निम्न वर्ग के पिछड़ेपन का कारण अशिक्षा है।

उषा प्रियवंदा कृत 'पचपन खंभे लाल दीवारें' उपन्यास की सुषमा की माँ अपनी बेटी के लिए धन कमाना चाहती है। नीरू के विवाह को लेकर वह बहुत चिंतित है, जो सुषमा की की छोटी बहन है। माँ सुषमा से कहती है कि– "तुमसे हमेशा कहा कि नीरू की शादी का बंदोबस्त करना है, तुमने कभी ध्यान ही नहीं दिया। मेरे पास आज दस हजार होते तो खट् से नीरू की शादी का बंदोस्त करना है, तुमने कभी ध्यान ही नहीं दिया। मेरे पास आज दस हजार रुपये होते तो खट् से नीरू की शादी हो जाती।"[8] इस उपन्यास की नायिका सुषमा विवाह की उम्र निकल जाने पर अपनी माँ व बहनों के जीवन को पालने की एक मशीन बन जाती है और परिवार के सारे संबंध अब उसे काटने दोड़ने लगते हैं। सुषमा के दो भाई और दो बहनें हैं। पिताजी बीमार रहते हैं। इन सब का पालन–पोषण सुषमा के कंधे पर आता है। नीरू का विवाह और तीनों भाई–बहनों की पढ़ाई, पिताजी का इलाज आदि पर बहुत खर्च होता है। सुषमा कहती है– "तेरे सुख और भविष्य का उत्तरदायित्व मुझ पर– मैं सब करूँगी।"[9] सुषमा के जीवन की समस्या आज के स्त्री के जीवन की मुख्य समस्या है। वह अपने पारिवारिक परिस्थितियों से वशीभूत और अपनी बौद्धिकता के कारण किसी पुरुष को पसंद न कर पाने के कारण विवाह नहीं कर पाती। जब उम्र निकल जाती है। स्त्री आज पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर हर क्षेत्र में अपने अस्तित्व को साबित कर रही है। सुषमा मध्य वर्ग की स्त्री है। लेखिका ने उसकी त्रासदी को मार्मिक रूप से दर्शाया है।

मिथिलेश्वर का उपन्यास 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास में किसान की त्रासदी का चित्रण मार्मिक रूप से चित्रित है। खेत मालिक बलेसर का बेटा पिता से कहता है कि– "खेती अब घाटे का सौदा हो गयी है पिता जी। खेती से जुड़े रहने में अब कोई लाभ नहीं। खेती में जितना श्रम, संघर्ष और और खर्च है, उसकी तुलना में उपार्जन नगण्य, उल्टे, खेती की परेशानियों से जीवन का सुख–चौन भी गायब, निरंतर असुरक्षा और आतंक के माहौल में रहना। हमें स्वयं रहते खेतों को बेचकर अपनी पूँजी शहर में स्थानांतरित कर लेनी चाहिए। अभी खेतों के खरीदार हैं भी। समय जिस तेजी से बदल रहा है कि आगे दिनों में खेती के खरीदार भी नहीं मिलेंगे।"[10] किसान वर्ग की त्रासदी के मूल में अनेक कारण हैं जैसे आज कृषि उपज लागत के अनुसार आमदनी का न होना। किसान अपने परंपरागत कृषि साधनों से विमुख होते जा रहे है। अब उनके हल–बैल का स्थान ट्रैक्टर ने लिया। उपज बढ़ाने के लिए रासायनिक खाद, किटनाशक, खरपतवार नाशक दवाओं का प्रयोग करने लगा है। परंपरागत बीजों का स्थान महंगे हाईब्रिड़ बीज ने लिया है।

मिथिलेश्वर के 'झुनिया' उपन्यास का पात्र हरिहर का जीवन पूरी तरह से मजदूरी पर आधारित है। उसे रोजी–रोटी के लिए जमींदार के खेत में काम करना पड़ता है। हरिहर के घर में साधन सामग्री का अभाव है। उसके घर में संपत्ति के नाम पर केवल फूटी हंडी, बर्तन और टूटी मड़ई बर्तन हैं। उपन्यासकार ने उसकी दुर्दशा

को बारे में लिखा– "क्या करे हरिहर? टूटी मड़ई और फूटी हुई हंड़िया में कुछ भी छिफाया नहीं जा सकता। गरीबों की हालत भी ऐसी ही होती है। उनका घर एक टूटी हुई मड़ई और उनकी जिंदगी एक फूटी हुई हंडिया होती है।"[11]

उपन्यासकार ने हरिहर की आर्थिक स्थिति का चित्रण मार्मिक रूप से किया किया है। गांव में गरीबी के कारण शिक्षा का अभाव है। उपन्यासकार ने हरिहर के माध्यम से निम्न वर्ग के जीवन की त्रासदी पाठकों के सामने रखा है।

संदर्भ :-

1. शैलेश मटियानी – सवित्तरी, पृ. सं. 157
2. ममता कालिया – दौड, पृ. सं. 29
3. ममता कालिया – दौड, पृ. सं. 30
4. कृष्णा सोबती – दिलो दानिश, पृ. सं. 39
5. संजीव – सावधान नीचे आग है!, पृ. सं. 167
6. संजीव – पांव तले की धूप, पृ. सं. 24
7. संजीव – पांव तले की धूप, पृ. सं. 98
8. उषा प्रियवंदा – पचपन खंभे लाल दीवारें, पृ. सं. 28
9. उषा प्रियवंदा – बचपन खंभे लाल दीवारें, पृ. सं. 80
10. मिथिलेश्वर – तेरा संगी कोई नहीं, पृ. सं. 13
11. मिथिलेश्वर – झुनिया, पृ. सं. 10

मो.नं. 9989717476

ईमेल – raju.openminds@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 209-214

मानस की लोकप्रियता

डॉ0 रेखा चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), ए0के0पी0 (पी0जी0) कॉलिज, खुर्जा।
मनोज कुमार तौमर
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), जनता (पी0जी0) कॉलेज, एटा।

रामचरित मानस की रचना सन् 1574 ई0 को अयोध्या में शुरू हुई। इसकी रचना पूर्ण होने में दो वर्ष और सात माह का समय लगा। यह एक ऐसा ग्रंथ है जो भारतवर्ष में यकायक सर्वाधिक लोकप्रिय हो गया। यह जनता का संस्कार बन गया। आज घर–घर में इसकी एक प्रति अवश्य मिल जायेगी। यह भक्ति आंदोलन का सबसे लोकप्रिय ग्रंथ बन गया। इसमें मर्यादा पुरुषोत्तमराम की जीवन कथा है। उनकी कथा के माध्यम से तुलसीदास ने भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, भक्ति, और कवित्व के उत्कृष्ट तत्वों को इसमें शामिल किया गया है। कह सकते हैं कि मानस रचना काल के समय तक की पूरी भारतीय परम्परा का सार है। इस ग्रन्थ की उपलब्धता के बाद किसी अन्य धार्मिक ग्रंथ की आवश्यकता नहीं रह जाती है। मेरा शोध इस बात पर है कि वह सूक्ष्म कारक कौन से हैं, जिन्होंने मानस को इतनी लोकप्रियता प्रदान की। अन्य भी कई ग्रंथ हैं, जिनमें मानस से बेहतर विषय वस्तु और महाकाव्यात्मकता है। लेकिन लोकप्रियता में मानस ने सबको पीछे छोड़ दिया।

मानस की लोकप्रियता का सबसे बड़ा आधार इसकी भाषा है। मानस की भाषा अवधी भाषा है, जो भक्तिकाल की दूसरी महत्वपूर्ण भाषा है। अवधी भाषा का ब्रजभाषा जितना प्रसार नहीं हुआ था लेकिन सूफी काव्य और राम काव्य की रचना अवधी भाषा में ही हुई। सूफी काव्य यह दर्शाता है कि अवधी में लोकप्रियता के गुण थे और अवश्य ही इसकी प्राचीन परम्परा रही थी। धार्मिक दृष्टि से अवध क्षेत्र से राम का सम्बन्ध होने के कारण रामकाव्य की रचना भी अवधी भाषा में ही होनी थी। मानस की भाषा अवधी है, संस्कृत नहीं है। इसी बात ने भारतीय जनमानस में हलचल पैदा कर दी। सुषुप्त चेतनाओं में जाग्रति का ज्वर उत्पन्न हो गया। संस्कृत भाषा न होना ही इसकी खासियत बन गई। पहली बार किसी क्षेत्रीय भाषा में भारतीय संस्कृति के अब तक के सम्पूर्ण निष्कर्षों की रचना हुई। मानस की लोकप्रियता का यह सबसे बड़ा आधार बन गया। अब पाठक को इधर–उधर भटकना नहीं था, उसको वेदों, पुराणों और स्मृतियों की उलझनों में फँसना नहीं था। तुलसी ने मानस के रूप में सम्पूर्ण ज्ञान की गंगा घर–घर तक सुलभ करा दी। यह ज्ञान की गंगा थोपी हुई नहीं है. इसमें कर्कशता नहीं है, बल्कि यह सुरुचिपूर्ण है और लोकमंगलकारी है, सर्वसुलभ है। मानस कहती है :–

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहं हित होई।।

भारतवर्ष में ज्ञान और आम जनता के मध्य हमेशा से रुकावटें डाली जाती रही हैं। जनता की भाषा को कभी महत्व नहीं मिला। परन्तु जब–जब जनाकांक्षाओं को समर्थन मिला, उसे हाथों–हाथ जनता ने अपने गले का हार बना लिया। तुलसी ने भाषा की समस्या को समझा और उसका निराकरण किया वह संस्कृत के भी प्रकांड विद्वान थे, चाहते तो मानस की रचना संस्कृत में भी कर सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया और अवधी भाषा का चुनाव करके भगवान राम और जनता की भावनाओं का आदर किया। पहली बार ऐसा भारतीय हिन्दी भाषी सपूत पैदा हुआ, जिसमें अपनी भाषा के प्रति गर्व था तथा जिससे वह क्षेत्रीय भाषा में ज्ञान की गंगा बहाने में सफल हुआ। वह समझ रहा थाः–

निज भाषा उन्नत अहै, सब उन्नत को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटे न हिय को सूल।।

मानस की रचना दोहा चौपाई से निबद्ध कड़वक शैली में की गई है। उस समय दोहा की शक्ति को निर्गुणवादी संतों ने खूब पहचाना था। होने वाले सत्संगों में उनके द्वारा दिये जाने वाले प्रवचनो में दोहा का लोहा मानने को जनता मजबूर हो जाती थी। यह वही दोहा है, जिससे रीतिकाल में बिहारीलाल ने फारसी छंद भोर का मुकाबला किया था और रीतिकाल की सर्वश्रेष्ठ रचना 'बिहारी सतसई' की रचना की थी। इसी दोहा को सत्सगों में सुनकर जनता की ताली की गड़गड़ाहट पंडाल गूंज उठते थे। उधर चौपाई छन्द में सूफी कवियों ने छककर प्रेमरस भरा था। चौपाई की प्रसिद्धि के बहुत कारण है यथा यह एक औसत लम्बाई का छन्द है, न छोटा न बड़ा। इसमें सुर, लय, ताल के बंध के लिए अधिक अवसर मिलते हैं, इसे गाने में बड़ा आनन्द आता है। चौपाई प्रेम और शक्ति दोनों का छंद है। यह सौम्य और रौद्र दोनों भाव का छन्द है। प्राचीन काल में यह चौपाई छन्द था, जिसमें चौपाई के मुकाबले एक मात्रा कम थी। यानी 15–15 मात्राओं का छन्द था। चौपाई छन्द की परास थोड़ी कम थी, उसमें एक मात्रा जोड़कर या सोलह–सोलह मात्राओं की मानक चौपाई बन गई, जो चउपई से अधिक मानक और सरस है। हनुमान चालीसा सुनने पर प्रतीत होता है जैसे युद्ध चल रहा है। गायिका अनुराधा पौडवाल, कविता पौडवाल जैसे आधुनिक कलाकारों ने नई–नई धुनों पर दोहों व चौपाई को गाया है और इस शैली की लोकप्रियता बढ़ाई है। तुलसी ने अपने अनुभव में दोहा–चौपाई की कड़वेक शैली को पहचाना और मानस की रचना के लिए चुना। दोहा–चौपाई जनता के मध्य बहुत ही लोकप्रिय बन गई। इस प्रकार मानस में लोकप्रियता के लिए भाषा विज्ञान का प्रयोग किया गया।

मानस की लोकप्रियता का एक प्रमुख आधार इसकी वाचन शैली है, जिसे अखण्ड रामायण कहते हैं। इसमें मानस को बिना विराम दिये गाया जाता है। इसमें एक मंच बनाया जाता है। जिस पर ब्राह्मण कोटि का एक व्यक्ति वाचन या पाठ करता है। जब यह पाठ करते हुए थक जाता है, तो उसका स्थान दूसरा व्यक्ति ले लेता है। यह क्रम इसी तरह चलता रहता है। इस तरह अनवरत गति से पाठ चलते रहने पर रामायण पाठ चौबीस घण्टे में पूरा हो जाता है। इस पाठ की कुछ मजेदार बाते है, मसलन इसमें घर के सभी सदस्य हिस्सा ले सकते हैं, मुहल्ले के सदस्य भी शामिल हो सकते हैं। विशेष आकर्षण बच्चे होते हैं, जिनमें पढ़ने की योग्यता होती है। चूंकि मंच के नीचे भी पाठ करने के लिए, बहुत से आसन लगाये जाते हैं, वह मंचासीन पाठकर्ता की लय में लय मिलाकर पाठ करते है। इसलिए अधिक व्यक्तियों को पढ़ने और समझने का मौका मिलता है। बच्चों, वृद्धों, महिलाओं सबके लिए यह सांस्कृतिक उत्सव सा प्रतीत होता है। इसके गायन में सात चौपाई के बाद दोहा

की पुनरावृत्ति होती है। दोहा को चौपाई की कड़ियों की टेक मान लिया जाता है। अक्सर टेक के रूप में दो चौपाइयां बहुत प्रचलित हो गई हैं :–

मंगल भवन अमंगल हारी।
द्रबहु सु दसरथ अजर बिहारी।।
दीन दयाल विरद संभारी।
हरहु नाथ मम संकट भारी।।

इन चौपाइयों की कड़ियों की तोड़ के बाद (दोहे के बाद) बार–बार गायन होता है। जिसे वहाँ सभी उपस्थित लोग विशेषकर निरक्षर और बच्चे एक स्वर में ऊँची आवाज में गाते हैं। यह एक उल्लास का माहौल पैदा करता है। इस पाठ की एक विशेषता यह भी है कि यह कम खर्चीला होता है। इसलिए अखण्ड रामायण का पाठ गरीब से गरीब भी करवा सकता है। मानस के इस अखण्ड रामायण पाठ ने इसकी लोकप्रियता को चरम सीमा पर पहुँचा दिया, जिस प्रकार कबीर के ज्ञान सम्बन्धी फुटकल दोहे जनता की जुबान पर चढ़े हुए हैं। उसी प्रकार मानस की नैतिक, सामाजिक और धार्मिक आदर्श की स्थापना करने वाली चौपाईयाँ जनता की जुबान पर चढ़ी हुई हैं, जिनका वो अक्सर किसी विवाद–संवाद के अवसर पर प्रयोग करते हैं। मानस का एक रूप नाटक भी है। दरअसल रामलीला का जो मंचन पहले से चला आ रहा था, उसके संवादों के स्थान पर मानस की चौपाइयाँ रामलीला के संवाद बन गये। इसलिए अनायास ही मानस ने एक रंगमंच का रूप धारण कर लिया और जनता का कंठहार बन गई। इस प्रकार अखण्ड रामायण का पाठ और रामलीला दो ऐसी कार्यप्रणाली विकसित हुई, जिससे मानस की लोकप्रियता कई गुना बढ़ गई।

मानस की लोकप्रियता का आधार इसकी प्रबन्धात्मकता भी है। महाकाव्य बहुत लिखे गये, लेकिन मानस जैसी लोकप्रियता अन्य महाकाव्यों को नहीं मिली। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने इसकी प्रबन्धात्मकता की छानबीन की है। इसके लिए उन्होंने तीन कोटियाँ निर्धारित की हैं।

1. सम्बन्ध निर्वाह,
2. कथा के मार्मिक स्थलों की पहचान,
3. दृश्यों की स्थानगत विशेषता।

मानस की कथा कहीं भी बिखरती प्रतीत नहीं होती। पूरी कथा अंत तक अक्षुण्ण बनीं रहती है। कथा के सभी अवयवों में समीकरण की जो आवश्यकता होती है। तुलसी ने उसका पूरा ध्यान रखा है। राम की पूरी कथा को सात कांडों में विभक्त किया गया है। जिसके नाम हैं बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्य कांड, किष्किंधा कांड, सुंदरकांड, लंकाकांड और उत्तरकांड मानस की रचना संवाद शैली में प्रस्तुत की गयी हैं। इसमें शिव–पार्वती, काकभुषुण्ड–गरूण और याज्ञवल्क्य–भारद्वाज के संवादों के रूप में कथा का नियोजन किया गया है। किसी भी घटना की पुनरावृत्ति नहीं हुई है। पुनरावृत्ति होने पर उसका सिर्फ उल्लेख मात्र ही किया गया है। संक्षेप में मानस का कथानक संगठित और कार्य–कारण शैली युक्त है।

तुलसी को इस बात बहुत तजुर्बा था कि कथा के कौन से स्थल और प्रसंग मनोहारी हैं और आवश्यक भी और किसी प्रसंग को कितनी दूर तक ले जाना चाहिए। रामकथा में पुष्पवाटिका प्रसंग, रामवनगमन, दशरथमरण, भरतग्लानि, सीताहरण, लक्ष्मणशक्ति आदि ऐसे बहुत से प्रसंग स्थल हैं, जहाँ पर तुलसी का मन

बहुत रमा है। सीताहरण के समय जंगलों में सीता को ढूंढते–ढूँढते जब राम टूट गये और सीता का पता देने का कोई सूचक नहीं था, तो उनका कोमल द्रवित हृदय पक्षियों से पूछने लगा :–

हे खग हे मृग मधुकर श्रेनी।
तुम देखी सीता मृग नैनी।।

पूछने की मनोवैज्ञानिकता देखिये कि वह मृगों से इसलिए पूछ रहे हैं, क्योंकि सीता मृगनयनी हैं। इसलिए मृगनयनी की जानकारी मृगों को अवश्य ही होगी। तुलसी ने दृश्यों की स्थानिक विशेषताओं की प्रमाणिक जानकारी दी है। उन्होंने ऐतिहासिक स्थलों नदी मार्ग, पर्वत, वन, शहरी (अयोध्या, जनकपुरी, लंका) एवं अन्य स्थानों व दृश्यों का वर्णन किया है। इसलिए प्रबन्धात्मकता इसका विशेष गुण बन गया।

मानस विचारशील काव्य है। इसमें अच्छे विचारों का समावेश किया गया है। यह जनता की भलाई करने के रूप में लिखा गया ग्रंथ है। इसीलिए इसमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लोकमंगल की अवधारणा को रेखांकित किया है। मानस अमंगल का हरण और मंगल की कामना करता है।

मंगल भवन अमंगल हारी।
द्रबहु सु दशरथ अजर बिहारी।।

तुलसी कहते हैं कि कीर्ति, कविता और ऐश्वर्य तीनों से लोकमंगल होना चाहिए जो गंगा के समान सर्वहितकारी हो :–

कीरति भनित भूति मलि सोई।
सुरसरि सम सब कहं हित होई।।

भगवान राम का जन्म ही अन्याय को समाप्त करके धर्म की प्रतिष्ठा करके लोकमंगल की स्थापना हेतु हुआ है।

जब जब होई धरम की हानी।
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।।
तब तब प्रभु धरि मनुज शरीरा
हरहि कृपा निधि सज्जन पीरा।।

लोकमंगल का विधान करने वाले आदर्श चरित्रों की विवरण कंडिका है मानस। राम अपने चरित्र और व्यवहार से मर्यादा का पालन करते हैं और सुख एवं शान्ति की व्यवस्था कायम करते हैं और किसान संस्कृति को मर्यादा का पाठ सिखाते है। भरत, लक्ष्मण, सीता और हनुमान जैसे चरित्र अपने त्यागमय और पारिवारिक चरित्रों के कारण पाठक को आकर्षित करते हैं। राम के प्रति भरत का सिंहासन त्याग, लक्ष्मण का आजीवन भाई के प्रति सेवा भाव, सीता का राम द्वारा मना करने पर भी उनके साथ वनों का दुर्गम जीवन को जीने के लिए चल देना और पति का साथ देकर पत्नी धर्म का निर्वाह करना, हनुमान का त्याग आजीवन दास्य सेवा भाग, भगवान राम का अपने परिवार के साथ–साथ पूरी जनता का ख्याल रखना व स्नेहपूर्ण व्यवहार करना आदि ऐसे आदर्श पारिवारिक और सामाजिक चरित्र है जो सबको आकृष्ट करते हैं और सबके प्रेरणा स्रोत बनते हैं। वहीं दूसरी तरफ कैकयी, सूपनखाँ, रावण आदि के व्यवहार और चरित्र घृणा के विषय है। इन दोनों प्रकार के चरित्रों से जीवन के अच्छे–बुरे के द्वंद्व का समाधान होता है और अच्छे चरित्रों की स्थापना होती है। एक परिवार में

पिता–पुत्र, माँ–पुत्र, माँ–बाप भाई बहन, पति पत्नी, आदि सभी रिश्तों का पल्लवन यदि सीखना है तो मानस से सीखें। इन पारिवारिक रिश्तों में मानस से ज्यादा सीख देने वाला भारतीय साहित्य में कोई ग्रंथ नहीं है।

मानस मर्यादा का काव्य है। मर्यादा को जीवन का आधारभूत तत्व बनाने के लिए मर्यादा को चरित्र और भावना का रूप प्रदान किया जीवन के सुचारू संचालन के लिए एक व्यवस्था की आवश्यकता होती है और कोई भी व्यवस्था बिना मर्यादा के नहीं चल सकती है। भारतीय समाज को जितना वर्णव्यवस्था ने संचालित किया है, उससे अधिक मर्यादा ने संचालित किया है। मर्यादा वर्णव्यवस्था के अन्दर एक व्यवस्था प्रदान करती है, जिसमें हर व्यक्ति को अपनी एक निजी सीमा में रहना होता है। मर्यादा एक सीमा भी है, और शक्ति भी है जो किसी व्यक्ति को गलत आचरण करने के लिए रोकती है, तो अच्छे आचरण के लिए प्रोत्साहित करती है। भगवान राम ने आजीवन मर्यादा का पालन करने की कोशिश की, इसीलिए उन्हें मर्यादावादी पुरुषोत्तम राम कहा जाता है। वैसे मर्यादा का समाज में निषेधात्मक प्रयोग अधिक होता है, जब कोई अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता है तो उसे मर्यादा में रहने के लिए कहा जाता है। इस प्रकार मानस पूरी सामाजिक दशा को आइना दिखाने वाला विचारशील काव्य है।

मानस में कलियुग का वर्णन और उसके विकल्प के रूप में रामराज्य की अवधारणा मानस की लोकमंगल की चेतना को ही उजागर करती है। तुलसी कहते हैं कि जीवन में जो भी बुरा हो रहा है, वह कलि का प्रभाव है। कलि के दुष्प्रभाव से ही जीवन के हर क्षेत्र में ह्रासमय प्रवृत्तियाँ उपजी हैं। राजनीति, धर्म, समाज, नीति, व्यापार, सब जगह तुलसी का कलि का दुष्प्रभाव नजर आता है। राजा नीति सम्मत शासन नहीं कर रहा है, वह अकारण ही दण्ड देता है। समाज की मुख्य धूरी वर्णव्यवस्था चरमरा गई है, सभी लोग अपने–अपने वर्ण छोड़कर स्वतंत्र होकर व्यवहार कर रहे हैं, सभी अपनी–अपनी मर्यादाओं को लांघ रहे हैं। ब्राह्मणों और संतो के मिथ्या व्यवहार की तो तुलसी ने बहुत खिंचाई की है। समाज में पुरुषों की वासनावृत्ति अति से ज्यादा बढ़ गई थी स्त्रियों की दया सोचनीय थी, उसे सिर्फ भोग की वस्तु समझ लिया था। भोग के लिए तो पुरूष नारी के समक्ष मदारी के बंदर की तरह नाचने को तैयार रहते हैं। उस समय की आर्थिक स्थिति भी सोचनीय थी। मानस में अकाल का विवरण दिया गया है :–

कलि बारहिं बार अकाल परै।
बिनु अन्न दुखी सब लोग मरैं।।

मानस में कलियुग का वर्णन उस समय के यथार्थ जीवन की तस्वीरें पेश करता है। इसी अमंगल को मंगल में तब्दील करने के लिए तुलसी ने रामराज्य की अवधारणा और दास्य भाव की सगुण भक्ति की प्रस्तावना प्रस्तुत की है। राम का राज्य एक ऐसा राज्य है, जहाँ दुख और शोक की अनुमति नहीं होती, वहीं हर्ष और उल्लास का वातावरण पनपता है। आम जनता को यही चाहिए। मानस की लोकप्रियता का आधार है। मानस आम आदमी की समस्याओं को गिनाती है। फिर उसका एक एक करके समाधान करती है इससे बड़ी मन की बात और क्या हो सकती है। मानस की लोकप्रियता ग्रंथ की विषयवस्तु में ही निहित है। मध्यकाल में ऐसा कोई ग्रंथ या मार्ग नहीं है जो रामराज्य की तरह इतनी आसानी से जनता में अमन चैन का वातावरण उत्पन्न करे। यहाँ तक की रामराज्य की अवधारणा अंग्रेजों को देश से बाहर खदेड़ने के लिए, गांधी जी ने भी प्रस्तुत की थी और रातों रात जनता ने उसे स्वीकार भी कर लिया था :–

राम राज्य बैठे त्रैलोका।
हरषित भए गए सब सोका।।
नहि दरिद्र कोई दुखी न दीना।
नहि कोई अबुध न लक्षन हीना।।

सारांशतः कह सकते हैं कि तुलसी ने परिवार समाज और धर्म को आइना दिखाया। इससे मानस का समाज में लोकमंगलकारी रूप स्थापित होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार धर्म के इतने स्वरूपों की योजना, हृदय की इतनी उदात्तवृत्तियों की एक साथ उद्‌भावना तुलसी के ही विशाल मानस में संभव थी।

मानस लोकमंगल की एक अन्य झलक समन्वय की विराट चेष्टा भी प्रस्तुत करती है। मानव का भला तब होगा, जब वह मिलकर चलना सीखे विवाद की जगह संवाद पैदा करे, विघटन की जगह संगठन विकसित करे। कटुता की जगह मित्रता जाग्रत करे। उस समय की सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक सभी तरह की विषमताओं पर मानस समन्वय का आह्‌वान करती है। समन्वय की चेतना यह कहती है कि पुर विरोधी विचारधाराओं में जितने असमानता के लक्षण विलक्षण होते है उतने ही उसमें समानता के लक्षण भी आकर्षक होते हैं। जहाँ कबीर तर्क की कसौटी पर भवसागर की परख करते हैं। वहीं तुलसी समन्वय के द्वारा आदर्श की स्थापना करते हैं। वह शैव और वैष्णव का समन्वय करते हुए राम से कहलवाते हैं :–

शिवद्रोही मम दास कहावा।
सो नर मोहि सपनेहु नहीं भावा।।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का आंकलन है लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके। तुलसी का सम्पूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। कहने का तात्पर्य यही है कि मानस अपनी विषद लोकमंगल की भावना के ही कारण चरम लोकप्रियता प्राप्त कर सका।

समग्रतः कहा जा सकता है कि मानस की लोकप्रियता निर्विवाद है और उसकी लोकप्रियता के वाजिब कारण भी हैं। मानस की विषयवस्तु उसका प्रस्तुतीकरण, उसकी भाषा, उसका उपयोग ये सभी दो कारक हैं, जो मानस की लोकप्रियता ही नहीं, उसे एक कालजयी रचना सिद्ध करते हैं। आगे भविष्य में इतनी लोकप्रियता शायद ही किसी ग्रंथ को मिले निसंदेह हजार धार्मिक पुस्तकों में से किसी एक पुस्तक का चुनाव किया जाये तो वह 'रामचरित मानस' ही होगी। इसीलिए डॉ0 ग्रियर्सन ने इसे भारत की 'बाइबिल' की संज्ञा दी।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. रामचरित मानस तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा।
3. हिन्दी साहित्य उद्‌भव और विकास हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं0 डा0 नगेन्द्र, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।
5. हिन्दी भाषा का वृहद ऐतिहासिक व्याकरण, हजारी प्रसाद द्विवेदी।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 215-218

हिंदी दलित आत्मकथा : सामाजिक आयाम

क्षीरसागर संदेश, शोधार्थी, पीएच.डी.,
डॉ. काकानि श्रीकृष्ण, शोध निर्देशक
हिंदी विभाग, आचार्य नागार्जुना विश्वविद्यालय, नागार्जुन नगर, गुंटूर आंध्र प्रदेश–522510

भारतीय समाज की सामाजिक परिस्थितियों का निर्माण करनेवाली संस्थाएँ वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था है। यह व्यवस्था भारतीय समाज का जीवन आधार है। यह व्यवस्था ही समाज को संचालित करती है। साहित्य और समाज का परस्पर संबंध होने के कारण समाज के हर वर्ग का, उनके जीवन का उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि का, उनमें उत्पन्न सामाजिक चेतना का चित्रण दलित आत्मकथा में हुआ है। भारतीय समाज का उपेक्षित अंग दलित समाज है। दलित साहित्यकार अपनी आत्मकथाओं में सामाजिक आयामों का यथार्थ चित्रण किया है। उसकी नींव समाज जीवन की है। दलितों की यह विडंबना ही रही है कि उन्हें जाति भेदभावना का दंश झेलना पड़ा, जिसके कारण पूरे समाज में इन्हें हीन भावना से देखा गया।

मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे' दलित समाज के जीवन और उनकी समस्याओं के माध्यम से ऐसे समय से हमारा परिचय करवाती है, जिसके यथार्थ से हम लगभग अनभिज्ञ थे। दलित समाज उस सामाजिक जीवन से परिचित भी था तो उससे टकराने का साहस उसने कभी नहीं किया था। मोहनदास नैमिशराय ने अपनी इस आत्मकथा में अपने जीवन की कहानी को चित्रित करके उस व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है। लेखक ने उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के चमारों की स्थिति और उनके जीवन को अंकित किया है। दलित वर्ग ने हजारों सालों की गुलामी में दुरूख और उत्पीड़न को झेला है। उनका जातीय समाज अत्यंत दूरावस्था से गुजर रहा था। समाज गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास, विवशता से ग्रस्त था। भारतीय समाज व्यवस्था में सबसे अधिक तकलीफदेह था जातीयता के नाम पर उसके साथ क्रूरतापूर्ण बेइज्जती का व्यवहार। ब्राह्मणवाद की विचारधारा का इस सामाजिक व्यवस्था पर गहरा प्रभाव रहा है। इसने समाज को ऊँच–नीच जातियों में बांट दिया है।

मोहनदास नैमिशराय ने अपनी आत्मकथा में लिखा है– "हर जाति और वर्ग के लोग अपनी–अपनी पहचान में सिमटे हुए थे। शहर धड़कता था पर अलग–अलग स्वर में। बस्तियां थिरकती–नाचती थीं अलग–अलग बोलियों में। उन सबसे मिलकर बना था यह शहर।"[1] चाहे गांव हो या शहर समाज में व्यक्ति का दर्जा और हैसियत उसकी जाति से तय होती है। जाति को व्यक्ति की मुख्य पहचान बनाकर उच्च जातियों द्वारा निम्न जातियों के लोग घृणा के शिकार होते हैं जो उनमें हीन भावना पैदा करती है। समाज में दलित वर्ग की पहचान क्या है। आत्मकथाकार ने इस समस्या को झेलते हुए लिखा है– "हिंदू समाज में आदमी की कीमत

उसकी जात से आंकी जाती थी। हमें विशेष तौर पर चमार–चूड़े नाम से संबोधित किया जाता था।"[2] जातीय पहचान के माध्यम से ही ब्राह्मणवाद लोगों के जीवन का अंग बना रहा है। अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए उन्होंने जाति के आधार पर समाज में एक विषमतापूर्ण विभाजन किया। इससे दलित जातियों को सबसे अधिक नुकसान हुआ। वर्ण–जाति आधारित समाज ने उसे भंगी बनाकर उनके जीवन को नरकमय बना दिया। वर्ण–जाति व्यवस्था के निर्माताओं ने उसे सबसे निचले पायदान पर धकेल दिया। दलितों में दलित यह समुदाय आज भी अमानवीय जीने पर विवश है।

लेखिका अपनी आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' के मनोगत में लिखा है– "'शिकंजे का दर्द' में संताप है दलित होने का, स्त्री होने का। इसमें शोषित, पीड़ित, अपमानित, अभावग्रस्त दलित जीवन की व्यथा है। जिस देश में वर्ण–भेद, जाति–भेद की कलुषित परंपराएँ हैं, वहाँ दलित स्त्री शोषण की व्यथा और भी गहरी हो जाती है। सदियों से तिरस्कृत और अभावग्रस्त परिस्थितियों में रहने के लिए मजबूर किए गए दलित जीवन की व्यथा कथा का दर्द 'शिकंजे के दर्द' में समाहित है। 'शिकंजे का दर्द' लिखने का उद्देश्य दर्द देनेवाले शिकंजे को तोड़ने का प्रयास है।"[3] लेखिका दलित होने के साथ स्त्री होने की पीड़ा को भी झेला है। सुशीला जब अपनी सवर्ण हिंदू सहेलियों से किताब–कापी मांगने उनके घर जाति तो उन्हें सड़क पर खड़ें रहकर बात करनी पड़ती थी। पीने के लिए पानी माँगने पर सहेलियाँ हथेलियों पर पानी डाल देती थी।

लेखिका अब इस व्यवस्था का विरोध करती है। वह लिखती है– "भारतीय हिंदू परंपरा का यह कड़वा सत्य था। यह जाति–भेद का सत्य था। तब मेरे लिए यह सहज बात थी मगर अब लगता है, यह मेरे लिए अपमान की बात थी। मेरे लिए भी, मेरी जाति के लिए भी और संपूर्ण समाज व्यवस्था के लिए भी शर्म की बात थी।"[4] लेखिका ने अपनी इस आत्मकथा में सामाजिक व्यवस्था की अमानवीय संस्कृति को समाज के सामने उजागर किया है।

'दोहरा अभिशाप' यह कौशल्या बैसंत्री का दलित आत्मवृत्त है। इसमें दोहरी पीड़ा की कथा है। सामाजिक दृष्टि से स्त्री को दो–दो मोर्चों पर लड़ना पड़ता है। एक पुरुषवादी वर्चस्व से और दूसरा जातिवादी व्यवस्था से। कौशल्या बैसंत्री का यह 'दोहरा अभिशाप' किसी एक दलित स्त्री का अभिशाप नहीं है, बल्कि पूरे दलित समाज की स्त्री का अभिशाप है। इस आत्मकथा में स्त्री शोषण की दोहरी चक्की में पिसती है। यह कुछ आपबीती है तो कुछ जगबीती। आत्मकथा के आरंभ में लेखिका लिखती है– "मैं लेखिका नहीं हूँ, ना साहित्यकार लेकिन अस्पृश्य समाज में पैदा होने से जातीयता के नाम पर जो मानसिक यातनाएँ सहन करनी पड़ी, इसका मेरे संवेदनशील मन पर असर पड़ा।"[5] कौशल्या जी ने अपने माता–पिता के संघर्ष और दुखभरे जीवन का लेख–जोखा प्रस्तुत किया है। लेखिका ने अपने शापित जीवन का जीवंत दस्तावेज आत्मकथा के माध्यम से सामने रखा है। उन्होंने यह भी कहा कि हर स्त्री को रोटी से भी अधिक कपड़ा महत्वपूर्ण होता है।

सूरजपाल ने गांव के जीवन की इस सच्चाई को उद्घाटित किया है। इसमें से एक बेगार प्रथा की सच्चाई है। ठाकुर के यहाँ भंगी और चमार बेगारी करते थे। बेगार के बदले उन्हें एक वक्त की रोटी भी ठीक से नहीं मिलती थी। लेखक ने लिखा है– "ठाकुर लटूरी के खेत में कुआँ खोदा जा रहा था। बेगार करने में लगे थे हमारे गांव के भंगी और चमार। सभी प्रातरूकाल अपने घरों से निकलते और सूरज डूबने के बाद ही वापिस लौटते। दोपहर को इस काम के बदले में बड़ों को बाजरा की दो रोटियाँ और साथ में गुड़ की डली और बालकों

को एक–एक रोटी दी जाती। तनिक सी गुड़ डसी से हम सभी रोटियों को गले से नीचे उतारते और पानी पीकर फिर काम में जुट जाते।"[6] तत्कालीन समय में गांव के सभी दलित सवर्णों के सारे काम करते थे। लिपाई–पुताई से लेकर खेतों की जुताई, जानवरों का चारा तैयार करना, मरे हुए जानवरों को उठाना आदि।

'झोपड़ी से राजभवन' इस आत्मकथा को पढ़ने के बाद यह पता चलता है कि लेखक को डायरी लिखने की आदत थी। जीवन की प्रत्येक घटना, तारीख और समय के साथ लिखी हुई है। लेखक ने अपने लिखने के पीछे निहित उद्देश्य को स्पष्ट किया है– "मेरे जैसा निर्धन और दलित परिवार में पैदा हुए व्यक्ति, जिसकी परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं थी, उसने भी कठिनाईयों को दूर करते हुए आगे की ओर कुछ कदम बढ़ाया है, इस पर मेरे मन में यह विचार आया कि अपने बारे में भी क्यों न लिखूँ? इससे समाज के दलित, असहाय, गरीब लोगों को प्रेरणा मिलेगी और उनमें उत्साह पैदा होगा। दूसरा कारण इसके लेखन का यह रहा है कि जिन कठिनाईयों, परिस्थितियों को मैंने भोगा है, उसे हमारे लड़के, पौत्र–पौत्रियाँ या दूसरे दलित जाति के युवकों को हमेशा याद रखना चाहिए। अपने को जातीयता की हीन ग्रंथि से बाधित नहीं रखना चाहिए।"[7] 'झोपड़ी से राजभवन' न केवल माताप्रसाद की आत्मकथा है बल्कि अपने–आप में दलित जीवन में आनेवाली एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है जो दलित समाज की आनेवाली पीढ़ियों को आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है।

'जूठन' में दलितों के आत्म–सम्मान और सामाजिक सम्मान के संघर्ष का दस्तावेज है। जातीय दंश के कारण जो सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक पीड़ाएँ दलित समाज ने झेली हैं उसका चित्रण इस आत्मकथा में है। ओपप्रकाश वाल्मीकि ने ब्राह्मणवादी सामाजिक और सांस्कृतिक ढाँचे का पर्दाफाश किया है। दलितों को अछूत होने के कारण हिंदू धर्म की अनेक सामाजिक और धार्मिक अमानवीय व्यवस्थाएँ झेलनी पड़ती है। फिर कैसे वे लोग हिंदू धर्म की मान्यताओं पर विश्वास करें। इसी दंश के कारण दलित समाज में हिंदू धर्म से विमुख होने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी है। शिक्षित दलित व्यक्ति के मन में ये प्रश्न बार–बार आता है कि जब हमें हिंदू मंदिरों में जाने का हक नहीं है और हिंदू धर्म ग्रंथों को पढ़ने का अधिकार नहीं है तो हम हिंदू कैसे हैं? लेखक धर्मशास्त्रों को दलितों की दुर्दशा का कारण मानते हैं। असमानता और शोषण की व्यवस्था को बनाए रखने में धार्मिक अनुष्ठानों की महत्वपूर्ण भूमिका है। ईश्वर का नाम लेकर एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण किया जाता है। आज भी कुछ लोग धर्म के नाम पर गुमराह करने में लगे हैं।

दलित आत्मकथाओं के विविध आयामों से यह बात स्पष्ट होती है कि दलित समाज की सामाजिक स्थिति हमेशा विषम रही है, जिसके कारण इस समाज ने अपने अस्तित्व और अस्मिता की पहचान बनाने हेतु साहित्य का सहारा लिया। दलित साहित्यकार आत्मकथा का सर्जन करके अपने पक्ष को पूरे विश्व के सामने रखने का प्रयत्न किया। दलित समाज के लोगों के लिए दलित आत्मकथाएँ एक सशक्त हथियार के रूप में उभरी हैं, जिसका उपयोग करके वे अपने अधिकारों की लड़ाई हक से लड़ने लगे है।

सुशीला टाकभौरे ने अपनी आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में अपने परिवार की दयनीय स्थिति को चित्रित किया है– "गरीबी और तंगहाली की स्थिति में, लगातार पानी बरसने पर खाना नहीं बनता था, पकाने के लिए कुछ रहता ही नहीं था। बरसात में गरीबों का जीवन कष्ट और समस्याओं से घिर जाता। हाथ कमाओं, वो हाथ खाओ जैसा जीवन था। गीली लकड़ी, ठंडा चूल्हा, भूख से किलबिलाते बच्चे, उदास माँ–बाप, मानो भोग रहे हो जीवन का अभिशाप।"[8] दलित समाज निर्धनता का अभिशाप झेल रहा है। दलितों की आर्थिक समस्याओं का

सामना करना उनकी नियति बन गयी है।

दलित साहित्यकार ने सामाजिक असमानता को दूर करके समानता की भावना को उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। इसलिए दलित साहित्य दलितों की अस्मिता का रक्षक है। दलित साहित्य सामाजिक क्रांति कर वर्ण–जाति की असमानता को दूर कर सामाजिक न्याय की ओर प्रेरित करता है। दलित साहित्यकार वर्ण–जाति व्यवस्था का विरोध करके एक सामाजिक समानता के साथ मनुष्य मात्र की गरिमा को स्थापित करना चाहते हैं। सामाजिक संकीर्णता से समाज को मुक्त करना और दलित, पीड़ित, शोषित मानवता को समानता और सम्मानपूर्वक जीवन जीने की प्रेरणा देना ही दलित आत्मकथा का उद्देश्य है।

संदर्भ :–

1. मोहनदास नैमिशराय – अपने–अपने पिंजरे, पृ. सं. 12
2. मोहनदास नैमिशराय – अपने–अपने पिंजरे, पृ. सं. 22
3. सुशीला टाकभौरे – शिकंजे का दर्द, पृ. सं. मनोगत से
4. सुशीला टाकभौरे – शिकंजे का दर्द, पृ. सं. 46
5. कौशल्या बैसंत्री – दोहरा अभिशाप, पृ. सं. 3
6. सूरजपाल चौहान – तिरस्कृत, पृ.सं. 37
7. माताप्रसाद – झोपड़ी से राजभवन, पृ. सं. भूमिका से
8. सुशीला टाकभौरे – शिकंजे का दर्द, पृ. सं. 32

मो. नं. 8328535723

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 219-222

बाल मुकुंद गुप्त की पत्रकारिता : राष्ट्रीयता एवं संस्कृति

डॉ. राजल गुप्ता
विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, वैश्य महाविद्यालय, रोहतक।

हिंदी गद्य के जनक, यशस्वी, कीर्ति स्तम्भ साहित्यकार एवं मूर्धन्य पत्रकार बालमुकुंद गुप्त का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं है। गुप्तजी ने पत्रकारिता को नए आयाम, नए आधार प्रदान किए हैं। पत्रकारिता का सीधा संबंध समाचार–पत्र से है। इसके माध्यम से क्षेत्र विशेष के साथ–साथ देश–विदेश के समाचार प्रकाशित होते हैं। विविध क्षेत्रों के लिए विविध दिशाओं के संकेत को NEWS शब्द से जाना जा सकता है। अर्थात् पूर्व–पश्चिम, उत्तर–दक्षिण आदि चारों दिशाओं का समाचार। फ़ारसी में समाचार पत्र के लिए अख़बार शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह ख़बर शब्द का बहुवचन है। इसका अर्थ है विभिन्न समाचारों को प्रकाशित करने वाला आधार। पत्रकारिता के लिए अंग्रेजी में जर्नलिज्म (Journalism) शब्द का प्रयोग किया जाता है, इस शब्द की रचना 'जर्नल' से हुई और इसका शाब्दिक अर्थ है – दैनिक विवरण। हिंदी में जर्नल शब्द का प्रयोग प्रायः पत्रिका (Magazine) के लिए होता है। इसके अन्तर्गत दैनिक समाचार–पत्र से लेकर साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, वार्षिक आदि पत्रिकाओं के साथ–साथ आकाशवाणी, दूरदर्शन, और चलचित्र की भूमिका भी सराहनीय व उल्लेखनीय है।

बालमुकुंद गुप्त जी की पत्रकारिता में भूमिका व योगदान और उनकी राष्ट्रीयता की भावना जानने व समझने के लिए पत्रकारिता के स्वरूप को जानना आवश्यक है। पत्रकारिता क्या है? राष्ट्रीय विकास में पत्रकारिता किस प्रकार महत्वपूर्ण योगदान देती है? महात्मा गांधी ने पत्रकारिता को आदर्श स्थापना के लिए सामाजिक बुराईयों को दर्शाते हुए दिशा निर्देशक के रूप में स्वीकार करते हुए कहा है –'पत्रकारिता का एक उद्देश्य जनता की इच्छाओं, विचारों के समझना और उन्हें व्यक्त करना हैं, दूसरा उद्देश्य जनता में वांछनीय भावनाओं को जाग्रत और तीसरा उद्देश्य सार्वजनिक दोषों को निर्भयता पूर्वक प्रकट करना है।'[1]

इसी प्रकार चर्चित पत्रकार प्रभाव जोशी ने पत्रकारिता के महत्व को रेखाचित्र करते हुए इस प्रकार परिभाषित किया है –'न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका और प्रैस में यदि मैं चौथा खंभा हूँ, तो पत्रकार होने के नाते मेरा अधिकार और कर्तव्य है कि इन तीनों खंभों को मैं 'जज' करूँ।'[2]

'पत्रकारिता' अत्यंत विस्तृत क्षेत्र है। मीडिया, दूरदर्शन, अखबार, सिनेमा आदि किसी न किसी रूप में पत्रकारिता का ही अंग है। आधुनिक काल में जैसे ही गद्य की अनेक विधाओं सूत्रपात हुआ, हिंदी भाषा का प्रचार प्रसार भी हुआ। अंग्रेजी शासन काल में पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े भारत देश की भाषा हिंदी के प्रचार–प्रसार में अनेक संस्थाओं व्यक्तियों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किए। इसके लिए पत्रकारिता ने विविध रूपों में अभूतपूर्व

सहयोग दिया। 'जुगल किशोर शुक्ल' के संपादन में निकला पहला साप्ताहिक पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' से लेकर इन्दु, कवि वचन सुधा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भारत मित्र, हिंदप्रदीप, सरस्वती, हंस, जागरण, धर्मयुग, पराग, नंदन आदि अनेक पत्र–पत्रिकाओं ने हिंदी के प्रचार–प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अगणित साहित्यकारों ने हिंदी भाषा व देश प्रेम की जोत जलाकर जनमानस के हृदयों में अलख जगाई। परतंत्र भारत में भारतवासियों के हृदयों में राष्ट्रीय चेतना की अलख जगाने वालों में बाबू बालमुकुंद गुप्तजी का नाम बडे आदर से लिया जाता है।

पत्रकारिता :-

राष्ट्रीयता के साथ जब भी हिंदी गद्य की कहीं भी चर्चा होती है तो बाबू बालमुकुंद गुप्त के नाम के साथ रेवाड़ी जिले का नाम लिए बिना पूरी नहीं होती। गुप्तजी ने धारदार, तीखी, व्यंग्यपूर्ण शैली में अंग्रेजों की दमन नीति के विरुद्ध शंखनाद किया। आठवीं कक्षा से ही बालकवि व लेखक के रुप में अपनी पहचान बनाने वाले गुप्त जी संवेदनशील कवि तथा समर्पित राष्ट्रप्रेमी व समाजसेवी के रुप में राष्ट्रीय स्तर पर जाने पहचाने जाते हैं।

इन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम के माध्यम से स्वतंत्रता की अलख जगाकर राष्ट्रीयता व राजभक्ति का परिचय दिया। सबसे पहले मथुरा से निकलने वाले उर्दू पत्र से इनकी रचनाएं निकलनी शुरु हुई। अपनी लेखनीय क्षमता के आधार पर गुप्तजी वृंदावन, अवधपंच, कोहेनुर, विक्टोरिया गज़ट, भारत प्रताप, हिन्दुस्तान, उर्दू–ए–मोहल्ला, जमाना, हिंदी बंगवासी आदि में नए लेखन के नए आयाम स्थापित करते रहे। इन्होंने हिंदी पत्रकारिता को नई ऊँचाईयाँ प्रदान की। और कोलकाता से निकले 'भारतमित्र' के आजीवन संपादक रहे। शिवशंभू के चिट्ठे नामक स्तम्भ से अंग्रेजों के दमन एवं शोषण की बखिया उधेड़ी और तानाशाह अंग्रेज अफजल लार्ड कर्जन को डांट पिलाई। अपने निबंध 'पीछे मत फेंकिए' में गुप्त जी अंग्रेजों की शासन नीति पर व्यंग्य करते हुए इस प्रकार आक्रोश व्यक्त करते हैं –'आश्चर्य है माईलार्ड! एक सौ साल में अंगरेजी राज्य और अंगरेजी प्रताप की तो इतनी उन्नति हो पर उसी प्रतापी ब्रिटिश राज्य के अधीन रहकर भारत अपनी रही सही हैसियत भी खो दे। इस अपार उन्नति के समय में आप जैसे शासक के जी में भारतवासियों को आगे बढाने की जगह पीछे धकेलने की इच्छा उत्पन्न हो। उनका हौंसला बढाने की जगह उनकी हिम्मत तोड़ने में आप अपनी बुद्धि का अपव्यय करें। जिस जाति से पुरानी कोई जाति इस धरा धाम पर मौजूद नही है।'[3]

गुप्त जी ने 16 जनवरी 1899 से 2 सितंबर 1907 तक 'भारत मित्र' को नई बुलंदियों तक पहुंचाया। हिंदोस्तान और हिंदी बंगवासी को इन्होंने अपने स्वाभिमान के कारण छोड़ दिया था। 'भारत मित्र' में प्रकाशित 'शिवशंभू के चिट्ठे' में अंग्रेजों की क्रूर नीतियों का कच्चा चिट्ठा खोला गया है। व्यंग्य की तीखी, कटीली व चुटीली धार और हास्य का पुट ही गुप्तजी की पत्रकारिता की सच्ची पहचान है, इनकी शैली की विशेषता है। इन्होंने लोकगीतों को नया रंग दिया और भक्ति को देशभक्ति का मिश्रण दिया। डॉ. राजेन्द्र सिंह के अनुसार –'भारत के गौरव की पुनः स्थापना का महत्वपूर्ण उद्देश्य ही उनके जीवन का परम एवं चरम प्राकाम्या था। देशवासियों में देशभक्ति की भावना उद्दीप्त करना उनका एकमात्र उद्देश्य था, क्योंकि वे स्वदेश भावना को और स्वदेश हित की कामना को परम धर्म मानते थे। अपने 'भारतमित्र' के द्वारा उन्होंने राष्ट्रीय उत्थान मे सर्वतोभावेन योगदान दिया।'[4]

गुप्तजी के व्यक्तित्व की मुख्य पहचान उनका स्वाभिमान था। अपने स्वाभिमान से बिना, डरे बिना किसी शंका के सटीक व खरे शब्दों में अपनी आवाज़ को लेखनी के माध्यम से लोगों तक पहुँचाना ही उनका उद्देश्य था। अपने बहुचर्चित निबंध 'शिवशंभू के चिट्ठे' में अंग्रेजों की नीति को व्यंग्यात्मक शैली में इस प्रकार व्यक्त किया है – 'आपने माई लार्ड! जबसे भारतवर्ष में पधारे हैं, बुलबुलों का स्वप्न ही देखा है या सचमुच करने के योग्य कोई काम भी किया है? खाली अपना ख्याल ही पूरा किया है या यहाँ की प्रजा के लिए भी कुछ कर्त्तव्य पालन किया है? एक बार यह बातें बड़ी धीरता के साथ मन में विचारिए। आपकी भारत में स्थिति को पाँच वर्ष पूरे हो गए अब यदि आप कुछ दिन रहेंगे तो सूद में मूलधन समाप्त हो चुका। हिसाब कीजिए नुमाइशी कामों के सिवा काम की बात आप कौन सी कर चले हैं और भड़कबाजी के सिवा डयूटी और कर्त्तव्य की ओर आपका इस देश में आकर ध्यान कब रहा है?'[5]

बालमुकुंद गुप्त ने तत्कालीन शासन व्यवस्था और शासकों द्वारा विकास के नाम पर किए जाने वाले कार्यों की शो–शो बाजी व बनावटीपन की पोल खोल दी है। बड़े–बड़े नेताओं की मूर्ति स्थापना या मैमोरियल स्थलों के निर्माण से गरीब जनता का कोई भला नहीं हो सकता, न ही दो वक्त की रोटी के लिए जत्थोजहत कर रहे भूखे पेटों को किसी दर्शनीय स्थल को देखकर सुकुन मिल सकता है। नंगे शरीरों को तन ढंक कर तथा भूखे पेटों को दो वक्त की इज्जत से मिलने वाली रोटी ही विकास प्रतीत होता है। 'शिवशंभू के चिट्ठे' में गुप्तजी अंग्रेजों की शासन व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं – 'इस बार के बजट की वक्तृता ही आपके कर्त्तव्यकाल की अंतिम वक्तृता थी। ज़रा उसे पढ तो जाइए, फिर उसमें आपकी पाँच साल की किस अच्छी करतूत का वर्णन है। आप बारंबार अपने दो अति तुम तराक से भरे कामों का वर्णन करते हैं। एक विक्टोरिया मैमोरियल और दूसरा दिल्ली दरबार पर जरा विचारिए तो, यह दोनों काम 'शो' हुए या 'ड्यूटी'? विक्टोरिया मैमोरियल चंद पेट भरे अमीरों के एक दो बार देख आने की चीज होगा और उससे कुछ दरिद्रों का कुछ दुःख घट जाएगा या भारतीय प्रजा की कुछ दशा उन्नत हो जाएगी, ऐसा तो आप भी न समझते होंगे।'[6]

यद्यपि गुप्तजी को इस धरती से विदा हुए लंबा समय बीत गया, अंग्रेजी शासन भी समाप्त हुए अरसा हो गया पर आम जनता की स्थिति में कोई आशाजनक सुधार नहीं हुआ है। गुप्तजी की कही बातें आज भी प्रासंगिक है। कहीं उखाड़ना, कहीं बनाना व मूर्ति स्थापना करना ही शायद शासकों को प्रिय हैं। पर आम जनता, भूखी नंगी जनता के लिए विकास सिर्फ उनकी माली हालत के सुधरने में है। बड़े–बड़े नेताओं की मूर्तियाँ स्थापित करने के पीछे कैसा विकास छिपा है, यह आम जनता नहीं जानती और न ही समझ पाती है। मूर्ति स्थापना के प्रति व्यंग्य करते हुए गुप्तजी ने कहा है – 'यह मूर्तियाँ किस प्रकार के स्मृति चिह्न है? इस दरिद्र देश के बहुत से धन की एक ढेरी है, जो किसी काम नही आ सकती। एक बार जाकर देखने से ही विदित होता है कि वह कुछ विशेष पक्षियों के कुछ देर विश्राम लेने के अड्डे से बढ़कर कुछ नहीं है। माई माई लार्ड! आपकी मूर्ति की क्या शोभा होगी? आइए मूर्तियाँ दिखावे! वह देखिए एक मूर्ति है। वह देखिए एक मूर्ति है जो किले के मैदान में नहीं है, पर भारतवासियों के हृदय में बसी हुई हैं। पहचानिए इस वीर पुरुष ने मैदान की मूर्ति से इस देश के करोड़ों गरीबों के हृदय में मूर्ति बनवाना अच्छा समझा।'[7]

गुप्तजी ने यह संदेश दिया है कि असली शासन तो मानव के हृदय पर किया जाता है। राजा या शासक बनना तो आसान है पर किसी के मन पर विजय पाना, किसी के हृदय पर राज करना बहुत कठिन है। जयशंकर प्रसादने लिखा है–'शासन रे मानव मन का'। किसी देश का सही विकास देश के प्रत्येक नागरिक के विकास होने से होता है। जब सभी नागरिक आधारभूत सुविधाओं से युक्त होते हैं तभी वह देश विकसित होता है। निम्न वर्गीय जनता का प्रतिशत देश की कुल जनता के प्रतिशत का 70–80 प्रतिशत से भी ज्यादा होता है तो उनका विकास ही देश का सच्चा विकास है।

संदर्भ :-

1. प्रयोजनमूलक हिंदी और काव्यांग, डॉ. नरेश मिश्र, अभिनव प्रकाशन दिल्ली, पृ० – 42–43
2. वहीं।
3. गद्य शिखर, प्रकाशन विभाग कुरुक्षेत्र विश्व विद्यालय कुरुक्षेत्र, बालमुकुंद गुप्त, पीछे मत फेंकिए, पृ० –5
4. डॉ. राजेन्द्र सिंह, बालमुकुंद गुप्त और उनके युग का साहित्य, कविसभा दिल्ली, शाहदरा, 1996 पृ० –115
5. www.hindisamay.com, निबंध, बालमुकुंद गुप्त, शिवशंभु के चिट्ठे कज–19.07.2020
6. वही।

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 223-227

भगतसिंह : एक क्रान्तिकारी विचारधारा

कु. उषा
Research Scholar, Hindi Department, Panjab University, Chandigarh.

"पिस्तौल और बम कभी इंक़लाब नहीं लाते,
बल्कि इंक़लाब की तलवार
विचारों की सान पर तेज होती है।" – भगत सिंह

भगत सिंह भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के प्रमुख आन्दोंलनकारियों में से एक थे। वे अपनी क्रांतिकारी विचारधारा से इतने अधिक लोकप्रिय थे कि आज भी भारतीय जनमानस के दिलों पर राज करते हैं। यदि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिकारियों में से किसी एक का नाम लेना हो तो गांधी के बाद सबसे लोकप्रिय भगत सिंह ही आते हैं। जिन्हें 'प्रिंस ऑफ़ मॉर्टर' और 'सन ऑफ़ द नेशन' के नाम से भी नवाज़ा जाता है। वह आज़ादी का इस कदर दीवाना कि महज़ बाईस तेईस वर्ष की छोटी सी उम्र में स्वयं की लिखी हुई फाँसी से सोई हुई भारतीय जनता को आज़ादी के लिए झकझोर कर स्वयं फाँसी के तख्ते पर लटक गया। आज़ादी के लिए देश पर मर मिटने के साथ–साथ वे साहित्य के गहन अध्येता भी थे। उन्होंने विश्व के महान क्रांतिकारी आंदोलनों के साथ–साथ अमेरिकन, रुसी, यूरोप तथा ब्रिटिश साहित्य को गहराई से समझा था। वे मार्क्स, लेनिन तथा समाजवादी विचारधाराओं से अत्यधिक प्रभावित थे।

क्रान्ति की समझ :-

भगत सिंह साहित्य के गहन अध्येता होने के साथ–साथ एक बेहतरीन लेखक भी थे, भारतीय जनमानस में अंग्रेज़ी साम्राज्य के ख़िलाफ़ क्रांति की भावना जागृत करने के उद्देश्य से वे कई पत्र–पत्रिकाओं जैसे– कीर्ति, अर्जुन, वीर तथा अकाली में अपने नियमित रूप से अपने विचार प्रस्तुत करते थे। वे एक ऐसे समय में पैदा हुए थे जब समाज तथा राजनैतिक क्षेत्र में अत्यंत उथल–पुथल का माहौल था तथा जनता अंगेज़ी साम्राज्य के अत्याचारों से बहुत दुखी थी। इन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर भगत सिंह ने अपने क्रान्तिकारी विचारों के माध्यम से त्रस्त जनता के दिलों में क्रांति की लहर पैदा करने का रास्ता अपनाया। वे यह बात समझ चुके थे कि जब तक क्रांति की लहर पूरे देश में नहीं फैलेगी तब तक अंग्रेज़ी हुकूमत और समाज में फैली अनेक बुराइयों से निपटना असंभव है। इसलिए उन्होंने वैचारिक क्रांति को हथियार के रूप में अपनाया। वे फ्रांस की क्रांति से अत्यंत प्रभावित थे जिनका नारा 'लिवि द रिवोल्यूसियो' था। इस नारे ने फ्रांस की जनता में क्रांति का काम किया। अतः भगत सिंह ने भी इसी तर्ज़ पर 'इंक़लाब ज़िंदाबाद' तथा 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' का नारा दिया। इस नारे ने अंग्रेजों से त्रस्त भरतीय जनता में एक नये जोश का संचार किया। वे समय–समय पर अपने क्रन्तिकारी

विचारों तथा उद्देश्यों को पत्र–पत्रिकाओं में विभिन्न लेखों के ज़रिये जनता तक पहुंचाते रहे।

इसी के तहत उन्होंने और उनके साथी बटुकेश्वर दत्त ने 22 दिसंबर 1919 कोजेल से लिखे 'मॉडर्न रिव्यू' के संपादक को प्रति उत्तर में 'इंक़लाब ज़िंदाबाद' के नारे को परिभाषित करते हुए क्रांति से जोड़ा– "क्रांति (इंक़लाब) का अर्थ अनिवार्य रूप से सशस्त्र आन्दोलन नहीं होता। बम और पिस्तौल कभी–कभी क्रांति को सफल बनाने का साधन मात्र हो सकते हैं। इसमें भी संदेह नहीं है कि कुछ आंदोलनों में बम एवं पिस्तौल एक महत्त्वपूर्ण साधन सिद्ध होते हैं, परन्तु केवल इसी कारण से बम और पिस्तौल क्रांति के पर्यायवाची नहीं हो जाते। विद्रोह को क्रांति नहीं कहा जा सकता, यद्यपि यह हो सकता है कि विद्रोह का अंतिम परिणाम क्रांति हो।" ..... क्रांति शब्द का अर्थ "प्रगति के लिये परिवर्तन की भावना एवं आकांक्षा है।"[1] भगत सिंह गहन चिन्तक होने नाते सामाजिक परिस्थितियों को गहराई से समझते थे। दरअसल मनुष्य जीवन में इतना लिप्त हो जाता है तथा परम्पराओं, रूढ़ियो एवं अन्धविश्वासों को अपने जीवन में इस कदर उतार लेता है कि वह अकर्मण्य हो जाता है। यह वातावरण मनुष्य को कुमार्ग पर ले जाता है और ये स्थितियां समाज की उन्नति में गतिरोध उत्पन्न करतीं हैं। उनका मानना था कि– "क्रांति की इस भावना से मनुष्य जाति की आत्मा स्थायी तौर पर ओत–प्रोत रहनी चाहिए, जिससे कि रुढ़िवादी शक्तियां मानव समाज की प्रगति की दौड़ में बाधा डालने के लिए संगठित न हो सकें। यह आवश्यक है कि पुरानी व्यवस्था सदैव न रहे, जिससे कि एक आदर्श व्यवस्था संसार को बिगड़ने से रोक सके। यह है हमारा वह अभिप्राय जिसको ह्रदय में रखकर हम 'इंक़लाब ज़िंदाबाद' का नारा ऊँचा करते हैं।"[2]

दरअसल समाज व्यवस्थित तरीके से चलता रहे इसके लिए निरंतर परिवर्तन ही स्थाई समाधान है। कोई भी व्यवस्था कुछ समय पश्चात् पुरानी हो जाती है। अतः उसे समय के साथ जनकल्याण हेतु बदलना आवश्यक है। इस प्रकार के आमूल परिवर्तन के लिए जनसाधारण में क्रांति लाना अत्यांतावश्यक है। भगत सिंह स्पष्ट कहते हैं कि क्रांति का मतलब मात्र उथल–पुथल या खूनी संघर्ष नहीं है। इसका अर्थ मौजूदा हालत को पूरी तरह ध्वंस करने के बाद समाज का व्यवस्थित पुनर्गठन है। उस समयक्रांति का वास्तविक अर्थ जनता के लिए, जनता की राजनीतिक शक्ति हासिल करना था। वास्तव में यही क्रांति है बाकी विद्रोह तो सिर्फ़ मालिकों के परिवर्तन द्वारा पूंजीवादी व्यवस्था को ही आगे बढ़ाते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था ने गरीब किसानों की हर प्रकार से कमर तोड़ दी थी, ऐसी स्थिति में आर्थिक स्थिति का धराशायी हो जाना स्वाभाविक था।

इसी प्रकार 'इंक़लाब ज़िंदाबाद' का दूसरा पहलू था 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद'। इस वाक्य का अर्थ केवल ब्रिटिश साम्राज्य के प्रभुत्व को ही मिटाना नहीं था बल्कि उन परिस्थितियों को भी उखाड़ फेकना था जो समाज में गैरबराबरी की स्थितियां पैदा करतीं हैं तथा शोषण एवं दमन को संभव बनती हैं।

एसेम्बली बम कांड (8 अप्रैल 1929) के बाद मुकदमे में दिल्ली की सेशन अदालत में भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त के इस अंश से 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' पर रोशनी पड़ती है– "क्रांति में घातक संघर्षों का अनवार्य स्थान नहीं है, न उनमें व्यक्तिगत रूप से प्रतिशोध लेने की गुंजाइश है। क्रांति बम और पिस्तौल की संस्कृति नहीं है। क्रांति से हमारा प्रयोजन यह है कि अन्याय पर आधारित वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन होना चाहिए। उत्पादक या श्रमिक समाज के अत्यंत आवश्यक तत्त्व हैं तथापि शोषक लोग उन्हें श्रम के फलों और मौलिक अधिकारों से वंचित कर देते हैं.....यह भयंकर विषमतायें और विकास के अवसरों की कृत्रिम समानताएं समाज को अराजकता की ओर ले जा रहीं हैं। यह स्थिति सदा के लिए नहीं रह सकती .....देश को एक आमूल परिवर्तन

की आवश्यकता है.....जब तक मनुष्य द्वारा मनुष्य तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण जो साम्राज्यशाही के नाम से विख्यात है, समाप्त नहीं कर दिया जाता तब तक मानवता को उसके क्लेशों से छुटकारा मिलना असंभव है और तब तक युद्धों को समाप्त कर विश्व शांति के युग का प्रादुर्भाव करने की सारी बातें महज़ ढोंग के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।"[3]

भगत सिंह मार्क्सवादी विचारधारा से अत्यंत प्रभावित थे तथा समाज में फैली अनेक प्रकार की असमानताओं से व्यथित थे। वामपंथी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण जानते थे कि जब तक समाज के प्रत्येक व्यक्ति के पास समान अधिकार नहीं होंगे, सामान संसाधनों का वितरण नहीं होगा तब तक हम सब गुलाम ही रहेंगे, चाहे हमे ब्रिटिशों से आज़ादी मिल भी जाये। समाज में कृषक वर्ग दिनरात मेहनत करने के बावजूद सपरिवार भूख से मर रहे थे। शोषक वर्ग अनेक मार्गों से उनके श्रम का अधिक से अधिक भाग लूट रहे थे। बुनकर सारी दुनिया के बाजारों में कपड़े की आपूर्ति करते है, परन्तु स्वयं और परिवार के पास तन ढँकने के लिए पर्याप्त कपड़ा नहीं जुट पाता था। ठीक इसी प्रकार समाज के शोषित अन्य तबके के कामगार भी इन्हीं शोषितों से त्रस्त थे फिर चाहे बात बढ़ई की हो, लोहार की हो या अन्य कामगार सभी अपनी मेहनत एवम् कला से सारी दुनिया को अपने उत्पाद उपलब्ध कराते थे, परन्तु जब उनकी बात आती तो उनके पास जीवन निर्वाह के लिए भी मुश्किल से संसाधन जुट पाते थे। दूसरी ओर समाज के पूँजीपति शोषक वर्ग अनेक प्रकार से शोषण कर रहे थे और अपना उल्लू सीधा कर रहे थे। इन नारों में निहित विचारधारा को देखें तो हम पाते हैं कि भगत सिंह समाज में फैली हर प्रकार की बुराई फिर चाहे वो सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक हो या राजनैतिक हो, वे आमूल परिवर्तन चाहते थे और इस प्रकार का बदलाव तो केवल वैचारिक क्रांति और सही समय पर सही तरीके के विरोध से ही संभव था।

भगत सिंह एवं दलित समस्या :-

भगत सिंह जैसे गहन अध्येता, तार्किकता, अत्याधुनिक विचारधारा तथा दूरदर्शी दृष्टिकोण अपनाने वाले क्रान्तिकारी का ध्येय केवल सत्ता परिवर्तन नहीं था, सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन ही उनका उद्देश्य था। समाज में फैली अनेक प्रकार की कुरीतियाँ एवं असमानताओं को भी जड़ से समाप्त करना उतना ही आवश्यक था जितना कि अंग्रेज़ी राज की समाप्ति। उस वक्त भारतीय समाज हिंदूवादी वर्णभेद से बुरी तरह से ग्रस्त था। जातिवादी भेदभावपूर्ण व्यवहार की ख़बरें आज भी अखबार के पन्नों पर हमारी हक़ीकत बयाँ करतीं है। कभी किसी दलित वर्ग से सम्बन्ध रखने वाला दूल्हा घोड़ी से उतार दिया जाता है यहाँ तक कि मार भी दिया जाता है, या कभी किसी दलित स्त्री की अस्मिता पर हमला हो जाता है। हालाँकि स्त्रियों की अस्मिता पर हमला होना यहाँ आम बात है, परन्तु यदि स्त्री दलित समाज से सम्बन्ध रखती है तो उसकी आबरु लुटने का खतरा अधिक है। बहुत सारे शैक्षिक संस्थानों में बड़े–बड़े बुद्धिजीवी भी दलितों के साथ भेदभाव से नहीं बच पाते हैं। उस वक्त तो यह तंत्र और भी मज़बूत था। उस पर शिक्षा तथा संसाधनों के आभाव ने दलितों की कमर ही तोड़ दी थी। यह स्थिति भगत सिंह भली भांति समझ रहे थे। अतः उन्होंने दलितों को संगठित होने तथा एक क्रांति लाने का आह्वान किया– "तुम असली सर्वहारा हो"।[4] यही नहीं उनका मानना कि जब तक स्वयं दलित अपने अधिकारों के लिए आगे नहीं आयेंगे उनकी स्थिति सदैव वैसी ही बनी रहेगी और सवर्ण उसे अपने पैरों की जूती ही समझेंगे। वे कहते हैं– "स्वतंत्रता के लिए स्वाधीनता चाहने वालों को स्वयं यत्न करना चाहिए। इंसान की

धीरे–धीरे कुछ ऐसी आदतें हो गयी हैं कि वह अपने लिए तो अधिक अधिकार चाहता है लेकिन जो उसके मातहत हैं उन्हें वह अपनी जूती के नीचे दबाये रखना चाहते हैं। कहावत है कि लातों के भूत बातों से नहीं मानते अर्थात संगठनबद्ध हो अपने पैरों पर खड़े होकर पूरे समाज को चुनौती दे दो। तब देखना कोई भी तुम्हें तुम्हारे अधिकार देने से इनकार करने की जुर्रत न कर सकेगा।"[5]

दरअसल भगत सिंह का मानना था जब तक जातीय समानता नहीं आएगी, तब तक आज़ाद होकर भी एक गुलामी रहेगी जो मानव सभ्यता को अग्रसर नहीं होने देगी। देश शक्ति विहीन हो जायेगा। अतः वे एक क्रांति लाना चाहते थे क्योंकि धीरे–धीरे होने वाले सुधारों से कुछ नहीं होने वाला था। वे सीधे संसदीय राजनीति को खारिज़ करने की पुकार कर रहे थे। यदि भगत सिंह के दिखाए रास्ते पर देश के नेता चलते तो आज दलितों की वह स्थिति न होती जो आज है। आज भी जब कि दलितों की में काफ़ी सुधार है परन्तु उस बिंदु तक नहीं जितना होना चाहिए था। जब भी दलित उत्थान की बात आती है कोई भी भगत सिंह की क्रान्तिकारी विचारधारा के बारे में बात नहीं करना चाहता है। गैरदलित चिंतन में इस सवाल पर गाँधीवादी विचारधारा ही हावी रहती है। लोग वही सोचते हैं जो गाँधी सोचते थे। आश्चर्य होता है कि गाँधी एक हिंदूवादी नेता थे तथा उनके हर वक्तव्य में, हर फैसले में हिंदुत्व ही हावी रहा। इस बात हम इस उदाहरण से समझ सकते हैं– "पहली बार साइमन कमीशन 13 फरवरी 1928 को भारत आया। इसी साइमन कमीशन ने कम्युनल अवार्ड की घोषणा की जिसके अनुसार दलितों को अपने प्रतिनिधि अलग चुनने का अधिकार दिया गया था। मुसलमानों, सिक्खों, इसाईयों के अलग प्रतिनिधि को गाँधी ने कम्युनल अवार्ड की व्यवस्था के अनुसार स्वीकार कर लिया था पर दलितों को यह अधिकार मिले इसके लिए उन्होंने आमरण अनशन कर दिया था।"[6]

यहाँ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अंग्रेजी शासन ने भारत में विधायिका को एक बेहतर व्यवस्था देने के लिए विभिन्न समुदायों को अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया था मुसलमान, इसाई और सिख अपने प्रतिनिधि चुन सकते थे और यही हक़ दलितों को भी मिलने वाला था परन्तु गाँधी ने इस कमीशन के खिलाफ़ आमरण अनशन का ऐलान कर दिया और बाद में समझौते के साथ इस एक्ट को ही समाप्त कर दिया गया। दरअसल सनातनी हिंदूवादी नेता होने के नाते गाँधी यह समझ गये थे कि यदि दलितों को हिंदुओं से अलग संप्रदाय के रूप में अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिल गया तो देश में हिन्दू अल्पसंखयक हो जायेंगे। अत्यंत खेद की बात है कि जहाँ दलितों को पहली बार उनके आधिकार मिलने वाले थे उसे गाँधी ने आमरण अनशन के द्वारा ख़ारिज करवा दिया। उन्होंने यह सिर्फ इसीलिए किया ताकि हिन्दू अल्पसंख्यक न हो जाये। उनके इस फैसले से हिन्दू अल्पसंख्यक तो नहीं रहा परन्तु शूद्र समुदाय को वही अपमान और सामाजिक सांस्कृतिक गैरबराबरी सहने के लिए हमेशा के लिए अभिशप्त होना पड़ा। (वर्तमान समय तक तो यही स्थिति है)।

हालाँकि स्वयं गाँधी छुआछूत का विरोध करते थे, जड़ से मिटाना चाहते थे परन्तु वह यह नहीं समझ पाए कि छुआछूत तो सामाजिक गैर बराबरी का केवल बाई प्रोडक्ट (उप उत्पाद) है मुख्य समस्या तो बराबरी और अस्मिता की है। हिन्दू समुदाय से अलग होकर कमसे कमवे सम्मान पूर्वक रह तो सकते थे। हिन्दू किसी मुस्लिम को नहीं छूता, उसके साथ नहीं खाता परन्तु अपमान भी नहीं करता। ठीक वही हिन्दू दलितों के साथ नहीं उठता बैठता, खाता–पीता, लेकिन उसका शोषण करता है, अपमान करता है। कम से कम दलित अपने ही समुदाय में अपमानित होने से तो बच जाता।

इसके ठीक उलट भगत सिंहने अपने लेख में स्पष्ट किया है कि "हम मानते हैं कि उनके अपने जनप्रतिनिधि हों" यह पंक्ति स्पष्ट करती है कि वे अलग निर्वाचन के ही समर्थक थे जो और यही दलितों के हक़ में भी था। हालाँकि दलितों पर अत्याचार कुछ कम जरुर हुए है परंतु उतने नहीं जितने इस एक्ट से हो सकते थे। "भगत सिंह का सपना वह भारत निर्माण करना था जिसमें व्यक्तिगत मुक्ति भी सुरक्षित रहेगी और मेहनतकश की सरदारी और प्रभुसत्ता को सत्कारा जाएगा। हम ऐसी ही क्रांति का सन्देश दे रहे है।"[7]

भगत सिंह सामाजिक मुक्ति और व्यक्तिगत मुक्ति के पक्षधर थे। जहाँ किसी भी प्रकार का शोषण नहीं होगा। वे समाजवादी गणतंत्र के लिए तब तक दोगुने उत्साह, साहस और अटूट संकल्प के साथ लड़ना चाहते थे जब तक वर्तमान शोषणकारी व्यवस्था का स्थान एक नई जनकल्याणकारी व्यवस्था नहीं ले लेती। जहाँ हर कोई अपने स्वाभिमान के साथ जीवन व्यतीत कर सके। वे इसी क्रांति का आवाहन करना चाहते थे। उनका सपना एक विचारशील वैज्ञानिक एवं प्रगतिशील राष्ट्र बनाने का था। वे वैज्ञानिक एवं तार्किक विचारधारा के साथ साथ भारतीय विरासत के सांस्कृतिक गुणों जैसे– निष्काम देश सेवा, बलिदान, प्रेम सौहार्द को भी अपनाना चाहते थे। परन्तु मिथकीय विचारों को जो कि पुराने विधानों के अनुरूप है उन्हें मानने को तैयार नहीं थे क्योंकि उनका अटल विश्वास था कि आज ज्ञान विज्ञान ने बहुत तरक्की कर ली है हम भविष्य की समस्याओं को वैज्ञानिक विचारधारा अपनाकर ही हल कर सकते हैं।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि भगत सिंह भरतीय स्वाधीनता संग्राम के अत्यंत लोकप्रिय क्रांतिकारी थे। वे एक ऐसे व्यक्ति थे जिनके प्रेम स्वपन, जीवन, राजनीति,देश प्रेम, गुलामी और धर्म जैसे विषयों पर बेहद लौकिक विचार थे तभी उन्होंने मनुष्य द्वारा मनुष्य शोषण के हर स्वरुप–साम्राज्यवाद, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, असमानता, धार्मिक कट्टरता आदि का पुरजोर विरोध किया। प्रसिद्ध लेखक मुद्राराक्षस कहते हैं बहुत से लोग जीसस की तुलना में गाँधी से करते है ऐसे लोग न तो गाँधी को समझते है और न ही जीसस को। उनके अनुसार जीसस की थोड़ी तुलना भगत सिंह से जरुर की जा सकती है क्योंकि जीसस और भगत सिंह दोनों ही अपनी मृत्यु को बुलाया था। वे जानते थे कि उनकी मृत्यु ही उनके उदेश्यों की गारंटी दे सकता है। बम फेंकने के बाद भगत सिंह भाग सकते थे परन्तु उन्होंने गिरफ्तारी दी। वहीं गाँधी को धोखे से गोली मारी गयी थी। जीसस ने भी मृत्यु को विरासत दी। इस तरह के ऐतिहासिक और साहसिक फैसले केवल महान लोग ही कर पाते है।

संदर्भ :-

1. निर्मोही, दीपचंद, भगतसिंह से दोस्ती–सूरज का सफ़र, साहित्य उपक्रम, दिल्ली, प्रथम सं– 2005, पृष्ठ संख्या–6.
2. वही।
3. निर्मोही, दीपचंद, भगतसिंह से दोस्ती–सूरज का सफ़र, साहित्य उपक्रम, दिल्ली, प्रथम सं– 2005, पृष्ठ संख्या–7–8.
4. मुद्राराक्षस, भगत सिंह होने का मतलब, साहित्य उपक्रम, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2008, पृष्ठ संख्या–51.
5. वही।
6. वही, पृष्ठ संख्या– 14.
7. वही, पृष्ठ संख्या –17.

M. No. : 9478261237, Email : ushamaurya90@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 228-231

मिथिलेश्वर का कथा साहित्य : सामाजिक अनुशीलन

ए. प्रवीण कुमार गौड़
पीएच.डी. (हिंदी), उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद।

भारतीय समाज व्यवस्था रूढ़ी–परंपरा, जाति–पांति, अशिक्षा, भ्रष्टाचार, किसान वर्ग की दुर्दशा, समाज का वर्गगत विभाजन, छुआछूत, जातिवाद, स्त्री जीवन, शहरीकरण और सामाजिक चेतना का प्रभाव दिखाई देता है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत में औद्योगिक विकास तो अवश्य हुआ लेकिन ग्रामीण क्षेत्र अविकसित ही रह गया है। मिथिलेश्वर ग्रामीण जीवन का बखान करनेवाले एक महान साहित्यकार माने जाते हैं। उन्होंने अपने साहित्य जिन पात्रों का निर्माण किया है वे पात्र कहीं–न–कहीं पर समाज से जुड़े हुए हैं। यह पात्र कदम–कदम पर आनेवाली समस्याओं का सामना करते हैं। इसके बाद भी वे सामाजिक दायित्व निभाते हैं। साहित्य युग तथा समाज के मूल्यों को स्वीकारता है और नवीन मूल्यों के द्वारा समाज को गति भी प्रदान करता है।

रचनाकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। वह सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होता है। युग की समस्याएं, भावनाओं और अवधारणाओं को संतुलित रूप से ग्रहण करने की उसमें क्षमता अधिक होती है। साहित्यकार युग का प्रतिनिधित होता है, उसे जैसा परिवेश मिलता है, वैसा ही चित्रण उसकी रचना में होता है। वह अपने विचारों को मुखरित करता है। 'नपुसंक समझौते' कहानी में एक किसान अपने घर की स्थिति बदलाता है– "पिछले कई वर्षों से खंडगर का रूप लेता जा रहा है। वह मरम्मत करने की तैयारी करता है कि अब अचानक पैसों की कमी के कारण उसे चुप हो जाना पड़ता है, या फिर कभी जब वह पैसे जुटाकर काम लगवाने की सोचता है, तो सहसा कोई समस्या आ जाती है कि पैसे उसके पास से खिसक जाते हैं। अभी पिछले साल की ही बात है, किसी तरह तीन सौ रूपये इनसे इकट्ठे किए थे। एक दो दिन में काम लगवाने की सोच ही रहा था कि छोटी बहन रश्मि को टाइफाइड हो गया। फिर उसके समूचे रूपये कस्बे के डॉक्टर मुखर्जी कि जेब में चले गये।"[1] इस वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि किसान वर्ग के जीवन मंन कई तरह की समस्याएँ हैं।

किसान अपनी खेत की फसल की दुर्दशा को बताते हुए कहता है– "यह धरती कभी–कभार हरी–भरी हो जाती है और वह सदा सूखा–का–सूखा रहता है मगर उसकी सरकार एकदम अंधी है। उसको कुछ नहीं दिखता। इसी सूखी धरती पर उसने परीवट और मालगुजारी का रेट दुगुना कर दिया। वह सोचता है, सरकार ये खेत ले क्यों नहीं लेती? क्यों तड़पा–तड़पा कर मार रही है?"[2] किसान व्यक्ति गरीबी मे जन्म लेता है और गरीबी में ही जीवन यापन करता है। किसाव वह धुरी है जिस पर देश की वित्तीय बोझ का भार है। किसान वर्ग की दुर्दशा पर सरकार संवेदनशील नहीं है। मिथिलेश्वर का साहित्य ग्रामीण जीवन पर आधारित है।

उपन्यास 'झुनिया' में कृषि भूमि का असमान वितरण के सामाजिक प्रभाव का चित्रण है। खेती किसानों

की समृद्धि, स्वाभिमान, मान सम्मान, गौरव और आत्मनिर्भर का प्रतीक था। परंतु बदलते दौर के साथ यह प्रतीक बेबसी, लाचारी, विवशता, गरीबी में बदल गया है। अन्नदाता अपने श्रम से चरवाह, बनिहार, नाई, धोबी, बढ़ई, कुम्हार, पुरोहित आदि परंपरागत व्यावसायिक जातियों की जीविका चलाता था। सबका पेट भरनेवाला अन्नदाता आज कई समस्याओं से घिरा हुआ है। आज खेती घाटे का सौदा बन गयी है। खेती पर आश्रित किसान अपनी मूलभूत जरूरतों को भी पूरा नहीं कर पाता है। अन्नदाता अपनी खेती से पलायन होने पर मजबूर है।

कहानी 'जुमना' में नक्सलवाद की चपेट में आए ग्रामीण क्षेत्र के यथार्थ का चित्रण है– "गांव में आए दिन जिस तरह हत्याएँ हो रही है और जिस तरह वैमनस्य फैल गया है उसे देखते हुए रात के इस घने अंधेरे में बँसवार में जाना खतरे से खाली नहीं। गांव जाति के आधार पर कई खेमों और गुटों में बँट गया है। दिन में सदियों से चले आ रहे संबंधों का निर्वाह किसी तरह लोग कर लेते हैं। लेकिन रात होते ही लोगों पर हैवानियत का भूत सवार हो जाता है। रात के अंधेरे में, कब, कौन किसकी गर्दन उड़ा दे, कुछ कहा नहीं जा सकता? अब तो यह देखा नहीं जाता कि व्यक्ति दोषी है या नहीं? देखा सिर्फ यह जाता है कि वह किस जाति या वर्ग का है।"[3] नक्सलवाद के आरंभिक दौर में इसमें सभी जाति, धर्म और वर्ग के प्रताड़ित लोग थे। परंतु कालांतर में यह आंदोलन बिखरता गया और अपने लक्ष्य से भटकता गया।

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही जातिवाद और छुआछूत मौजूद है। जाति, वंश और जन्म के आधार पर निर्धारित महत्वपूर्ण ईकाई किया है। इस व्यवस्था के कारण वैर–भाव, भेदभाव, असमानता बढ़ता गया। डॉ. राममनोहर लोहिया ने इस व्यवस्था के संदर्भ में लिखा है– "जीवन के बड़े तथ्य जैसे जन्म, मृत्यु, शादी–ब्याह, भोज और अन्य सभी रस्में, जाति के चौखटे में ही होती हैं। उसी जाति के लोग इन निर्णायक कामों में एक–दूसरे की मदद करते हैं। ऐसे मौकों पर दूसरी जातियों के लोग किनारे पर रहते हैं, अलग और जैसे वे तमाशबीन हों।"[4] यह कथन जातिभेद की सच्चाई को दर्शाता है। शारीरिक बीमारी का इलाज है किंतु जाति एक ऐसी बीमारी है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक बनी रहती है। मृत्यु के बाद भी जाति पीछा नहीं छोड़ती है। जाति व्यवस्था असमानता और विषमता पर आधारित है। जाति के आधर पर कोई उच्च है तो कोई निम्न। देश की जनता हजारों जातियों में बंटी हुई हैं। जाति के आधार पर व्यक्ति को सम्मान और असम्मान मिलता है।

'जिंदगी का एक दिन' कहानी में आरा शहर में रहनेवाले मामूली कर्मचारी रघुलाल के जीवन और दिनचर्या का चित्रण है। पिछले तीस वर्षों से उसके जीवन में कोई बदलाव नहीं आया है। वह कब उठता है, नाश्ता, स्नान, बच्चों को पढ़ाना, खाना खिलाना, दफ्तर जाना, दोस्तों से बातचीत, कार्यालय से लौटना और रात में सोने तक का प्रसंगों का चित्रण कहानी में है। रघुलाल के भागदौड़ भरे जीवन का चित्रण है। 'छोटे शहर के लोग' कहानी में गांव से शहर आने पर अपने परिवार से बिछड़नेवाली तथा परिवार से मिलने के लिए कोशिश करनेवाली युवती की कहानी है। एक ग्रामीण युवती अपनी माँ और भौजाई से बिछड़ जाने पर उसके सामने आनेवाली समस्याओं को मिथिलेश्वर ने उठाया है। 'जंगल होते शहर' कहानी में एक प्राध्यापक सिन्हा बाबू के मन में हत्या और अपराधी भावनाओं को जागृत करनेवाली कहानी है। सिन्हा बाबू के दोस्त रामलाल की हत्या एक छात्र क्लास से बाहर निकलते समय छुरा भोकता है। इस घटना को अन्य प्राध्यापक आम बात मानते हैं। दिनों–दिन बढ़ता अत्याचार, अपराधी घटनाओं से शहर के लोग भयभीत हो जाते हैं। शहरों में होनेवाले प्रतिदिन की घटनाओं ने उन्हें शहर को जंगल की उपमा देने के लिए बाध्य किया है। वे कहते है कि– "क्या शहर की यही संस्कृति होती है? यह

तो जंगल की संस्कृति है कि जब सिंह किसी जानवर पर हमला बोलता है, तो शेष जानवर वहाँ से भाग जाते है।"[5] 'आनंद मोहन वर्मा बेहोश है' कहानी के द्वारा मिथिलेश्वर ने आनंद मोहन वर्मा जैसे संवेदनशील व्यक्ति के मन पर शहरी जीवन की चोट कैसी लगती है, उसका चित्रण है। प्रो. आनंद मोहन वर्मा विद्वान व्यक्ति है। बावजूद वे महानगरीय जीवन की उपभोक्ता संस्कृति का शिकार बनते हैं। उन्हें लगता है कि उपभोक्ता संस्कृति में शहर के लाभ को अधिक महत्व दिया जा रहा है।

'माटी कहे कुम्हार से' उपन्यास की नायिका मुनिला विद्रोही स्त्री है। उसका पति मुनीलाल मालिक रिवाजन साव के यहाँ चक्की–आटा पीसने का काम करता है। पैसे की लालच में गांव की राजनीतिक पार्टी वाले और गांव गुंडे रिवाजन साव के घर में डाका डालकर उसके बेटे का अपहरण करते हैं। मालिक रिवाजन साव की रक्षा करने के लिए आगे आए मुनीलाल की गुंडे हत्या कर देते हैं। पति की हत्या से क्रोधित होकर मुनिला प्रतिशोध की भावना में जलती है। वह प्रण करती है कि– "तुमको जिन गुंडों ने मारा है मैं उनमें से किसी को जीवित नहीं छोडूंगी.. सब हरामियों को मारूँगी। कहाँ है मेरा हथियार।"[6] मुनिला में पति मुनीलाल के हत्यारों के प्रति विद्रोह की भावना भड़कती है। 'प्रेम न बाड़ी उपजै' उपन्यास में मोना विद्रोही स्त्री है। उपन्यास में बंगाली बाबू का बेटा सौ–सौ का नोट दिखाकर मोना की अब्रू लूटने की कोशिश करता है तब मोना उसका विरोध करती है और जोर से चिल्लाकर कहती है– "तो अब तू धमकाना चाहता है...ठहर, अभी इस पहसुल से तुझे टुकड़े–टुकड़े न कर दिया तो भोजपुरिया खून नहीं...। तू मुझे डराना चाहता है...। पहले तो मैं तुझे जिंदा नहीं छोडूंगी। अगर उसमें सफल न हो सकी तो इसी पहसुल से अपने को काट लुँगी...। लेकिन यह नौबत नहीं आएगी, तू मेरे हाथों बच नहीं पाएगा।"[7] मोना में बंगाली बाबू के बेटे के शोषण के प्रति विद्रोह की भावना है।

'मेघना का निर्णय' कहानी में किसान जीवन की समस्याएँ हैं। यह कहानी शहरी लोगों की ग्रामीण लोगों के प्रति नकारात्मक सोच को दर्शाती है। "कुल्हाड़िया से आरा जाते समय ट्रेन में एक दिन मेघना ने कुछ लोगों पटना की बाढ़ के बारे बतियाते हुए सुना था। वे काफी पढ़े–लिखे लोग थे। आपस में बतियाते हुए यह कह रहे थे कि पटना को बचाने के लिए जान–बूझकर उसके आसपास के इलाकों में डुबो दिया गया। आखिर पटना को बचाना भी तो जरूरी था। पटना राजधानी है। वहाँ बड़े–बड़े अफसर, वकील, इंजीनियर, सेठ और नेता रहते हैं। उनकी जान की कीमत किसानों की जान की कीमत से अधिक है। उन्हें बचाना जरूरी है। उन्हें बचाना जरूरी था। वे जिंदा रहेंगे तो राजकाज चलायेंगे। किसान तो मूर्ख होते हैं, वे रहे या न रहें! एक मरेगा तो फिर कहीं–न–कहीं से एक दूसरा उसकी जगह पर आ ही जायेगा।"[8] मिथिलेश्वर ने शहरी लोगों की मानसिकता को उजागर किया है। कहानी में पटना शहर के इलाके में जब बाढ़ आयी तो पटना को बचाने के लिए सरकार बाढ़ को गांवों की ओर मोड़ दिया गया है। इससे कई गांव और फसले बर्बाद होती है।

'माटी कहे कुम्हार से' बिहार प्रदेश के भोजपुर जिले के गांगी के किनारे स्थित नरही नामक झोपड़पट्टी में निवास करनेवाले लोग शिक्षा से वंचित है। मुनीलाल उन लोगों में शिक्षा के प्रति चेतना निर्माण करता है। वह झोपड़पट्टी के लोगों में शिक्षा का प्रचार करके जागृति और नई चेतना निर्माण करता है। वह कहता है– "तुम सब लिखना–पढ़ना सीख लो। लिखना–पढ़ना जान जाओगे तो जीवन भर इसका लाभ पाओगे।"[9] मिथिलेश्वर ने ग्रामीण लोगों को सामाजिक चेतना जागृत हो इसलिए मुनीलाल के द्वारा चथार्थि चित्रण किया है।

साहित्य के माध्यम से ग्रामीण परिवेश के विभिन्न सामाजिक पहलुओं को दर्शाया है। जमींदार, सामंती और

पूंजीपति वर्ग के लोग सर्वहरा वर्ग का शोषण करते हैं और समाज में स्त्री की स्थिति कितनी दयनीय है उसका यथार्थ चित्रण किया है। लेखक ने सामाजिक परिस्थितियों और विसगंतियों को नज़दीक से देखा है। बेरोजगारी, गरीबी, भुखमरी का भयावह चित्रण किया है। मिथिलेश्वर ने अपने साहित्य के माध्यम से आम जनता में जागृति लाने का प्रयास किया है।

संदर्भ :-

1. मिथिलेश्वर – मिथिलेश्वर की संपूर्ण कहानियाँ, भाग–1, पृ.सं. 24–25
2. मिथिलेश्वर – मिथिलेश्वर की संपूर्ण कहानियाँ, भाग–1, पृ.सं. 27
3. मिथिलेश्वर – मिथिलेश्वर की संपूर्ण कहानियाँ, भाग–3, पृ.सं. 413–414
4. सं. एस.एस. गौतम, अजय कुमार – जाति आखिर क्यों नहीं जाती, पृ.सं. 42
5. मिथिलेश्वर – हरिहर काका, पृ.सं. 115
6. मिथिलेश्वर – माटी कहे कुम्हार से, पृ.सं. 199
7. मिथिलेश्वर – प्रेम न बाड़ी उपजौ, पृ.सं. 137
8. मिथिलेश्वर – प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ.सं. 49
9. मिथिलेश्वर – माटी कहे कुम्हार से, पृ.सं. 68

मो.नं. 9440394446

ई–मेल ailipraveenkumargoud@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 232-235

समकालीन हिंदी उपन्यासों में मानवीय मूल्य

बालाजी
पीएच.डी. (हिंदी), हिंदी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद।

मानवीय मूल्य की श्रेणी में व्यक्ति और समाज के अंतर्संबंधों और सामाजिक व्यवस्था में अंतर्निहित मूल्य का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। सामाजिक जीवन, सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक संस्थाओं को सभ्य एवं मानवोचित बनाने वाले मूल्य भी मानवीय मूल्य हैं। आधुनिक मानवतावादी दृष्टि से उपजे ये मानव मूल्य है– सामाजिक न्याय, लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था, सम्मानपूर्वक जीवन जीने और आगे बढ़ने का अधिकार आदि। इन मूल्यों को अपने जीवन में साकार करना, उन्हें सामुदायिक मूल्य चेतना का अंग बनाना हमारा दायित्व होता है। आज इस व्यापक मूल्य जीवन के सभी क्षेत्रों में दिखाई देते हैं। व्यक्ति का उदात्त मूल्यों का स्वीकारने से महान बनता है। रेखा कस्तवार के शब्दों में– "व्यक्ति विकास सुरक्षा के उपरांत परिवार का एख महत्वपूर्ण उद्देश्य संतानोत्पत्ति का है।"[1] समकालीन दौर में समाज में मुख्य रूप से दो रूप प्रचलित है– संयुक्त परिवार और एकल परिवार। भारतीय समाज में स्त्री–पुरुष संबंधित मूल्य के प्रति विशेष आदर रहा है। यही कारण है कि समाज के प्रति निष्ठावान रहने की परंपरा भारतीय जनमानस में विशेष रूप से विद्यमान है। आचरण की पवित्रता को महत्व दिया जाता है। मानवीय मूल्य में दो भेद है एक शाश्वत और सापेक्ष जीवन मूल्य। शाश्वत जीवन मूल्य ये सर्वमान्य आचारण सिद्धांत के अंतर्गत आते हैं। ये मानवीय मूल्य शाश्वत जीवन मूल्य में सर्वमान्य आचरण सिद्धांत के अंतर्गत आते हैं।

ममता कालिया के 'दौड' उपन्यास स्त्री–पुरुष संबंधिध मूल्यों का चित्रण मार्मिक रूप से हुआ है। उपन्यास के पात्र अभिषेक और उसकी पत्नी राजुल के संबंध का द्वंद्व दिखाई देता है। उपन्यासकार के शब्दों में– "पवन तुम लकी हो, अभी तुम्हारी जान को न बीवी का झंझट है न बच्चे का। राजुल मेरा क्या झंझट है तुम्हें? मैंने तुम्हें पहले ही कहा था मैं अभी बच्चा नहीं चाहती। तुमकों ही बच्ची पड़ी थी।"[2] बच्चे के प्रति राजुल की संवेदनशीलता को लेखिका ने चित्रित किया है– "आजकल तो डिंक्स का जमाना है डबल इनकम नो किड्स (दोहरी आमदनी बच्चे नहीं) सेंटीमेट्स के चक्कर में फंस गई।"[3] बाजारवाद की होड़ और बुद्धि विकास की आड़ में बच्चों का बचपन छीन गया है। बच्चे संवेदनहीन बनते जा रहे हैं। इन परिस्थितियों के कारण उनका अस्तित्व संकट में पड़ा है। बच्चों के लिए सबसे बुरी बात यह है कि उन्हें खेल–खिलौनों में ही उलझा जाने लगा है।

उषा प्रियवंदा के 'पचपन खंभे लाल दीवारें' उपन्यास की पात्र सुषमा की माँ अपनी बेटी के लिए धन–संपत्ति कमाना चाहती है। नीरू के विवाह को लेकर वह चिंतित है। सुषमा की वह छोटी बहन है। माँ ने

सुषमा से कहा कि– "तुमसे हमेशा कहा कि नीरू की शादी का बंदोबस्त करना है, तुमने कभी ध्यान ही नहीं दिया। मेरे पास आज दस हजार होते तो खट् से नीरू की शादी का बंदोस्त करना है, तुमने कभी ध्यान ही नहीं दिया। मेरे पास आज दस हजार रुपये होते तो खट् से नीरू की शादी हो जाती।"[4] इस उपन्यास की नायिका सुषमा की शादी की उम्र निकल जाने पर अपनी माँ और बहनों के जीवन के पालन–पोषण के लिए एक मशीन बनकर काम करती है और परिवार के सारे संबंध अब उसे काटने दोड़ने लगते हैं। सुषमा के दो बहनें और दो भाई हैं। पिताजी बीमार है। इन सब की पालन–पोषण की जिम्मेदारी सुषमा पर आती है। नीरू का विवाह और तीनों भाई–बहनों की शिक्षा, पिताजी का इलाज आदि पर काफी खर्च होता है। सुषमा के शब्दों में– "तेरे सुख और भविष्य का उत्तरदायित्व मुझ पर– मैं सब करूँगी।"[5] सुषमा के जीवन की समस्या आज के स्त्री के जीवन की प्रमुख समस्या है। वह अपने पारिवारिक परिस्थितियों से वशीभूत तथा अपनी बौद्धिकता के कारण किसी पुरुष को पसंद न कर पाने की वजह से विवाह नहीं कर पाती है। विवाह की उम्र निकल जाती है। स्त्री आज पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर हर क्षेत्र में काम कर रही है। सुषमा मध्य वर्ग की स्त्री है।

'सवित्तरी' उपन्यास में एक दंपत्ति के पास एक गरीब घर की स्त्री काम करने आती है। वह आर्थिक विपन्नता में जूझती है। इस उपन्यास की पात्र सुनील सरकारी नौकरी की खोज करता रहता है। वह बहुत दयालू व्यक्ति है। मानव सेवा को अपना परम धर्म मानता है। वह पत्नी को इस लड़की की दयनीय स्थिति पर कहने लगता है कि– "सचमुच कितना दुरूखदायी होता है गरीब घर की सुंदर बेटी का जीवन, यह अब अपनी आँखों के सामने है मीता! मैं ये बात दो टूक कहना चाहता हूँ कि दूसरे घर चौका–बरतन करते जितनी सामान्य यह लड़की नहीं और विश्वास मानो! मैंने एक लंबे विराम के बाद तुम्हें फिर से पाया है और अब मैं कोई बात ऐसी होने देना पसंद नहीं करुंगा, जिसे तुम्हें तकलीफ हो...और न यह कि जीवन भर के लिए मन में यह पश्चाताप रहे कि गरीब की बेटी से ज्यादती हो गई।"[6] शैलेश मटियानी ने सामाजिक मूल्यों के महत्व को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। पेट की भूख मनुष्य को तड़पने के लिए मजबूर करती है। 'गोपुली गफूरन' उपन्यास के अधिकांश पात्र गरीबी से पीड़ित है। गोपुली माता–पिता की एकमात्र संतान है। माता–पिता उसका विवाह करते हैं किंतु दुर्भाग्यवश पति उसे छोड़कर चला जाता है। गोपुली को ही घर की पूरी जिम्मेदारी संभालनी पड़ती है। नैतिक मूल्यों के मूल में व्यक्ति के पारस्पारिक संस्कार और मूल्य में निहित होते हैं। नैतिक मूल्यों का क्षेत्र विस्तृत है। मनुष्य का सारा व्यवहार जो समाज को सुंदर बनाता है, वह नैतिक मूल्यों के अंतर्गत आता है। नैतिक मूल्यों में सत्य का सबसे अधिक प्रभाव होता है क्योंकि सत्य ही उन्नति का आधार है, इसलिए हर व्यक्ति को निरंतर सत्य का आचरण करना चाहिए। साहित्य सामाजिक स्थितियों का लेखा–जोखा है। अनुभव एवं अनुभूति के बिना रचना की कल्पना नहीं की जा की सकती। साहित्य में सामाजिक जीवन का यथार्थ प्रतिबिंब अभिव्यक्त होता है।

नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यासों में स्त्री जीवन संबंधित मूल्यो का विस्तार से चित्रण किया है। 'शाल्मली' और 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास मंगनी में स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण है। 'शाल्मली' उपन्यास की नायिका शाल्मली अपने पति नरेश को झेलते हुए जीवन जीने के लिए मजदूर है। वह चाहकर भी कुछ नहीं कर पाती है। वह अपने परिवार को बर्बाद नहीं होने देना चाहती है। वह अपने आप को संभालती है। उसे अच्छे वक्त

का इंतजार रहता है। वह अपने पति से आशा रखती है कि वह उसे प्रेमिका के रूप में चाहे। शाल्मली को बच्चे नहीं चाहिए, वह आत्मसम्मान और स्वाभिमानी स्त्री है। 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में महरूख स्त्री का जीवन चित्रित है। महरुख की स्थिति और उसका रुढ़ियों के विरोध करना और उन बंधनों को तोड़कर घुनटभरे माहौल से निकलने के लिए संघर्ष करती है। महरूख शिक्षित स्त्री है। वह अपने चारों ओर के परिवेश से लड़कर जीवन को अपने ढंग से गढ़ती है। उपन्यास में रफतभाई अचानक वजीफा लेकर अमेरिका जाते है। उनके जाने से पहले सभी लोग महरूख से उसका विवाह करवाने के इच्छुक थे। किंतु वह व्यावहारिक दृष्टि से इसे असंभव बताया जाता है और लौटकर आने पर ही विवाह करने का आश्वासन देकर चला जाता है। यह महरूख के लिए एक झटके जैसा था। उसके अस्तित्व की जड़ों को हिला देता है। बाद में पता चलता है कि उसने किसी अमेरिकी लड़की से शादी कर ली है। महरूख के सामने फिर शादी का प्रस्ताव रखा जाता है।

इस पर महरूख कहती है कि– "मैं जगह, चीज या मकान नहीं थी, रफत भाई जो वैसी की वैसी ही रहती। मैं इंसान थी, कमजोरियों का पुतला। मैंने आपको जिस भरोसे भेजा था। आप भी वैसे कहाँ रह पाएँ? कुछ चीजें कितनी बेआवाज टूटती है। मैं बेआवाज टूटी थी। किरच–किरच होकर बिखरी थी। बड़ी मुश्किल से अपने को चुना है, समेटा है, जोड़ा है, तब कहीं जीने के काबिल हुई हूँ। मुझसे अब मेरी यह जिंदगी वापस मत छिनिए।"[7] महरूख ठोस जमीन पर जीवन जीना चाहती है। अंतिम रूप में अपना निर्णय सुनाते हुए कहती है कि– "मेरी जिंदगी पर सिर्फ मेरा हक है..।"[8] रात में सोने से पहले वह सोचती है कि उसने जो निर्णय लिया है वह सही है– "महरूख कमरे में बिस्तर पर औंधी पड़ी सोच रही थी कि जिस महरूख को पूरा खानदान बचपन से मुझपर लादता आया था, वह महरूख मैं नहीं थी। मुझे सांस ही कब किसी ने लेने दी, जो मैं अपने अंदर छिपी लड़की को ढूंढती, समझती, पाती और पहचानती। आज अब मैंने अपने आपको पहचान लिया है, तो उस लड़की को पा लिया, जो मेरे अंदर है, जिसका सही नाम महरूख है और मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि उसकी रहचान जो भी मगर रफत भाई हारगिज नहीं है।"[9] रफत के व्यवहार से जो भावनात्मक चोट महरूख को लगती है। उससे वह उबर नहीं पाती है। उपन्यासकार ने महरूख के द्वारा स्त्री जीवन जीवन संबंधित मूल्यों को पाठकों के सम्मुख रखा है।

वर्तमान परिवेश की जटिलताओं ने सबसे अधिक चोट संस्कृति पर पड़ी है। भूमंडीकरण ने महानगरीय जीवन और मानवीय मूल्यों को संकुचित कर दिया है। आज विश्व में बाजारवाद फैल गया है। बाजारवाद ने प्रत्येक वस्तु को उपभोग के दायरे में खड़ा कर दिया है। बाजारवाद के केंद्र में केवल मुनाफा है, मानवीय मूल्य नहीं है। आज बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ बाजार व्यवस्था को नियंत्रित कर रही है। वह बाजारवादी संस्कृति उपभोक्तावाद के द्वारा काम करती है। उपभोक्तावादी समाज में वस्तु की कोई उपयोगिता नहीं होती है, मात्र उपभोग मूल्य होता है। इस महानगरीय चकाचौंध में पड़कर पूरा विश्व उपभोक्तावाद के पीछे बाजारवाद की कटपुलती बन गया है। भूमंडलीकरण ने नयी संस्कृति को जन्म दिया है, जिसमें मानवीय मूल्यों को बदलाव आया है। आज महानगरीय जीवन उपभोक्ता संस्कृति की चपेट में आ गया है। शैलेश मटियानी के 'सवित्तरी' में महानगरीय जीवन और मानवीय मूल्यों का विस्तार से चित्रण हुआ है। पति नौकरी करता है। उन्हें एक बेटी है।

गरीबी के कारण उन्हें विभिन्न समस्याओं से गुजरना पड़ता है। मीता अपने बारे में कहती है– "मैं भी पागल ही हूँ, सवित्तरी, जो तुमसे ये बातें कर बैठती हूँ। क्या बताऊँ, मिसेज श्रीवास्तव और शर्माईन लोगों से अभी से जी खोलकर बोलने जितनी आपसदारी बन नहीं पाई...हाथ की मजदूरी करने वाले बच्चे बोझ न लगते होंगे, सवित्तरी, मगर दिमाग और कलम की मजदूरी वालों की अब मुसीबत है। महाँगाई का ये हाल है, एक बच्चे की ठीक से परवरिश मुश्किल। मैं सोचती थी, कहीं किसी स्कूल में मैं पढ़ाने लगूँगी तो बोझ बंटेगा।"[10]

शैलेश मटियानी ने मीता के माध्यम से दर्शाया कि अर्थाभाव में इतनी विवश हो जाती है कि महंगाई उन्हें डायन जैसी लगने लगती है।

संदर्भ :-

1. रेखा कस्तवार – स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, पृ.सं. 193
2. ममता कालिया – दौड, पृ.सं. 29
3. ममता कालिया – दौड, पृ.सं. 30
4. उषा प्रियवंदा – पचपन खंभे लाल दीवारें, पृ.सं. 28
5. उषा प्रियवंदा – बचपन खंभे लाल दीवारें, पृ.सं. 80
6. शैलेश मटियानी – सवित्तरी, पृ.सं. 88
7. नासिरा शर्मा – ठीकरे की मंगनी, पृ.सं. 117
8. नासिरा शर्मा – ठीकरे की मंगनी, पृ.सं. 118
9. नासिरा शर्मा – ठीकरे की मंगनी, पृ.सं. 116
10. शैलेश मटियानी – सवित्तरी, पृ.सं. 19

मो.नं. 6302713995

ईमेल – mbalaji986@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 236-243

अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं शिक्षण अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन

कलावती, शोधकत्री
डॉ. रमन सिड़ाना, मार्गदर्शिका, सहा0 आचार्य
गंगानगर शिक्षक प्रशिक्षण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर।

प्रस्तावना :-

शिक्षा मानव विकास का साधन है। शिक्षा व्यक्ति का विकास करने में सहायता देती है। शिक्षा द्वारा मनुष्य की शक्तियों व अन्तर्निहित, योग्यताओं का विकास होता है तथा उसके ज्ञान व कौशल में वृद्धि होती है। यही वृद्धि उसके व्यवहार में परिवर्तन सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाती है। शिक्षा द्वारा मानव बुद्धि, चिन्तन एवं शक्ति प्रदान करता है। व्यक्ति के जीवन को शिक्षा जिस प्रकार प्रभावित करती है, उसी प्रकार व्यक्ति का सामाजिक जीवन भी प्रभावित होता है। शिक्षा द्वारा मनुष्य अपने आचार–विचार तथा रहन–सहन में परिवर्तन करता रहता है। इस प्रकार शिक्षा न केवल सामाजिक विकास करती है अभिवृत्तियाँ, कौशलों आदतों का निर्माण करने में भी सहायक होती है। शिक्षा को मानव के सर्वागीण विकासका माध्यम माना गया है। सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया का बिन्दु बालक है शैक्षिक प्रक्रिया में बालकों की सहभागिता तथा महत्व पर समय–समय पर प्रकाश डाला गया है।

बालक अपने कुटुम्ब, समाज तथा राष्ट्र का अंग है यह माता–पिता तथा अभिभावकों के पास एक धरोहर के रूप में रहता है। जिस दिन से बालक उत्पन्न होता है तथा वातावरण के सम्पर्क में आता है, उसी दिन से इसका विकास प्रारम्भ हो जाता है। बालक का व्यवहार अन्तर्मुखी होगा या बहिर्मुखी, यह बालक की प्रथम पाठशाला परिवार पर निर्भर करता है। परिवार के सदस्य अन्तर्मुखी होतो बालक के अन्तर्मुखी होने की सभावनाएं अधिक होगी। परिवार के सदस्य बहिर्मुखी होंगे तो बालक के बहिर्मुखी होने की संभावनाएँ अधिक रहेंगी।

बालक का जैसे–जैसे विकास होता जाता है उसके सामने विभिन्न प्रकार की समस्याएँ आती है, जिनका समाधान अन्तर्मुखी बालक की बजाय बहिर्मुखी बालक आसानी से कर सकता है क्योंकि अन्तर्मुखी बालक संकोची कम बोलने वाले तथा असामाजिक होते है जबकि पहिखी बालक अधिक बोलने वाले अधिक मित्र रखने वाले चिन्तामुक्त शक्ति वाले तथा आशावादी होते है।

शोध की आवश्यकता एवं महत्व :-

विज्ञान शिक्षा एक सौद्देश्यपूर्ण क्रिया है। विज्ञान शिक्षण का मुख्य उददेश्य विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा अनुशासन का विकास करना तथा साथ ही उसमें विज्ञान के प्रति रूचि पैदा करना है।

विज्ञान का विद्यालयी शिक्षा तथा विश्वविद्यालय दोनों के ही पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

विद्यार्थियों के लिए यह आवश्यक है कि वह इस प्रकार के दृष्टिकोण को अपनाए जिसमें उसे प्रयोग करने क्रिया करने, निर्णय लेने व निष्कर्षो पर पहुँचने की क्षमता का विकास हो। विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास हेतु उनके पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास करना अपेक्षित तथा उचित है।

वर्तमान शिक्षा में केवल पाठ्यक्रम पर ही अत्यधिक बल दिया जा रहा है। जबकि पाठ्यक्रम उसके निर्माण के सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर नही बनाया जाता है व्यक्ति में प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करने के गुणों के विकास के लिए उनमें क्रमबद्धता, सकारात्मक दृष्टिकोण, सकारात्मक अभिरूचि, सकारात्मक सोच, सुनियोजित एवं व्यवस्थित रूप में कार्य कारण सम्बन्धों का विकास करना आवश्यक है। विज्ञान में रूचि विद्यार्थियों के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी होने पर भी निर्भर करती है। अन्तर्मुखी विद्यार्थियों की अपेक्षा बहिर्मुखी विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक पाई जाती है। वैज्ञानिक अभिवृत्ति द्वारा विद्यार्थियों में इस प्रकार के गुणों का विकास करना है, जिससे उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक हो तथा वे विज्ञान में अधिकाधिक रूचि लें। इस प्रकार के गुणों का विकास बहिर्मुखी विद्यार्थियों में आसानी से किया जा सकता है तथा अन्तर्मुखी विद्यार्थियों में इसे विकसित करने के विशेष प्रबन्ध किए जा सकते हैं। अतः अन्तर्मुखी व बहिर्मुखी विद्यार्थियों की पहचान कर उनमें विशेषतः वैज्ञानिक अभिवृत्ति का बोध करना आवश्यक है क्योंकि ये देश का भविष्य है।

समस्या अभिकथन :-

''अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं शिक्षण अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन।''

शोध उद्देश्य :-

1. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के विज्ञान वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला एवं विज्ञान वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की शिक्षण अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
5. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के विज्ञान वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की शिक्षण अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
6. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला एवं विज्ञान वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की शिक्षण अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
7. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला एवं विज्ञान वर्ग के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की शिक्षण अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
8. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला एवं विज्ञान वर्ग के बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की शिक्षण अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त परिकल्पनाएँ : शोध निम्नलिखित परिकल्पनाओं पर आधारित है :-

1. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के विज्ञान वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला एवं विज्ञान वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
4. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की शिक्षण अभिक्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
5. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के विज्ञान वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की शिक्षण अभिक्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
6. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला एवं विज्ञान वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की शिक्षण अभिक्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
7. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला एवं विज्ञान वर्ग के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की शिक्षण अभिक्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
8. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला एवं विज्ञान वर्ग के बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की शिक्षण अभिक्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध का परिसीमन :-

प्रस्तुत शोध को श्रीगंगानगर एवं हनुमानगढ़ जिले तक ही सीमित रखा गया है।

शोध को 400 प्रशिक्षणार्थियों तक सीमित रखा गया है। शोध को 200 छात्राध्यापकों एवं 200 छात्राध्यापिकाओं तक सीमित रखा गया है।

शोध विधि : 'सर्वेक्षण विधि'

शोधकार्य में प्रयुक्त उपकरण :-

1. वैज्ञानिक अभिवृत्ति मापनी – डॉ. अविनाश ग्रेवाल
2. अन्तर्मखी बहिर्मुखी परीक्षण – डॉ. आर. ए. सिंह
3. शिक्षण अभिक्षमता परीक्षण – जे.पी. और आर. श्रीवास्तव

सांख्यिकीय प्रविधिया :-

1. मध्यमान
2. मानक विचलन
3. सहसंबंध गुणांक
4. टी परीक्षण

शोध निष्कर्ष :-

सारणी संख्या-1

शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति से सम्बन्धित मध्यमान, मानक विचलन एवं 'टी' मूल्य।

क्र.सं.	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यान्तर	'टी' मूल्य	सार्थकता
1.	अन्तर्मुखी	50	18.86	2.280	00.55	2.235	0.01
2.	बहिर्मुखी	50	19.31	1.873			

$df = N_1 + N_2 - 2$

df= (50+50-2=98)

98df पर सारणीकृत मान .05 स्तर पर = 1.97

.01 स्तर पर = 2.60

आरेख संख्या 1

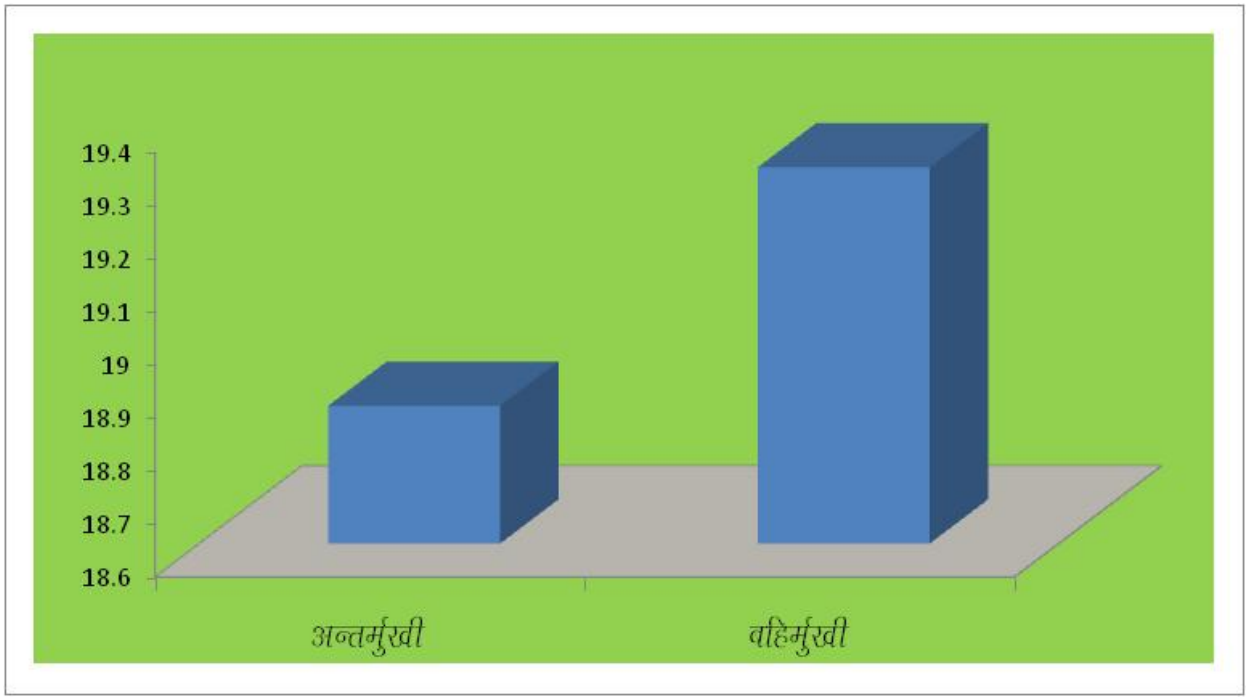

व्याख्या :-

सारणी संख्या 1 से स्पष्ट होता है कि कला वर्ग के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के छात्र प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति से सम्बन्धित प्राप्त अंकों के मध्यमानों के अन्तर का प्राप्त 'टी' मूल्य 5.935 है। 0.05 सार्थकता स्तर पर 1.97 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर 2.60 है। 5.935 प्राप्त 'टी' मूल्य दोनों स्तर पर अधिक है। अतः परिकल्पना ''कला वर्ग के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व छात्र प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति अभिवृत्ति के प्रति सार्थक अन्तर है।'' इसलिए यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अर्थात् दोनों के मध्यमानों के अध्ययन से यह पता लगता है कि कला वर्ग के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के छात्र प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति की तुलना में बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्र प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति अधिक पायी गयी।

सारणी संख्या–2

शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला वर्ग की अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व की छात्राओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति से सम्बन्धित मध्यमान, मानक विचलन एवं 'टी' मूल्य।

क्र.सं.	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यान्तर	'टी' मूल्य	सार्थकता
1.	अन्तर्मुखी	50	19.18	1.377	.63	4.012	0.01
2.	बहिर्मुखी	50	19.81	1.244			

$df = N_1 + N_2 - 2$

df= (50+50-2=98)

98df पर सारणीकृत मान .05 स्तर पर = 1.97

.01 स्तर पर = 2.60

आरेख संख्या 2

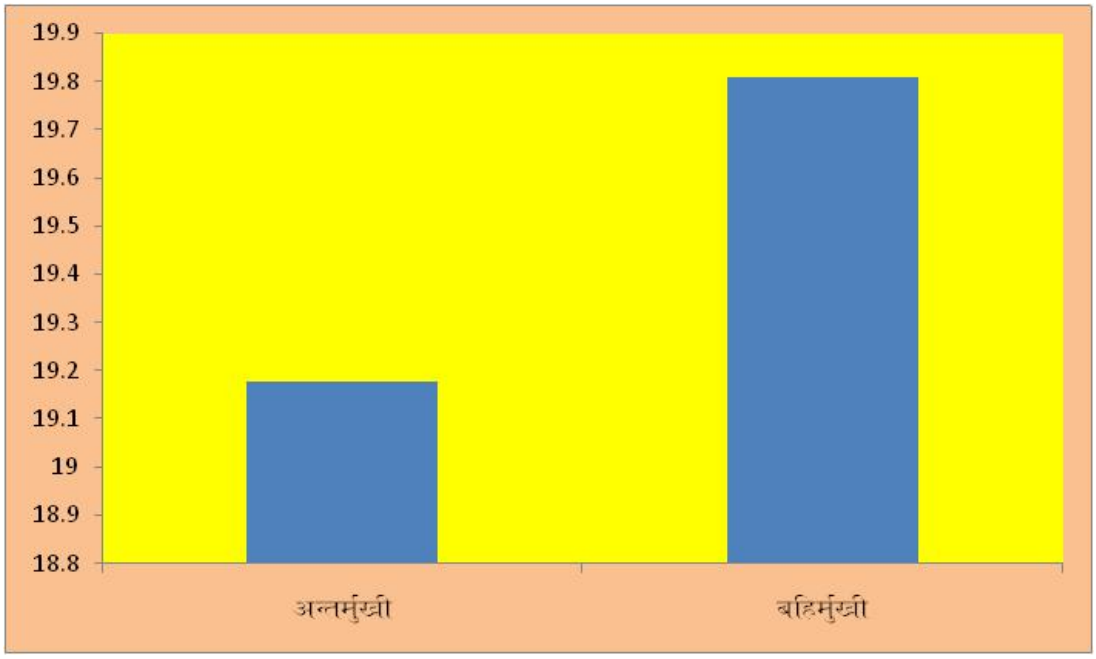

व्याख्या :–

सारणी संख्या 2 से स्पष्ट होता है कि कला वर्ग के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रा प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति से सम्बन्धित प्राप्त अंकों के मध्यमानों के अन्तर का प्राप्त 'टी' मूल्य 4.012 है। 0.05 सार्थकता स्तर पर 1.97 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर 2.60 है। 4.012 प्राप्त 'टी' मूल्य दोनों स्तर पर अधिक है। अतः परिकल्पना ''कला वर्ग की अन्तर्मुखी व्यक्तित्व छात्रा प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति अभिवृत्ति के प्रति सार्थक अन्तर है।'' इसलिए यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। अर्थात् दोनों के मध्यमानों के अध्ययन से यह पता लगता है कि कला वर्ग के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के छात्र प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति की तुलना में बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रा प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति अधिक पायी गयी।

सारणी संख्या–3

शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की शिक्षण

अभिक्षमता सम्बन्धित मध्यमान, मानक विचलन एवं 'टी' मूल्य

क्र.सं.	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यान्तर	'टी' मूल्य	सार्थकता
1.	अन्तर्मुखी	50	89.37	1.330	.33	1.586	0.01
2.	बहिर्मुखी	50	89.04	1.245			

$df = N_1 + N_2 - 2$

df= (50+50-2=98)

98df पर सारणीकृत मान .05 स्तर पर = 1.97

.01 स्तर पर = 2.60

आरेख संख्या 3

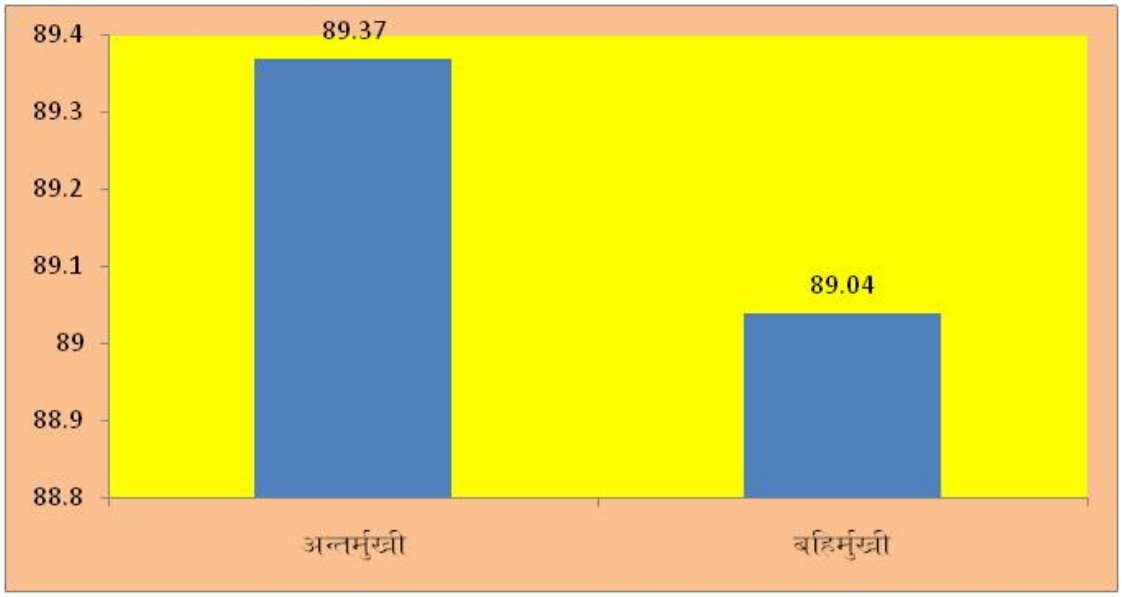

व्याख्या :-

सारणी संख्या 2 से स्पष्ट होता है कि कला वर्ग के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रा प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति से सम्बन्धित प्राप्त अंकों के मध्यमानों के अन्तर का प्राप्त 'टी' मूल्य 1.586 है। 0.05 सार्थकता स्तर पर 1.97 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर 2.60 है। 1.586 प्राप्त 'टी' मूल्य दोनों स्तर पर अधिक है। अतः परिकल्पना ''शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रों की शिक्षण अभिक्षमता के प्रति सार्थक अन्तर है।'' इसलिए यह परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। अर्थात् दोनों के मध्यमानों के अध्ययन से यह पता लगता है कि कला वर्ग के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के छात्र प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति की तुलना में बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रा प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति अधिक पायी गयी।

सारणी संख्या-4

शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला वर्ग की अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व की छात्राओं की शिक्षण अभिक्षमता से सम्बन्धित मध्यमान, मानक विचलन एवं 'टी' मूल्य

क्र.सं.	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यान्तर	'टी' मूल्य	सार्थकता
1.	अन्तर्मुखी	50	89.18	1.377	.63	4.012	0.01
2.	बहिर्मुखी	50	89.81	1.244			

$df = N_1 + N_2 - 2$

df= (50+50-2=98)

98df पर सारणीकृत मान .05 स्तर पर = 1.97

.01 स्तर पर = 2.60

आरेख संख्या 4

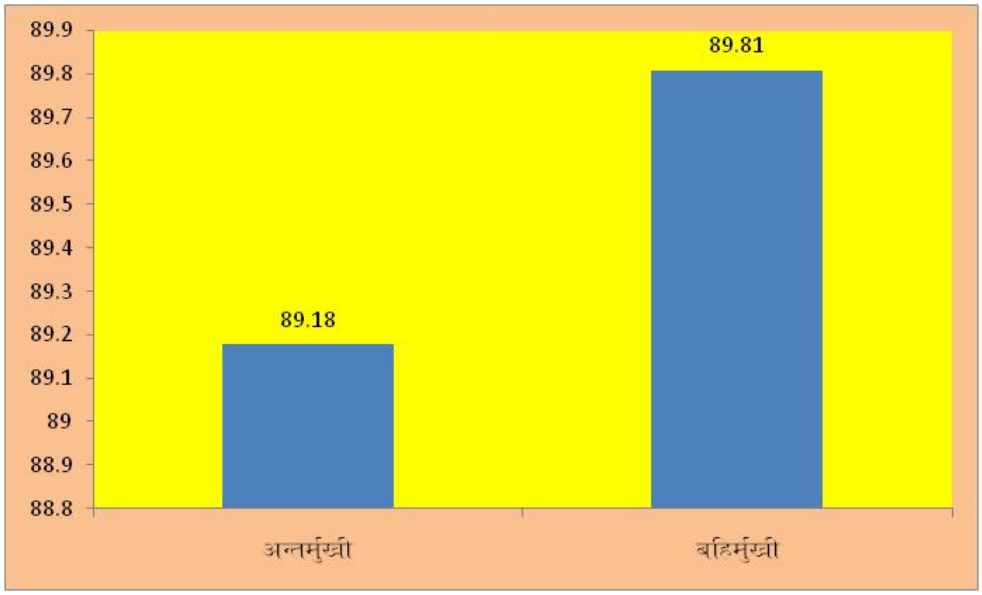

व्याख्या :-

सारणी संख्या 2 से स्पष्ट होता है कि कला वर्ग के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रा प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति से सम्बन्धित प्राप्त अंकों के मध्यमानों के अन्तर का प्राप्त 'टी' मूल्य 4.012 है। 0.05 सार्थकता स्तर पर 1.97 तथा 0.01 सार्थकता स्तर पर 2.60 है। 4.012 प्राप्त 'टी' मूल्य दोनों स्तर पर अधिक है। अतः परिकल्पना ''शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कला वर्ग के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्राओं की शिक्षण अभिक्षमता के प्रति सार्थक अन्तर है।'' इसलिए यह परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। अर्थात् दोनों के मध्यमानों के अध्ययन से यह पता लगता है कि कला वर्ग के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रा प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति की तुलना में बहिर्मुखी व्यक्तित्व के छात्रा प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति अधिक पायी गयी।

शैक्षिक निहितार्थ :-

शिक्षक व शिक्षार्थी सामाजिक परिवर्तन के विविध आयामों व उनके शैक्षिक उपयोग से समझने में सक्षम हो सकेंगे। यह अध्ययन नीति निर्धारकों एवं क्रियान्वन करने वालों को उन मामलों पर विचार–विमर्श करने के लिए तत्पर बना सकेगा जो अंतःमुखी व बहिर्मुखी व्यक्तित्व से सम्बन्धित है।

सारांश :-

प्रस्तुत शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य B.Ed के अंतर्मुखी और बहिर्मुखी प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति शिक्षण अभिक्षमता का अध्ययन करना है सर्वेक्षण विधि का प्रयोग शोध कार्य हेतु किया गया है उपकरण के रूप में वैज्ञानिक अभिवृत्ति मापने डॉ. अविनाश ग्रेवाल, अंतर्मुखी–बहिर्मुखी परीक्षण डॉ. आर. ए. सिंह शिक्षण अभिक्षमता परीक्षण, जे.पी और आर श्रीवास्तव का प्रयोग किया गया है। न्यादर्श के रूप में शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय के

कुल 400 B.Ed प्रशिक्षणार्थी कला वर्ग के 200 व विज्ञान वर्ग के 200 को यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा चयनित किया गया है। निष्कर्ष रूप में पाया गया है कि कला व विज्ञान वर्ग के अंतर्मुखी बहिर्मुखी प्रशिक्षणार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है। कला व विज्ञान वर्ग के अंतर्मुखी बहिर्मुखी प्रशिक्षणार्थियों की शिक्षण अभिक्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अरोड़ा, रीता (2003). शिक्षण एवं अधिगम के मनोसामाजिक आधार, जयपुर : शिक्षा प्रकाशन।
2. भटनागर, सुरेश (1995). शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ : आर.लाल बुक डिपो।
3. भट्टाचार्य, डॉ जी. सी. (2018) अध्यापक शिक्षा, नई दिल्ली : अग्रवाल पब्लिकेशन्स।
4. चौबे, ए.पी.; चौबे, अखिलेश (2008). शैक्षिक मनोविज्ञान के मूलाधार, मेरठ : इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
5. ढ़ौढ़ियाल, एस., फाटक, ए. (2003). शैक्षिक अनुसंधान विधिशास्त्र, जयपुर : राजसथान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
6. गैरेट, हेनरी ई. (1972). शिक्षा व मनोविज्ञान में सांख्यिकी, लुधियाना : कल्याणी पब्लिशर्स
7. गुप्ता, एस.पी. (2003). सांख्यिकीय विधियाँ, इलाहबाद : शारदा पुस्तक भवन।
8. गुप्ता, मोहन लाल (2006), भारत की शिक्षा व्यवस्था, नई दिल्ली, विश्व भारती पब्लिकेशन्स।
9. गुप्ता, प्रो0 एम. एल (2004) भारतीय सामाजिक समस्याऐं : साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
10. जैन, डॉ पुखराज (2006) भारतीय राज व्यवस्था : साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
11. कपिल, एच.के., सांख्यिकी के मूल तत्व, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर।

Email – kalaswami507@gmail.com

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 244-248

Condition of Ayurvedic System in Bengal in 18th-19th Century : A Study

Dr. Avijit Mandal
Assistant Professor, Department of Sanskrit, Vivekananda College for Women, Kolkata-700008.

Abstract :-

India has a rich history of traditional system of medicine based upon six systems, out of which Ayurveda stands to be the most ancient, most widely accepted, practiced and flourished indigenous system of medicine. Ayurveda is one of the most renowned traditional systems of medicine that has survived and flourished from ages till date. Ayurveda has a rich history; however there were a certain drawbacks in approaches towards it, which inhibited its growth like the western system of medicine. The active components of the herbal drugs prescribed were not known, and even today many drugs still need further exploration for their active constituent characterization and elucidation of the mechanism of action. In my paper I would like to highlight the status of Ayurvedic system in 18th-19th century.

Keywords :- Ayurveda, ancient treatment, western medicine, herbal drugs, allopathy.

Introduction :-

India has a rich history of traditional system of medicine based upon six systems, out of which Ayurveda stands to be the most ancient, most widely accepted, practiced and flourished indigenous system of medicine. The six systems of medicine are - 1.Ayurveda. 2. Siddha 3.Unani 4.Yoga 5.Naturopathy 6.Homoeopathy.Ayurveda is one of the most renowned traditional systems of medicine that has survived and flourished from ages till date. With the enormous knowledge of nature based medicine, the relationship of human body constitution and function to nature and the elements of the universe that act in coordination and affect the living things, this system will continue to flourish in ages still to come. There are many avenues still to be explored by the researchers, practitioners and experts in the field who carry the responsibility of keeping the traditional systems of medicine alive and contributing to their growth in the future.

Introduction of allopathy in India by British :-

The British merchants came to India in the 17th Century to built up a new trade base. By a stroke of luck, they won the favour of the then Mughal rulers and started a settlement in Calcutta.

Gradually their attitude changed, they fought the Muslim Nawab Siraj-ud -daulla of Bengal and after the victory became the rulers. By and by they colonised whole of India. When they first settled in Calcutta, it was an extension of the dreaded Sundarbans. The land was marshy, full of wild growth and infested with all sorts of animals and insects. The unplanned settlement soon became a death trap for the settlers. The stagnant water, absence of sewerage, abundance of mosquitoes and rodents made it a veritable hell. Along with the natives, hundreds of British soldiers and other settlers died. So they had to find some way to combat health hazards. Thus allopathy medicine, otherwise called the European medicine was introduced and pushed forward.

In ancient India, Ayurveda was studied and practised .It had a long and glorious heritage. Ancient universities included it in the syllabus with pleasure. In the middle ages too, the victorious chariot of Ayurveda was rolling on .But it halted suddenly in Bengal after the introduction of the allopathic system. Tremendous support and recommendation of the ruling class pushed it forward when doubts, contempt, neglect and malignity almost wiped off the traditional system. In 1908, the Calcutta Medical Journal declared Ayurveda as "unscientific"[1] , the critics had many adverse comments to make. Contemporary vaidyas protested and tried their best to nullify the complaints. Some European physician like Dr. Peter Breton, Dr. C. Mathew, Dr. R. Martin stood beside them in this perilous time. When the attempt was made to restrain the entire system by the Medical Registration Act and the Indian Poison Act of 1904, the Government declined [2]. In spite of it, the traditional system was on the verge of being uprooted.

United attempt to protest :-

In this scenario, a group of physicians and kavirajas tried to help each other by exchange of opinions and observations. For example, in 1892, kaviraj Kaliprasanna Sen and Dr. Radhagovinda Kar started publishing a medical magazine named "Kaviraj Daktar Sambad". The magazine "Ayurveda" sought to remove the weakness of Ayurveda, taking assistance of allopathy system. This approach was hailed by renowned kavirajas like K. Bijayratna Sen, K. Gananath Sen, K. Jamini Bhusan Ray[3] etc. Their collective endeavour to keep alive the traditional system was rather successful. The contribution of some legendary kavirajas like Gananath Sen or Jamini Bhusan Ray was not negligible.

Reasons for rejection of allopathy :-

On the other hand, a major part of the natives was unwilling to take allopathic medicine. There were several reasons behind it -

1. They were afraid of foreign medicine;
2. For them, the practice was too high;
3. They feared the side-effects.

So, they felt comfortable to consult known vaidyas.

Revival of Ayurvedic system :-

This trend helped the sale of traditional medicines manufactured by Sadhana, Shakti, Dabur,

Kalpataru and C.K. Sen , Bengal Chemical even exported several drugs[4].Popularity and acceptance of the Ayurvedic system was amply proved when many young doctors, even after acquiring the degree from the Medical College engaged themselves in the practice of Ayurveda. Among themselves, some became quite famous for their expertise, such as K. Nagendra Nath Sen , K. Gananath Sen, K. Jogindra Nath Sen, K. Rakhal Chandra Sen and the like. Several were appointed by native royal families and zamindars. K. Nagendra Nath Sen was even elected as a member of the "Chemical Society of Paris". His competence and skill were acknowledged by similar bodies of England, America and Switzerland[5].

Even after establishment of several medical colleges and pharmacies, allopathy was not accepted by the general public because of high price, fear of hospitals and testings and side-effects. So, they preferred to go to local quacks also. Extreme poverty and lack of facilities were other genuine causes of inclination towards traditional systems.

In the 19th century the revival movement became stronger and more organized. By this time a wave of patriotism was rolling over India, especially Bengal. Under its influence, people turned towards the heritage of their own land, a Swadeshi movement gathered momentum. Under the circumstances, revival of Ayurvedic system was inevitable and spontaneous. Many wise kavirajas favoured the idea of taking the help of western technology to make up the weaknesses of Ayurvedic system.

Establishment of Ayurvedic colleges :-

The most important event of this period was the establishment of Ayurvedic colleges. In 1915, All India Ayurvedic Institution was established by K. Surendra Nath Goswami. Then in 1916, K. Jamini Bhushan Ray founded the Astanga Ayurved College (which is at present known by the name J.B.Ray Astanga Ayurved College). For the first time, in this college, English medium of teaching and modern knowledge of anatomy, surgery and physiology were accepted.

Next in this line, was Gobindasundari Ayurved College, founded in 1922 by Ram Chandra Mallik with the patronage of Maharaja Manindra Chandra Nandi. In 1931,Visvanatha Ayurveda Mahavidyalaya was founded by K. Gananath Sen. Several such gestures were shown in rural areas also. Attempts were made to start similar institutions in Tangail, Berhampore, Cochbehar, Patna, Chandernagore etc. All of them did not follow the mixed syllabus of Astanga Ayurveda College, but the same was whole heartedly accepted by universities in Jhansi, Lucknow, Bihar, Gouhati, Benaras, Mysore etc.

But within a short time, it was felt that the mixed system was not working in the way it was planned. Students were too inclined towards allopathy . They had no interest in the Ayurveda. Then the necessity of an institution with pure Ayurvedic system of learning was felt. Shyamadas Vacaspati founded such a college in 1921(which is now known as Shyamadas Vaidya Shastrapith). Late Dr. Brahmananda Gupta (son of Bimalananda Tarkatirtha and professor in Rabindra Bharati University) commented- "The school was a protest against the foreign oriented education of the day"[6]. Thus severe difference of opinion surfaced regarding the mode of teaching. Mudslinging was in full force.

But fortunately it did not affect the revival movement. On the other hand, K. Bimalananda Tarkatirtha, son of Shyamadas Bacaspati tried continuously to acquire some recognition from the Government for Shyamadas Vidyapith. He succeeded in 1964 when the Government acquired its ownership.

Role of Associations, Assembles, Magazines etc. :-

In the 19th century, the patriotic attitude of Indians made them aware of the glorious past of India. They wanted to recover the lost honour of the country. Naturally Ayurveda was a subject to be proud of. So, the patriotic societies tried variously to take up the cause of the Ayurveda for its advancement. All proposals for financial support were rejected by the government. In this condition, Indian associations like Vaidyak Sabha of Kshudiram Visarad, Bharat Sabha of Surendra Nath Banerjee and few others, through constant discussions kept the subject of advancement of Ayurveda alive. The Vaidyak Sabha was first met at the house of Bhairab Chandra Basu at Jorasanko in 16th Sraban of 1238 Bangabda. Kshudiram Visarad of Sanskrit College was the first secretary. Many a times, this assembly helped solving complicated diseases.

Two very famous vaidyas further glorified the profession by their miraculous expertise and successful treatment. One of them was Gangadhar Ray of Murshidabad and the other was Gangaprasad Sen of Calcutta. The headed two renowned schools called Gangadhari and Gangaprasadi. Their disciples and disciples of disciples were spread over Bengal and also out of Bengal. Through their active participation, traditional schools like tols and catuspathis emerged, pharmacies appeared, medical books were published and Ayurvedic medicines were advertised. After the publication of the magazine Ayurveda Sanjivani by K. Gangaprasad Sen, many Ayurvedic magazines like Vaidyasanjivani, Dhanvatari, Ayurved Vikash, Ayurved Samachar, Ayurved Hitaisini, Anuvikshan etc. hit the stand. These carried out the duty of discussing complicated causes and their solution, ways to revive Ayurveda and review of current situation. Simultaneously ancient texts were edited with new commentaries. For example K. Gangadhar Ray composed Jalpakalpataru commentary on Caraka Samhita, K. Bijoyratna edited Astanga Hrdaya, Birajacharan Gupta wrote Vanausodhi Darpana and K. Gananath Sen composed Pratyaksa Sariram. Several texts were translated also.

Role of Mahendra Lal Sircar & K. Binod Lal Sen :-

The role of Dr.Mahendra Lal Sircar should be mentioned in the context of scientific consciousness and advancement. Though he represented the homeopathic treatment, yet he contributed greatly to the growth of scientific awareness. He founded Indian Association for the Cultivation of Science in 1876. His The Calcutta Journal of Medicine published discussions on Ayurvedic texts regularly. K. Binod Lal Sen started a herbal garden in Liluah, Howrah. After it, another similar garden was planned in Kalyani.

Conclusion :-

Ayurveda has a rich history; however there were a certain drawbacks in approaches towards it, which inhibited its growth like the western system of medicine. The active components of the herbal

drugs prescribed were not known, and even today many drugs still need further exploration for their active constituent characterization and elucidation of the mechanism of action. A merit of traditional medicine system as discussed earlier is that it consider every individual as the prime focus if the treatment rather than the disease. In conclusion, it can be said that main characteristics of the 18th Century is the history of the struggle of regaining the lost ground of Ayurveda.

References :-

1. Ray, B.(1987). Unish Shatoker Banglay Bijnansadhana, Kolkata, p-108
2. Proceeding of the Hon'ble the Lieutenant Governor of Bengal, July,1910, Municipal (Medical), p-95
3. Prabasi, Asadha-1317, No-3, p-283
4. Bhattacharya, A.(1986). Svadeshi Enterprise in Bengal 1909-20, Calcutta, pp-81-82
5. The Statesman, January 24, 1897.
6. Gupta, B. Indigenous Medicine in 19th and 20th Century in Bengal, vide C. Leslie edited Asian Medical Systems, London,1976, p-376

Bibliography :-

1. Bala, Poonam, Imperialism and Medicine in Bengal: A Socio-historical Perspective, Sage Publication, 1991, University of Michigan.
2. Bhattacharya, Bijoykali, Ayurbeder Itihas, Nabapatra Prakashan, 1361, Kolkata.
3. Chakraborty, Arun Kumar, Chikitsabijnane Bangali, Signet Bookshop,1975, Kolkata.
4. Chattopadhyay, Asima, Bharoter Vanaushodhi, 1953, Kolkata
5. Chopra, R.N., Indigenous Drugs in India, Academic Publishers, 1933, Kolkata.
6. Ghosh, Naresh Chandra, Ayurbed Chikitsashastrer Itihas, 1963, Kolkata.
7. Pahari, Subrata, Unish Shatoker Banglay Sanatoni Chikitsabyabosthar Swarup, Progressive Publishers, 2011, Kolkata.
8. Sanyal, P.K. A Story of Medicine and Pharmacy in India, Generic Publication, 1964, Kolkata.

Email : avijitvcw2017@gmail.com.
Mobile: 9830976023

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
Vol. 11, Issue 1-2
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
पृष्ठ : 249-252

दलित कविता में पुराने मिथकों की आलोचना

बिरादार रंजना
देवणी ता. देवणी जि. लातूर पिन–413519

मिथक दलित साहित्य का एक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। इस शब्द के लिए दन्तकथा, पुरानकथा, और पुराख्यान शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। पौराणिक मिथको के माध्यम से दलितो पर वर्जनाए लादी गयी है। परंतू दलित साहित्य इन मिथको के परंपरागत स्वरूप को नकारकर नयी व्याख्या करता है। राम के स्थान पर शम्बुक द्रोणाचार्य के स्थानप एकलव्य, इंद्र के स्थान पर कर्ण का महिमा मण्डित करता है। ब्राम्हणवादी पौराणिक आख्यानों के नायकों की कायरता एवं छल कपट को दलित साहित्य चित्रित करता है। दलित कबिता इन मिथको के द्वारा वर्णव्यवस्था पर आधरित समाज के दलितो के दूर्देश को रेखांकित किया है। दलित कविता परम्परागत मिथको के रहस्य उद्‌घाटित करके उन्हे नया अर्थ देती है। मलखान सिंह 'सुनो ब्राम्हण' कविता में कहते है :–

''यदि नही''
तो सुनो वशिष्ठ !
द्रोणाचार्य तुम भी सुनो।
हम तुम से घृणा करते है
तुम्हारे अतीत
मत भूलो कि अब
मेहनत कश बच्चे
तुम्हारा बोझ ढोने को
तैयार नहीं है।''।।1।।

जहाँ दलित उनके अधिकारों से वंचित रहता है। वहां दलित कविता पौराणिक मिथकों को तिलांजलि देती है जो उसे अधिकारों से वंचित करते है। डॉ. सिंह की कविता में :–

''मेरे हाथ की कुदाल
धरती पर कोई नींव खोदने से पहले
कब्र खोदेगी
उस व्यवस्था की
जिसके संविधान में लिखा है।

तेरा अधिकार सिर्फ कर्म में है,
श्रम में है
फल पर तेरा अधिकार नहीं ।।2।।

दलित कविता इतिहास को नये दृष्टिकोण से देखा। दलित कवयित्री ने राम, सीता, द्रोणाचार्य, कृष्ण, अर्जून इत्यादि भारतीय इतिहास के पात्रों की आलोचना की। काल्पनिक ईश्वर ही दलित दुर्दशा का कारण है। इन रूढियों के पीछे जो साजिश है। वह धर्मग्रन्थों में विराजमान है। रजनी तिलक उस दर्शन को नष्ट करना चाहती है और नई विचारधारा बनाना चाहती है रजनी तिलक मिथकों को तोड़ते हुए अबला नारी के दीन–हीन स्थिति को बदलने का संदेश 'शिक्षा का परचम' कविता में देती है।

''तू पढ महाभरत, न बन कुन्ती, न द्रौपदी
पढ रामायण न बन सीता, न कैकयी
पढ कानून मिटा तिमिर लगा हलकार
पढपढ समाजशास्त्र। बन सावित्री
फहरा शिक्षा का परचम''।। 3।।

विश्व गुरू का झुठा अहम पाले हुए लोग अपने ही देशवासियों के साथ दुय्यम दर्जे का व्यवहार करते है। सच तो यह है हमारे देश में समानता कभी रही नही। स्वार्थ, छल, बल, अवसरवादिता, पाखंड आदि का सदैव बोलबाला रहा। फिर भी हम झुठी महानता की चादर ओढ रहे है। सुशीला टाकभौरे के शब्दों में :–

''भील एकलव्य/तुम्हारा तो सिर्फ
एक अंगूठा कटा था/ पर क्या
पुरे समाज के हाथ भी/काट दिये गये थे ?
हाथ नहीं उठाया किसी ने भी
गुरू–भक्ति के नाम पर
आवाज नहीं उठाई''।। 4।।

दलित कवयित्री डॉ. सुशीला टाकभौरे कहती है कि क्यों दलितों की मुक्ति में वाल्मीकि को गुरू माना यह एक बाधा है। क्योंकि जो वाल्मीक को इष्ट मानता है उसके आदर्श राम भी होंगे। जबकि राम दलित कविता में कभी आदर्श नही माने गए। कवयित्री का मानना है कि भंगी होकर यदि वाल्मीकि ने दलितों की पीड़ा पर कलम नहीं चलायी तो रामायण लेखन करनेवाले वाल्मीकी हमारे कैसे?

''क्या वाल्मीकि भी, अपने शिष्यों के साथ
छल कर रहे है, गुरू बनकर?
रामायण रचियता
संस्कृत काव्य पंडित
ब्राम्हण वाल्मीकि के तथा कथित शिष्य।। 5।।

पौराणिक संदर्भो की विवेचन करते हुए दलित कवयित्री सुशीला टाकभोरे शंबूक वध और द्रोणाचार्य द्वारा छल से एकलव्य का अंगूठा लेने की भर्त्सना करती है। समय के साथ लोगों की बुद्धि, मानसिकता बदल गयी

है। बदलते समय के साथ अब संदर्भ भी बदल गये है।

''समय की गति से
शोध बोध से
संदर्भ बदल जाते है
समझेंगे ये अज्ञानी शिष्य
भक्ति से बडा ज्ञान हैं
अंधी भक्ति से बड़ी जागृति
मंदिर नहीं चाहिए
विद्यालयों के दरवाजे खटखटाइए।। 6।।

दलित कवयित्री इतिहास पर टिप्पणी करते हुए जिस समाज की मान्यताएँ परम्पराओं में रामराज्य का निर्माण सवर्ण के लिए स्वर्ग हो सकती है लेकिन दलितों के लिए नरक के समान है। इसलिए दलित कवयित्री प्रश्न करती है राम यदि श्रेष्ठ है तो फिर धर्मनिष्ठ शम्बूक का वध क्यों किया था? शम्बूक का वध दलित चेतना का वध है। सुशीला टाकभौरे कहती है कि दलितों! तुम अब अपनी स्थिति पर सोचो, आपको ये झूठी कथाएँ सुनाकर धूर्त ढोंगी लोग आज भी श्रेष्ठ कहला रहे है। इसलिए हमारे समाज में तुम्हारे जैसे शम्बूक मारे जा रहे है :–

शम्बूक आज भी मारे जा रहे है
चल रही है आज भी झूठी कथाएँ
धूर्त ढोंगी लोग आज भी श्रेष्ठ
कहला रहे है।। 7।।

रजनी अनुरागी कहती है द्रोणाचार्य के अंगूठा मांगने पर एकलव्य गुरू दक्षिणा में अगर अंगूठा न देता तो हमारा कुछ और होता।

''काश मैने कर दिया होता इंकार
न दिया होता अंगूठा
ठेंगा दिखा दिया होता
तो इतिहास कुछ और होता''।। 8।।

आज विश्व में गुरू का झुठा अहम पाले हुए लोग शोषण कर रहे है। शोषण की यह परम्परा अब पुरानी है। हमारा इतिहास भी यही करता है कि मनुवादी गुरू अपने ही कुछ दलित शिष्यों के साथ छल, कपट, बेईमानी करते है फिर भी हमारे समाज में गुरू की परंपरा महान है। गुरू रूप में दक्षिणा के रूप बलिदान माँगते है। क्या इससे हमारा देश महान हो जायेगा फिर हमारे धर्मग्रंन्थों के इतिहास में गुरू के विचारों को आदर्श नीति–रीति कहा गयी है। हमें इसे झूठे इतिहास के पीछे छिपी सच्चाई खोलता है। सुशीला टाकभौरे कहती है :–

''हम कौन है?
हमारा धर्म, हमारा इतिहास क्या है
हमारा सच्चा निष्पाप गुरू

कौन है?
क्या–क्या दिया है उन्होंने
उनके अनुयायियों ने
विश्व को''।।9।।

इस प्रकार दलित कविता में इतिहास को नये दृष्टिकोण से देख राम, सीता द्रोणाचार्य, कृष्ण, अर्जुन इत्यादि भारतीय इतिहास के पात्रों की आलोचना की काल्पनिक ईश्वर ही दलित दुर्दशा का कारण है जो पौराणिक मिथलों के माध्यम से दलितों पर वर्जनाएं लादी गयी हैं। दलित कविता में इन मिथकों के परल्पराणत स्वरूप को नकारकर नयी व्याख्या करता है।

संदर्भ :-

1. मलखान सिंह – सुनो ब्राम्हाण, पृ. 48
2. डॉ. एन. सिंह – सतह से उठते हुए चेतना के स्वर, पृ. 85
3. रजनी तिलक – 'पदचाप' पृ. 54
4. सुशीला टाकभौरे – मेरा काव्य संगृह, भाग–2, पृ. 191
5. वही पृ. 128
6. वही पृ. 129
7. वही पृ. 129
8. रजनी अनुरात्री– बिना किसी भूमिकर के।
8. सुशीला टाकभौरे – मेरा काव्य संगृह।

मो. 7720985381

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 253-257

A COMPARATIVE STUDY OF MARITAL ADJUSTMENT OF SECONDARY SCHOOL TEACHERS

Dr. Manjeet Kumari
Assistant Professor, BPSITTR, BPSMV, Khanpur Kalan, Sonepat
Dr. Rekha Rani
Associate Professor, IETVE, Panjab University Chandigarh.

Abstract :-

The present study investigated the level of marital adjustment of secondary school teachers of Sonepat district of Haryana state. A sample of 100 school teachers consisting of 50 male and 50 females was selected for the study. Sample was chosen by using random sampling technique. Marital Adjustment Questionnaire by Kumar and Rohtagi (1999) was used for data collection. Results of the study showed that most of the secondary school teachers were well satisfied with their marriage. Also, there existed no significant difference between marital adjustment of male and female teachers of secondary schools.

Introduction :-

The concept of adjustment is biological one and concerned with adaption to physical environment for survival. There are also the demands from a person's internal nature- physiological needs like hunger, thirst, sleep, sex, elimination etc. and psychological needs like needs to belong to get esteem, to self-actualize to get in combination and in interactive fashion that influence the psychological functioning and adjustment of a person. Life may be looked as long series of adjustment which the individual is constantly adjusting himself to demands of external environment as well as both needs of psychological and mental constitutions. The adjustments that he makes are not always healthy, sound or effective from the point of view of his lifelong welfare, but they are made as they seem at the moment to satisfy some of the needs. Thus the process by which the individual maintains a level of psychological and physiological balance between his needs and the circumstances that influence the satisfaction may be termed as adjustment.

According to Coleman, J. C. - "Adjustment is the outcome of the individual's attempt to deal with stress and meet his needs also, his efforts to maintain harmonious relationship with the environment". Marriage is more important in society to solve our social, cultural, personal and sexual problems. Marriage and family are not optional they are necessary. Marriage provides a person an

opportunity for a secure and protected satisfaction of his needs for companionship, affection and sexual expression. It involves the most intimate types of emotional relationship between two individuals (Landis, 1954). A non-significant very low positive relationship existing between teachers' self-esteem and their marital adjustment in secondary schools in Anambra State (Anyamene, et. Al.,2021). There are two elements in marriage. One is bodily (sexual wish etc) and another is divine (love, respect, adore etc.). Towards the end of the life both elements are coming closer and closer and at a particular point of time the later aspect (love, respect, adore etc.) becomes quite evident. Marriage is purely the highest of all human interaction and therefore must never be entered into carelessly (Ramcharan, 2008). Teachers found to be moderate on marital adjustment and in life satisfaction they found to be at higher side. A positive correlation was found between marital adjustment and life satisfaction among teachers (Mibang, 2022). Singh (2019) reported a significant difference between the job satisfaction and marital adjustment of physical education school teachers. Working married women face more adjustment problems in their married life as compared to non-working married women (Pal, 2017). The couple who have more marital experience they live with each other for long time, they are well known about each other so they adjust very well (Bharambe & Baviskar, 2013).

Marital status has no influence on their adjustment (Brauah et. al., 2016). Sinha and Mukerjee (1990) define marital adjustment as the state in which there is an overall feeling in husband and wife of happiness and satisfaction with their marriage and with each other. Younger women are more adjusted in comparison to the older women (Manju, 2016). Marital relationship is the first priority since this dimension has the lowest level of satisfaction, followed by marital intimacy and after that marital adjustment as the third priority needs to be improved (Fatimah, 2012).

The women of today whether employed or not are liable to develop a marked tendency to become conscious of their individual status. They have to face marital adjustment problems. The adjustment and marital relationship are major challenges in most of the families. The place and importance of teacher in the society and the nation can hardly be over emphasized. It does not take much to realize that the quality of the nation depends upon the quality of its citizens. The quality of its citizens depends not exclusively, but in critical measure upon the quality of education. The quality of education depends, more than any other single factor, upon the quality of the teachers. A school may have excellent material resources –equipment building, library, laboratory and other essential teaching learning facilities along with a curriculum appropriately devised to suit the community needs. But if the teachers are misfit or indifferent; the whole programme is likely to be ineffective and wasted. The purpose of the study is to know the marital adjustment among the secondary school teachers because it may have a direct effect on students learning in the schools.

OBJECTIVES OF THE STUDY :-

The objectives of the present study are:

- To examine the level of marital adjustment of secondary school teachers.
- To compare the marital adjustment of secondary school teachers on the basis of their gender.

HYPOTHESIS OF THE STUDY :-

To achieve the objectives of the study, following hypotheses were formulated:

- There exists no significant difference between marital adjustment of male and female teachers of secondary schools.

DELIMITATION OF THE STUDY :-

The present study was delimited to teachers teaching in secondary schools of Gohana tehsil of Sonepat district.

POPULATION AND SAMPLE :-

All teachers teaching secondary classes of Govt. Schools of Gohana Tehsil in Sonepat district of Haryana constituted the population. At the first stage, five schools were randomly selected. Then at the next stage, 20 teachers were selected from each school on random basis. The details of the sample is presented as under:

Table - 1

Sample of the Study

100 Secondary School Teachers	
50 (Male)	50 (Female)

TOOL USED :-

In the present study, Marital Adjustment Questionnaire by Kumar and Rohtagi (1999) was used for data collection. This tool measures the sexual, social and emotional areas of marital adjustment.

PROCEDURE OF DATA COLLECTION :-

Keeping in mind, the objectives of the study, the survey method was used. Data from the school teachers selected in the sample was collected with the help of the tool mentioned above. The data were collected from the teachers by approaching them in their respective schools.

ANALYSIS AND INTERPRETATION :-

The results of the present study are analyzed in the following two sections :

Section I- Assessing the level of marital adjustment of secondary school teachers.

Section II- Comparison of the marital adjustment of secondary school teachers on the basis of gender.

Section I- Assessing the level of marital adjustment of secondary school teachers

In this section, the findings related to the level of marital adjustment of secondary school teachers are presented.

Table – 2

Level of Marital Adjustment of Secondary School Teachers

Raw scores of teachers	No. of teachers	Level of satisfaction
23 and above	65	Good
22	17	Average
Less than 22	18	Low

Interpretation :-

The above table shows the raw scores of marital adjustment of secondary school teachers. The finding of the study shows that out of 100 teachers, 65 are satisfied with their marriage at good level, 17 are satisfied at average level and 18 are satisfied at low level of their marital satisfaction.

Section II- Comparison of the marital adjustment of secondary school teachers on the basis of gender.

In this section, the findings related to comparison of marital adjustment of secondary school teachers on the basis of their gender are presented.

Table – 3

Comparison of Marital Adjustment of Male and Female Secondary School Teachers

Gender	N	Mean	S.D	t-value
Male	50	22.74	3.21	0.843
Female	50	22.84	2.71	

*Not significant at 0.01 level of significance.

Table-3 gives the summary of the statistical calculations for obtaining value with regard to marital adjustment of male and female senior secondary schools teachers.

It is interpreted from the above table that the mean scores of male and female secondary school teachers on marital adjustment questionnaire are 22.74 and 22.84 with SD's 3.21 and 2.71 respectively. The calculated t ratio is 0.843 which is not significant at 0.05 level of significance. Thus, the hypothesis "There is no significant difference between the marital adjustment of secondary school teachers on the basis of gender" is retained. It means that both Groups are having same level of marital adjustment.

CONCLUSION :-

The purpose of the study was to find out the difference marital adjustment of male and female school teachers. It is concluded that there exist so many factors which affects marital adjustment of male as well as female. Our maturity level helps us to maintain the balance among relationships, workplace, colleagues and household chores. It will helpful to understand the duties and responsibilities of teachers. It will helpful in understanding the attitude towards educational institutions where the teachers work

REFERENCES :-

1. Anyamene. A, Nwokolo, C., Edith Muojeke N. (2021). Self-esteem as correlate of marital adjustment of married secondary school teachers in Anambra state, Nigeria. European Journal of Education Studies, 8(5), 294-304,ISSN: 2501 - 1111 ISSN-L: 2501 - 1111 DOI: 10.46827/ejes.v8i5.3738
2. Bharambe & Baviskar (2013). Marital adjustment level of the couples. International Journal of Scientific and Research publications, 6(1).
3. Brauah, P. & Gogoi, M. (2016). Adjustment of secondary school teachers. International Journal for Research in Education, 5(4), ISSN: 2347-5412.

4. Dave (2015). Marital adjustment among working and non-working women. Indian Journal of Research. 4(5), ISSN 2250-1991.
5. Fatima, P.L. (2012). Quality of marital satisfaction to three dimensions. Journal of Social Sciences and Humanities, 7(1), ISSN: 1823-884X, 133-148.
6. Jamabo, T., & Ordu, S.N. (2012). Marital adjustment of working class and non working class women in Port Harcourt metropolis. International Journal of Psychology and Counseling, 4(10), 123-126.
7. Kumar, A. (2015).Attitudes towards teaching profession in relation to adjustment of senior secondary school teachers. International Journal of Science and Research, 4(4), 830-833.
8. Kumari, M. (2017). Comparative study of job satisfaction of elementary school teachers of Sonepat district of Haryana State. International Journal Of Research Culture Society,1(9), ISSN: 2456-6683, 34-37.
9. Kumari, M. & Saharan, S. (2018). A study of effect of job satisfaction on marital adjustment of secondary school teachers. International Journal of Research. 5(19), ISSN: 2348-6848, 999-1005.
10. Lasker, J. H. (2016). Personal and professional life adjustment of secondary school teachers. Indian Journal of Applied Research, 6(5), ISSN: 2249-555X, 608-611.
11. Manju (2016). Marital adjustment and depression. International Journal of Indian Psychology, 3, 59(4), ISSN 2348-5396(e).
12. Mibang, O. (2022). Marital Adjustment and Life Satisfaction Among Teachers from Arunachal Pradesh. The International Journal of Indian Psychology, 10(4); ISSN 2348-5396 (Online) DOI: 10.25215/1004.096
13. Moosavi, S.F. (2012). Comparison family functioning; marital adjustment and intimacy in two groups. International Research Journal of Applied and Basic Sciences, 3(10), ISSN: 2251-838X.
14. Nadam, P.S & Sylaja, H. (2016). Marriage adjustment by socio-demographic variables of working and non-working women. Guru Journal of Behavioral and Social Sciences, 3(2), ISSN 2320-9038.
15. Nadeem, N.A. & Bhat, G. A. (2014). A study of adjustment level among secondary school teachers in Kashmir. Journal of Education and Practice, 5(10), 144-148.
16. Pal, R. (2017). Marital adjustment of working and non-working married women. International Journal of Home Science, 3(1), ISSN: 2395-7476, 384-386.
17. Sabre, K. (2016). Level of marital adjustment among women with reference to their type of family. The International Journal of Indian Psychology, 3(2), 5, ISSN 2348-5396(e).
18. Singh, R. (2019). Marital adjustment and job satisfaction of physical education teachers. International Journal of Physiology, Nutrition and Physical Education; 4(1): 1787-1789
19. Sinha, C. (2016). Adjustment of married women in relation to age and job status. International Journal of Scientific and Research publications, 6(1), ISSN: 2250-3153, 42-45.
20. Surabhihazarika (2017). Marital adjustment of working and non-working married women. Journal of International Academic Research for Multi disciplinary, 5(4), ISSN: 2320-50883.
21. Yadav, R. K., & Gupta, G.(2017). A study of effect of job satisfaction on marital adjustment of working women.

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 258-263

राष्ट्रीय नीति शिक्षा नीति 2020 : परिचय

सपना

प्राध्यापक, हिंदी, रा.उ.मा.वि. चांदना, पदमपुर, श्रीगंगानगर, राजस्थान

शोधार्थी, हिंदी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

प्रस्तावना :–

हमारे संविधान एवं राष्ट्र निर्माता डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने शिक्षा के संदर्भ में कहा था कि ''शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो सर्वसुलभ हो अर्थात् जो शिक्षा पाना चाहे शिक्षा उसकी पहुँच में हो।'' राष्ट्रीय शिक्षा नीति को भारत सरकार ने 29 जुलाई 2020 को अपनी मंजूरी दी और इस तरह पिछले 6 वर्षो से चल रहे प्रयासों को विराम लग गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने अपनी प्रस्तावना में संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा घोषित सत्त विकास एजेण्डा 2030 के लक्ष्य 4 में परिलक्षित वैश्विक विकास एजेण्डें को पूरा करने के लिए भारतीय शिक्षा व्यवस्था को पुर्नगठित करने के लिए जोर दिया है और इस में कहा गया है कि दुनिया के सभी देश सब के लिए समावेशी समान गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिये जाने का लक्ष्य 2030 तक हासिल करें। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पांच स्तम्भों पर केन्द्रित है : वह वहनीयता, गुणवत्ता, अभिगम्यता, न्यायपरस्ता और जवाबदेही–निरंतर सीखने की प्रक्रिया को सुनिश्चित करने के लिए इसे समाज और अर्थव्यवस्था में ज्ञान की मांग के रूप में नागरिकों की जरूरतों के अनुरूप तैयार किया गया है। जिससे नियमित आधार पर नए कौशल हासिल करने की आवश्यकता हो पूरा किया जा सकता है। इस प्रकार गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना और सभी के लिए आजीवन सीखने के लिए अवसर पैदा करना। संयुक्त राष्ट्र सत्त विकास 2030 में सूचीबद्ध पूर्ण और उत्पादक रोजगार और अच्छे काम की ओर अग्रसर होना। अतः इस क्रम में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस अभाव को पूरा करने का एक अभिन्न प्रयास करेगी।

सार : NEP 2020 :–

भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को मंजूरी दी है। नई शिक्षा नीति 34 वर्ष पुरानी 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986' को प्रतिस्थापित करेगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, 21 वीं संदी की पहली शिक्षा नीति है। वर्ष 1968 और 1986 के बाद यह भारत की तीसरी शिक्षा नीति है। **NEP** 2020 के तहत केन्द्र व राज्य सरकार के सहयोग से शिक्षा के क्षेत्र पर देश की जीडीपी के 6% हिस्से के बराबर निवेश का लक्ष्य रखा गया है। **NEP** 2020 में 27 अध्याय है और कुल 108 पृष्ठ है। इसमें आरम्भ में **NEP** 2020 परिचय के पश्चात, भाग 1 स्कूल शिक्षा में, अध्याय 1 से 8 तक, भाग 02 उच्चतर शिक्षा में, अध्याय 9 से 19 तक व भाग 3 में, अन्य केन्द्रीय विचारणीय मुद्दें है, जिसमें अध्याय 20 से 24 तक है, तत्पश्चात भाग 4 में, क्रियान्वयन की रणनीति में अध्याय 25 से 27

तक है, और अंत में प्रयुक्त सेकेताक्षरों की सूची है। उक्त नीति 29.07.2020 के अध्यादेश से लागू हुई।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को सहभागी बनाया गया है। जिसमें 2 लाख सुझावों का सहारा लिया गया है। उक्त नीति में न केवल वर्तमान युवा पीढ़ी को ध्यान में रखा गया है बल्कि आने वाली पीढ़ी की अपेक्षाओं, आकांक्षाओं व चुनौतियों का भी ध्यान रखा गया है। उच्च शिक्षा में सामान्य नामांकन अनुपात को 2035 तक 26. 3 प्रतिशत (वर्तमान में) से बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक लाना है। उच्च शिक्षा में सर्टिफिकेट, डिप्लोमा एवं डिग्री पाठ्यक्रमों को शामिल किया जाएगा। देश में 34 सालों बाद नई शिक्षा नीति आई है जो शोधपरक, नवाचार और अनुसंधान को बढ़ावा देती है। अतः उक्त सभी की पूर्ति छम्ब् 2020 अनिवार्यतः करेगी।

उद्देश्य :-

1. नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2000 को पेश करना, शिक्षा पर राज्य के खर्च को सकल घरेलू उत्पाद के **4%** से बढाकर **6%** करने की एक झलक देने के लिए।
2. शिक्षा नीति में छात्रों की रचनात्मक सोच, तार्किक निर्णय और नवाचार की भावना को प्रोत्साहित करना।
3. छात्रों को जरूरी कौशलों एवं ज्ञान से लैस करना और विज्ञान, टेक्नोलॉजी अकादमिक क्षेत्र और इण्डस्ट्री में कुशल लोगों की कमी को दूर करते हुए देश को ज्ञान आधारित सुपर पॉवर के रूप में स्थापित करना।
4. इस नीति के लक्ष्यों एवं सिद्धान्तों के बारे में जानना।
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 का उद्देश्य शिक्षा की पहुँच, समानता, गुणवत्ता, वहनीय शिक्षा और उत्तरादायित्त्व जैसे मुद्दों पर विशेष ध्यान देता है।

अनुसंधान विधि :-

उक्त अध्ययन पाठ्य, आलोचनात्मक, वर्णनात्मक मूल्यांकनात्मक व्याख्यात्मक और विश्लेषणात्मक विधियों का उपयोग करते हुए प्राथमिक और माध्यमिक स्रोतों के माध्यम से शिक्षा के विशेष संदर्भ में एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण के रूप में राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के सम्पूर्ण अध्ययन पर भी ध्यान केन्द्रित करता है।

विद्यालय शिक्षा में सुधारः नई शिक्षा नीति में वर्तमान में सक्रिय–10+2 में शैक्षिक मॉडल के स्थान पर शैक्षिक पाठ्यक्रम को 5+3+3+4 प्रणाली के आधार पर विभाजित करने की बात कही गई है।

(नया प्रारूप)	(चरण)	(आयु)	(कक्षा का स्तर)
5	फाउण्डेशन स्टेज फाउण्डेशन स्टेज	3 से 6 वर्ष तक 6 से 8 वर्ष तक	आँगनबाड़ी नर्सरी (प्री प्राइमरी)
3	प्राथमिक शिक्षा	8 से 11 वर्ष तक	कक्षा 3 से 5
3	मध्यम स्तर	11 से 14 वर्ष तक	कक्षा 6 से 8
4	अन्तिम स्तर	14 से 18 वर्ष तक	कक्षा 9 से 12

शिक्षण प्रणाली में सुधारात्मक कदम :-

– पहले सरकारी स्कूलों में प्री–स्कूलिंग नहीं होती थी, बच्चें 6 वर्ष की आयु में पढना प्रारम्भ करता था। प्रारम्भ (आँगनबाड़ी के माध्यम से)

– उच्चतर शिक्षा संस्थानों को उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षण, अनुसंधान एवं सामुदायिक भागीदारी उपलब्ध करवाने के लिए साधन सम्पन्न एवं बहु विषयक संस्थानों में रूपान्तरित किया जाएगा।

उच्च शिक्षा में सुधार :-

उक्त नीति ग्रामीण और शहरी भारत दोनों में प्राथमिक और उच्च शिक्षा के साथ–साथ व्यावसायिक प्रशिक्षण में परिवर्तन के लिए एक व्यापक ढांचा है। इस नीति का उद्देश्य 2021 तक भारत की शिक्षा प्रणाली को अद्योलिखित अनुसार बदलना है :–

1. प्रथम वर्ष की पढ़ाई पर–सर्टिफिकेट
2. द्वितीय वर्ष की पढ़ाई पर– डिप्लोमा।
3. तृतीय या चतुर्थ वर्ष पर– डिग्री।
4. उच्च शिक्षा के स्तर सकल नामांकन अनुपात को मौजूदा 26 प्रतिशत से बढ़कार 50 प्रतिशत करने के लिए एनईपी 2020 की कल्पना के अनुरूप इसका उद्देश्य मुक्त और दूरस्थ शिक्षा, ऑनलाईन शिक्षा और शिक्षा को प्रोद्योगिकी के उपयोग को बढ़ाने के लिए बुनियादी ढांचे को मजबूत करके छात्रों के समग्र व्यक्तित्व का निर्माण करना है।

– कॉमन एडमिशन टेस्ट उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश के लिए कॉमन एग्जाम होगी। जिसे राष्ट्रीय परीक्षा एजेंसी कराएगी। संस्था के लिए यह प्रवेश एग्जाम अनिवार्य नहीं है।

पाठ्यक्रम तथा मूल्यांकन संबंधी सुधार :-

नयी शिक्षा नीति में नये पाठ्यक्रम व मूल्यांकन संबंधित सुधारों पर पूर्ण रूप से जोर दिया गया है।

अध्यापक वर्ग संबंधित सुधार :- नेशनल मेंटरिंग प्लान–इससे शिक्षकों का उन्नयन किया जाएगा।

– शिक्षकों को गैर–शिक्षक गतिविधियों (जटिल प्रशासनिक कार्य, (मिड–डे–मिल) से संबंधित कार्यो में शामिल न करने का सुझाव।

– प्रत्येक स्कूल में शिक्षक–छात्रों का अनुपात (PTR) 30 : 1 से कम हो तथा सामाजिक आर्थिक रूप से वंचित बच्चों की अधिकता वाले क्षेत्रों के स्कूलों में यह अनुपात 25 : 1 से कम हो।

शैक्षणिक भाषा से संबंधित सुधार :-

उक्त नीति में भारतीय भाषाओं में पढ़ाने के महत्व को रेखांकित किया गया। इसमें तीन भाषा फॉर्मूला यानी कि हिन्दी, अंग्रेजी और स्थानीय भाषाओं में पढ़ाई करवाई जाएगी।

– ई–पाठ्यक्रम क्षेत्रीय भाषाओं में विकसित किए जाएंगें। वर्चुअल लैब विकसित की जा रही है और एक राष्ट्रीय शैक्षिक टेक्नोलॉजी फोरम (NETE) बनाया जा रहा है।

भारत उच्च शिक्षा आयोग :-

भारत उच्च शिक्षा आयोग को सम्पूर्ण उच्च शिक्षा के सर्वोच्च निकाय के रूप में गठित किया जायेगा। इसमें मेडिकल एवमं कानूनी शिक्षा को शामिल नहीं किया जाएगा।

– वर्ष 2030 तक प्रत्येक जिलें में या उसके समीप कम से कम एक बड़ा बहु–विषयक उच्चतर शिक्षा संस्थान स्थापित किया जायेगा।

– वर्ष 2040 ई. तक सभी वर्तमान उच्चतर शिक्षा संस्थानों का उद्देश्य अपने आपको बहु–विषयक संस्थानों के रूप में स्थापित करना होगा।

अनुसंधान संबंधी सुधार :- नई शिक्षा नीति में एम.फिल. को समाप्त किया जायेगा।

– राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन (HRF)– राष्ट्र में गुणवत्तापूर्ण अनुसंधान को सही रूप से उत्प्रेरित और विकसित करने के लिए तथा सभी प्रकार के वैज्ञानिक एवं सामाजिक अनुसंधानों पर नियंत्रण रखने के लिए NRF का गठन।

– Ph.D के लिए 4 वर्षीय शिक्षा फिर एम.ए. उसके बाद ड चीपस की अनिवार्यता कर दी जाएगी।

छात्रवृत्ति व योजना संबंधी सुधार :-

इसमें जेंडर इंक्लूजन फण्ड और वंचित इलाकों के लिए विशेष शिक्षा क्षेत्र की स्थापना पर जोर।

– एस.सी., एस.टी और ओबीसी के सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े छात्रों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर स्कॉलरशिप पोर्टल का निर्माण किया जाएगा।

साइबर सुरक्षा में शिक्षा और कौशल :-

विश्व आर्थिक मंच 2021 की वैश्विक जोखिम रिपोर्ट 2021 के अनुसार साइबर सुरक्षा विफलता दुनिया का सबसे चौथा महत्वपूर्ण खतरा है। जैसा की चल रही महामारी के कारण शिक्षा और अध्ययन पहले ही साइबर स्पेस में चली गयी है। प्रत्येक व्यक्ति की गोपनीयता की रक्षा करना अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है।

अन्य त्वरित सुधार :-

उक्त सुधारों के अलावा इस नीति में तमाम उन सब कार्य/विधियों को वह चाहे तात्कालिक हो या त्वरित हो, को यथाशीघ्र प्रयोग करते हुए उच्चतम लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर बढ़ने पर बल दिया जायेगा।

समीक्षा :-

पी.एस ऐथल और सुभ्रज्योत्सना एथेल के अनुसार उनके शोध पत्र ''भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का विश्लेषण इसके उद्देश्यों को प्राप्त करने की दिशा में।''

प्रोफसर शर्मा के. एल. 2020 ई. ने अपने लेखपत्र में लिखा है कि शिक्षा से सशक्त और सविमर्शी समाज बनाया जा सकता है लेकिन शिक्षा इतनी गुणवत्तापरक हो कि मनुष्य खुद को स्वतंत्र, रचनात्मक और नैतिक दृष्टि से ढृढ़ समझ सके। शिक्षा परिवर्तन और सशक्तिकरण का साधन है। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग 1999 ई. और अनेक शिक्षा नीतियों के विचारों से बढ़कर क्या यह शिक्षा नीति है? क्या वर्तमान शिक्षा नीति इससे भी व्यापक और गहन है? नीति आयोग के अनुसार नई नीति द्वारा प्रस्तावित शिक्षा प्रणाली द्वारा नए भारत का निर्माण अवश्य संभव होगा।

प्रोफसर. गंगवाल सुभाष 2020 ई. ने लिखा है कि 21वीं सदी ज्ञान प्रधान सदी है जिसमें विज्ञान एवं तकनीकी विकास परिवर्तन के प्रमुख आधार है। किसी भी देश, समाज और परिवार को विकसित, समृद्ध एवं प्रतिस्पर्द्धी बनाने के लिए शिक्षा को अत्यधिक महत्व देना होगा। भारत में शिक्षा केन्द्र एवं राज्यों का विषय है। केन्द्र सरकार राष्ट्रीय हित में शिक्षा का मसौदा तैयार करती है, जिसका अनुमोदन संसद द्वारा लिया जाता है लेकिन राज्यों की विधान सभाओं को भी विचार विमर्श, बहस के माध्यम से अनुमति प्रदान करनी होती है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ई. को सहभागी बनाया गया है। जिसमें 2 लाख सुझावों का सहारा लिया गया है। सिंह दुर्गेश 2020 ई. ने अपने लेख पत्र में लिखा है, भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था त्रिस्तरीय है जिसमें प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा शामिल है। उक्त शिक्षा व्यवस्था शिक्षित लेकिन रोजगार विहिन युवाओं को तैयार करती है। जिससे स्पष्ट होता है कि भारतीय शिक्षा व्यवस्था विश्व स्तर के कुशल एवं दक्ष युवा तैयार करने में सक्षम

नहीं है। जो शोधपरक, नवाचार और अनुसंधान को अवश्यम्भावी ही बढ़ावा देती है।

अजय कुरियन और सुदीप बी चंद्रमना के शब्दों में शिक्षा नीति–2020 की घोषणा पूरी तरह से कई लोगों के द्वारा अप्रत्याशित थी। नई शिक्षा नीति–2020 में जिन बदलावों की सिफारिश की है, वे कुछ ऐसे थे जिन्हें कई शिक्षाविदों ने कभी आते नहीं देखा। यद्यपि शिक्षा नीति ने स्कूल और कॉलेज की शिक्षा को समान रूप से प्रभावित किया है.....। प्रभावी और समयबद्ध कार्यान्वयन ही इसे वास्तव में भी पथप्रदर्शक बना देगा।''

के. कस्तूरीरंगन शिक्षा नीति कमेटी के अध्यक्ष के शब्दों में– ''हमने ऐसी शिक्षा नीति निर्मित करने की कोशिश की है जो हमारी समझ मे शैक्षिक परिदृश्य को परिवर्तित कर देगी। ताकि हम युवाओं को वर्तमान और भावी चुनौतियों का सामना करना के लिए तैयार कर सकें..... इससे जुड़े अन्य क्षेत्रों को भी इसमें शामिल किया है।''

नई नीति ऐसी शिक्षा नीति है जिसमें 2030 ई. के विकास एजेंडे को ध्यान में रखा गया है। नई नीति का विजन ही ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करना है जिसमें भारतीय परम्पराओं और मूल्यों को जगह मिले। शिक्षा प्रणाली में इण्डिया की जगह भारत की झलक मिले। इसका उद्देश्य ऐसी समतावादी और उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रणाली बनाना है जिससे एक ज्ञान आधारित समाज का निर्माण हो। इसमें प्राचीन ज्ञान से लेकर आधुनिक ज्ञान को शामिल किया गया है। इसमें स्वास्थ्य, शिक्षा एवं पर्यावरण आदि सभी को शामिल किया गया है। उक्त नीति के प्रमुख सिद्वान्त निम्नानुसार है–

1. शिक्षा को सार्वजनिक सेवा मानते हुए इसे प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार माना जाए। इस हेतु आवश्यक प्रयास करना।
2. विद्यालय से महाविद्यालय शिक्षा तक सभी स्तरों के पाठ्यक्रमों में तालमेल एवं सामंजस्य बिठाना।
3. जीवन कौशल अर्थात आपसी संवाद, सहयोग, सामूहिक कार्यों को बढ़ावा देना।
4. विद्यार्थी के सम्भवतः सम्पूर्ण परिवेश को जानना व समझना।
5. शिक्षकों एवं संकाय को सीखने का केंद्र मानते हुए इनकी भर्ती आदि हेतु उन्नत सुविधाओं का विकास करना।
6. स्नातक स्तर में आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस, थ्री–डी मशीन, डेटा विश्लेषण, जैव प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों के समावेशन से अत्याधुनिक क्षेत्रों कुशल पेशेवर तैयार करना।

प्रमुख चुनौतियाँ :–

सभी राज्यों का सहयोग शिक्षा विषय समवृत्ति सूची में होने के कारण कहां तक सम्भव हो सकेगा, शिक्षा का मंहगी होना, शिक्षा का सस्कृतिकरण होना, फण्डिंग संबंधी जांच का अपर्याप्त होना, वित्त पोषण की समस्या मानव संसाधन का अभाव होना।

निष्कर्ष :–

उपरोक्त अनुसार कहा जा सकता है कि एनईपी 2020 अतीत से वर्तमान में सभी क्षेत्रों में सुधारात्मक रूप में एक मील का पत्थर अवश्य ही साबित होने वाली है। अतः निष्कर्ष रूप में हम, शिक्षा नीति कमेटी के अध्यक्ष के शब्दों में– ''हमने ऐसी शिक्षा नीति निर्मित करने की कोशिश की है जो हमारी समझ मे शैक्षिक परिदृश्य को परिवर्तित कर देगी। ताकि हम युवाओं को वर्तमान और भावी चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार कर सकें.

..... अन्य क्षेत्रों को भी इसमें शामिल किया है।''

अतः NEP 2020 में ऐसी अनेक चुनौतियां हमारे सामने है परन्तु हम सब को मिलकर ऐसे तमाम कार्य/योजना बनाना/लागू करना हर एक भारतीय का दायित्व होगा। जिससे सब मिलकर उक्त नीति के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगें। उक्त नीति में पाठ्यक्रमों में सुधार प्रारम्भ से ही किया जाएगा। शिक्षा के व्यावसायिकरण पर रोक लगेगी।

अंत में सम्पूर्ण निष्कर्ष करने के पश्चात कहा जा सकता है कि नई शिक्षा नीति–2020 के अनुसार शिक्षा रटने वाले विषयों, समय सीमा को पूरा करने एवं अंक प्राप्त करने से कहीं अधिक है, लेकिन शिक्षा का वास्तविक अर्थ ज्ञान, कौशल मूल्यों को प्राप्त करना उस क्षेत्र में निरतंर कार्य करना। जिसमें व्यक्ति अपनी खोज करता है। ऐसी दशा में यदि हमारा पूरा फोकस हिन्दी, मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं पर रहेगा तो देश में रोजगाार के अवसरों में कमी होगी और हम तकनीकी और आर्थिक विकास की दृष्टि से काफी पिछड़ जाएंगें। नई शिक्षा नीति 2020 को सही तरीके से लागू कर भारतीय शिक्षा को ऊंचाईयों पर ले जाना है। इस प्रकार से क्रियान्वयन करना है कि सभी को विकास के उचित अवसर मिल सके। सभी अपने उचित लक्ष्य प्राप्त कर सकें। हम केवल सर्वात्तम परिणामों की आशा में है कि यह नीति विद्यार्थियों के समग्र विकास और प्रगति को ध्यान में रखते हुए स्थापित की गई है।

संदर्भ : सामग्री :–

1. htttp://www.edcucation.gov.in/site/upload file/mhrd/file/NEP Final English 0.Pdf.
2. चोपडा, रीतिका, इंडियन एक्सप्रैस, 2020 पृ. सं. 5, 11
3. नई राष्ट्रीय नीति 2020, एक सिंह अवलोकन, पृ. सं. 3
4. राजस्थान पत्रिका नागौर, 28 जनवरी 2020, सम्पादकीय पृष्ठ।
5. प्रो. के. एल शर्मा, दैनिक भास्कर जयपुर संस्करण, पृ. सं. 2, 24 अगस्त 2020
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, एम.एच.आर.डी., भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. सं. 9, 10, 16, 45, 70, 71, 81, 82, 86, 92,
7. के.के. सर नई राष्ट्रीय नीति 2020 पृ. सं. 15, 21, 23
8. सिंह दुर्गेश, क्रॉनिकल मासिक पत्रिका, मई 2020, पृ. सं. 80–81
9. राज आरएएस, नई राष्ट्रीय नीति 09 सितम्बर, 2020 पृ. सं. 3, 16, 21

संगम Impact Factor : 4.553
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 11, Issue 1-2
पृष्ठ : 264-265

विद्यार्थी के लिए सीखनें का अच्छा वातावरण

अनिता चौहान (पी.एच.डी. शोधार्थी)
डॉ. पूनम मिश्रा (शोध निर्देशिका)
एसोसिएट प्रोफेसर, एपेक्स युनिवर्सिटी, जयपुर (राज0)

सारांश :-

बालक अपने विद्यार्थी जीवन में औपचारिक व अनौपचारिक रूप से (हमेशा) सदैव कुछ ना कुछ सीखता रहता है। जिसमें अच्छे वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सीखनें का अच्छा वातावरण विद्यार्थी की ना केवल सीखनें की क्षमता में वृद्धि करता है। अपितु उसके व्यक्तिक, सामाजिक, क्षैतिक, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक, ज्ञान में वृद्धि कर उसके सर्वांगिक विकास में भी अपना योगदान देता है।

प्रस्तावना :-

जब कोई व्यक्ति कुछ सीखता है तो उसे विद्यार्थी कहा जाता है। विद्यार्थी शब्द दो शब्दों से मिल कर बना है। विधार्थी अर्थात विद्या का अर्जन करने वाला/विद्या चाहनें वाला।

विद्यार्थी के विद्या अर्जन करने में अनेक तथ्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जैसे शिक्षक, शिक्षण कार्य, कक्षा कक्ष विद्यालय वातावरण पुस्तक शिक्षण तकनीक सहायक साम भाषा शैली, शिक्षण सुविधाऐं आदि। ये सभी तत्व विद्यार्थी के लिए सीखनें का एक अच्छा वातावरण तैयार करनें में मदद करती हैं। सीखनें का इच्छा वातावरण विद्यार्थी को ना केवल खुश, उत्साही, सीखनें में अग्रणी, रखता है। अपितु जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करनें के लिए जिस व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है वैसा बनने बनानें में मदद भी करता है। सीखनें का अच्छा वातावरण बालकों (विद्यार्थियों) में सकारात्मक व आलोचनात्मक चिन्तन क्षमता विकसित करनें में सहायक होता है।

सीखनें का एक अच्छा वातावरण भौतिक सामाजिक, शैक्षणिक व नैतिक आयामों से प्रभावित होता है।

अध्ययन के उददेश्य :-

1. विद्यार्थी के सीखनें के लिए अच्छा वातावरण बनाना।
2. विद्यार्थी के सीखनें के लिए सकारात्मक सौहार्दपूर्ण वातावरण तैयार करना।
3. विद्यार्थी के लिए सीखनें के अच्छे वातावरण की सुचि तैयार करें।
4. सकारात्मक अधिगम वातावरण बनानें की नीतियां तैयार करना।
5. विद्यार्थी की आवश्यकता का पता लगाना।
6. इसमें शिक्षक की भूमिका निश्चित करनें।
7. सीखनें के अच्छे वातावरण की समझ विकसित करना।

आँकड़ों का संग्रह :–

द्वितीय समांकों का संकलन पूर्व में किये गये विषयों से सम्बंधित शोधग्रन्थ, लेख, पत्र, पत्रिकाओं, समाचार पत्रों तथा इन्टरनेट के माध्यम से किया गया है।

विधि प्राविधि :–

प्रस्तुत शोध अध्ययन में पुस्तकालय अध्ययन पद्धति, उदात्मक, विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया है।

विश्लेषण :–

एक विद्यार्थी के रूप में बालक औपचारिक तथा अनौपचारिक रूप से बहुत कुछ सीखता है। सीखनें की इस क्रिया में विद्यालय, घर, परिवार, समाज, विभिन्न संगठन, संस्थाएँ व मित्र मण्डली, के साथ–2 विद्यालय की भी अहम भूमिका होती है। विद्यालय वह स्थान है जहाँ बालक विद्यार्थी के रूप में विद्या अर्जन करता है।

सीखनें के लिए अच्छे वातावरण की महती आवश्यकता होती है। जो उसे निम्न आधार पर प्रदान की जा सकती है।

1. विद्यालय में सभी प्रकार की भौमिक सुख सुविधाओं की पूर्ति के रूप में।
2. अच्छे गुणवत्ता युक्त शिक्षक गणों के रूप में,
3. शिक्षक व शिक्षार्थी के अच्छे आपसी सम्बन्धों के रूप में।
4. अच्छे खैल मैदान की उपलब्धता के रूप में।
5. विद्यार्थी स्वयं की।
6. नवीन स्वस्थ आदतों का निर्माण करनें में।
7. सौहार्द पूर्ण वातावरण तैयार करनें में।

निष्कर्ष :–

बालक के जीवन में विद्यार्थी काल बहुत महत्वपूर्ण होता है। जिसमें वह सीखनें का कार्य करता है। ऐसे में यदि उसे सीखनें का अच्छज्ञा वातावरण मिलता हो तो उसकी सीखनें में क्षमता व रूचि में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। ऐसा ज्ञान ना केवल स्थाीय हो सकता है अपितु उसके जीवन में भी लाभ दायक हो सकता है।

सन्दर्भ सूचि :–

1. 2018 मनोविज्ञान, कक्षा 11, 12, नई दिल्ली।
2. 2017 द काउसलिंग प्रोसेस एंड स्ट्रेटजीज, नई दिल्ली।
3. 2017 गाइडेंस इन एक्शन, नई दिल्ली।
4. 2015 नीति आयोग, एनुअल रिपोर्ट Govt. of India नई दिल्ली।

Impact Factor : 2.636
ISSN : 2321-8037
Gina Shodh SANGAM
Peer Reviewed & Refereed Research Journal
International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान / अभियांत्रिकी / कृषि / चिकित्सा / पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा / मानविकी / कला / सामाजिक विज्ञान / पुस्तकालय / शिक्षा / शारीरिक शिक्षा / वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना देवी शोध संस्थान के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर सम्पादकीय कार्यालय 6-एच 30, जवाहर नगर, श्रीगंगानगर, राजस्थान-335001 से वितरित की।

ISSN 2321:8037